विषय सूची

क्रम. सं.	अध्याय	पृष्ट संख्या
1.	**भारत में अरबों का आक्रमण,** आक्रमण के कारण, प्रभाव, भारत पर तुर्की आक्रमण मुहम्मद गोरी एवं भारत पर आक्रमण,	2-6
2.	दिल्ली सल्तनत **गुलाम वंश** - खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश, लोदी वंश, बलबनी वंश, सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन,	7-25
3.	सल्तनकालीन प्रशासनिक व्यवस्था मन्त्री परिषद, सल्तनतकालीन प्रमुख ऐतिहासिक कृतियां	26-33
4.	मध्यकालीन भारत में आन्दोलन सुफी सिलसिला, भक्तिकाल के प्रमुख संत, धार्मिक आन्दोलनों के मुख्य प्रणेता	34-38
5.	स्वतन्त्र प्रान्तीय राज्य जौनपुर, कश्मीर, बंगाल, मालवा, गुजरात, मेवाड़, उड़ीसा, कामरूप, प्रान्तीय शैलियां का स्थापत्य कला में योगदान, दक्षिण भारत के मुस्लिम एवं हिन्दू राज्य, बहमनी राजवंश, बरार, बीजापुर, अहमदनगर, विजयनगर साम्राजय, संगम राजवंश विजयनगर का प्रशासन, अर्थव्यवस्था एवं समाज, भू-राजस्व व्यवस्था	39-57
6.	मुगल साम्राज्य (1526-1007 ई.) मुगल कालीन युद्ध, मुगल काल के शासक, अकबर की नीतियाँ, अकबर के दरबार के नौ रत्न, सन्धि औरंगजेब के शासन काल में विद्रोह,	58-78
7.	मुगलकालीन राजस्व प्रणाली भूमि का विभाजन, मुगलकालीन मुद्रा व्यवस्था, सैन्य व्यवस्था, मुगलकालीन सेना	79-83
8.	मुगलकालीन शिक्षा, साहित्य और कला	84-85
9.	मराठा साम्राज्य संक्षिप्त इतिहास, अष्ट प्रधान, महत्वपूर्ण संधियाँ, मध्यकालीन भारत के कुछ महत्वपूर्ण युद्ध सिख, सिक्खों के मिसल और उसके संस्थापक, मुगलकालीन निर्माण कार्य, मध्यकाल में भारत आने वाले विदेशी यात्री, मुगलकालीन साहित्य	86-92

PERFECTION IAS

1. भारत पर अरबों का आक्रमण

भारत पर अरबों का आक्रमण

अरबों का 7 वीं शताब्दी में एक शक्तिशाली राजनीतिक शक्ति के रूप में उदय हुआ जो भारत सहित विश्व के अनेक देशो पर आपना अधिकार किया। यद्यपि भारत में वे अपना स्थाई प्रभाव नहीं छोड़ सके।

लगभग 623 ई. में हजरत मुहम्मद की मृत्यु के उपरान्त 6 वर्षों के अन्दर ही उनके उत्तराधिकारियों ने सीरिया, मिस्त्र, उत्तरी अफ्रीका, स्पेन एवं ईरान को जीत लिया। इस समय खलीफा साम्राज्य फ्रांस के लायर नामक स्थान से लेकर आक्सर एवं काबुल नदी तक फैल गया था।

आक्रमण के कारण

प्रथम सिन्ध पर अरबों के आक्रमण के पीछे छिपे कारणों के विषय में विद्धानों का मानना है कि ईराक का शासक अल हज्जाज भारत की सम्पन्नता के कारण उसे जीत कर सम्पन्न बनाना चाहता था। दूसरे कारण के रूप में माना जाता है कि अरबों के कुछ जहाज, जिन्हें सिन्ध के देवल बन्दरगाह पर कुछ समुद्री लुटेंरों ने लूट लिया था, के बदले में खलीफा ने सिन्ध के राजा दाहिर से जुर्माने की मांग की। किन्तु दाहिर ने असमर्थता जताते हुए कहा कि उसका उन डाकुओं पर कोई नियंत्रण नहीं है। इस जवाब से खलीफा ने क्रोध होकर सिंध पर आक्रमण करने का निश्चय किया। लगभग 712 में हज्जाज के भतीजे एवं दामाद मुहम्मद बिना कासिम ने 17 वर्ष की अवस्था में सिंध के अभियान का सफल नेतृत्व किया। उसने देवल, नेरून, सिविस्तान जैसे कुछ महत्त्वपूर्ण दुर्गों को अपने अधिकार में कर लिया, जहां से उसके हाथ ढेर सारा लूट का माल लगा। इस जीत के बाद कासिम ने सिंध, बहमनाबाद, आलोद आदि स्थानों को जीतते हुए मध्य प्रदेश की ओर प्रस्थान किया।

प्रभाव

अरबों ने चिकित्सा, दर्शनशास्त्र, नक्षत्रविज्ञान, गणित, और शासन प्रबंध की शिक्षा भारतीयों से लि

अरबों ने ऊँट पालना तथा खजूर कि खेती का प्रचलन किया।

अरब विद्वान भारत से दो पुस्तकें ले गए-

1. ब्रह्म गुप्त का ब्रह्म सिद्धांत।
2. खण्डखादय

मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण (711-715 ई.)

1. देवल विजय- एक बड़ी सेना लेकर मुहम्मद बिन कासिम 711 ई. में देवल पर आक्रमण कर दिया। दाहिर ने अपनी अदूरदर्शिता का परिचय देते हुए देवल की रक्षा नहीं की और पश्चिमी किनारों को छोड़कर पूर्वी किनारों से बचाव की लड़ाई प्रारम्भ कर दी। दाहिर के भतीजे ने राजपूतों से मिलकर किले की रक्षा करने का प्रयास किया किन्तु असफल रहा।

2. नेऊन विजय- नेऊन पाकिस्तान में वर्तमान हैदराबाद के दक्षिण में स्थित इराक के समीप था। देवल के बाद मु. बिन कासिम नेऊन की ओर बढ़ा। दाहिर ने नेर्उन की रक्षा का दायित्व एक पुजारी को सौंप कर अपने बेटे जयसिंह को ब्राह्मणाबाद बुला लिया। नेऊन में बौद्धों की संख्या अधिक थी। उन्होंने मु. बिन कासिम का स्वागत किया। इस प्रकार बिना युद्ध किए ही मीर कासिम का नेऊन दुर्ग पर अधिकार हो गया।

3. सेहवान विजय- नेऊन के बाद मुहम्मद बिन कासिम सेहवान (सिविस्तान) की ओर बढ़ा। इस समय वहां का शासक माझरा था। इसने बिना युद्ध किए ही नगर छोड़ दिया और बिना किसी कठिनाई के सेहवान पर मु. बिन कासिम का अधिकार हो गया।

4. सीसम के जाटों पर विजय- सेहवान के बाद मु. बिन कासिम सीसम के जाटों पर अपना अगला आक्रमण किया। बाझरा यहीं पर मार डाला गया। जाटों ने मु. बिन कासिम की अधीनता स्वीकार कर ली।

5. राओर विजय- सीसम विजय के बाद कासिम राओर की ओर बढ़ा। दाहिर और मु. बिन कासिम की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ। इसी युद्ध में दाहिर मारा गया। दाहिर के बेटे जयसिंह ने राओर दुर्ग की रक्षा का दायित्व अपनी विधवा मां पर छोड़कर ब्रह्मणावाद चला गया। दुर्ग की रक्षा करने में अपने-आप को असफल पाकर दाहिर की विधवा पत्नी ने आत्मदाह कर लिया। इसके बाद कासिम का राओर पर नियंत्रण स्थापित हो गया।

6. बाह्मणाबाद पर अधिकार- बाह्मणाबाद की सुरक्षा का दायित्व दाहिर के पुत्र जयसिंह के ऊपर था। उसने कासिम के आक्रमण का बहादुरी के साथ सामना किया किन्तु नगर के लोगों के विश्वासघात के कारण वह पराजित हो गया और बाह्मणाबाद पर कासिम का अधिकार हो गया। कासिम ने यहां का कोष तथा दाहिर की दूसरी विधवा रानी लाडी के साथ उसकी दो पुत्रियों सूर्यदेवी तथा परमल देवी को अपने कब्जे में कर लिया।

7. आलोर विजय- आलोर पर विजय प्राप्त करने के बाद कासिम मुल्तान पहुंचा। यहां पर आन्तरिक कलह के कारण विश्वासघातियों ने कासिम की सहायता की। उन्होंने नगर के जलस्त्रेत की जानकारी अरबों को दे दी, जहां से दुर्ग निवासियों को जल की आपूर्ति की जाती थी। इससे दुर्ग के सैनिकों ने आत्मसमर्पण कर दिया। कासिम का नगर पर अधिकार हो गया।

इस नगर से मीरकासिम को इतना धन मिला की उसने इसे स्वर्णनगर नाम दिया।

8. मुहम्मद बिन कासिम की वापसी- 714 ई. में अल-हज्जाज की और 715 ई. में खलीफा की मृत्यु के उपरान्त मुहम्मद बिन कासिम को वापस बुला लिया गया। सम्भवत: सिंध विजय अभियान में मुहम्मद बिन कासिम की वहां के बौद्ध भिक्षुओं ने अपने पुत्र जयसिंह को बहमनाबाद पर पुन: कब्जा करने के लिए भेजा, परन्तु सिंध के राज्यपाल जुनैद ने जयसिंह को हरा कर बंदी बना लिया।

PERFECTION IAS

ब्राह्मणावाद के पतन के बाद मुहम्मद-बिन कासिम ने दाहिर की दूसरी विधवा रानी लाडी और दाहिर की दो कन्याओं सूर्यदेवी और परमलदेवी को बन्दी बनाया। कालान्तर ने कई बार जुनैद ने भारत के आन्तरिक भागों को जीतने हेतु सेनाएं भेजी, परन्तु नागभट्ट (प्रतिहार), पुलकेशिन एवं यशोवर्मन (चालुक्य) ने इस वापस खदेड़ दिया। इस प्रकार अरबियों का शासन भारत में सिंध प्रांत तक सिमट कर रहा गया। कालान्तर में उन्हें सिंध का भी त्याग करना पड़ा।

अरबों के भारत पर आक्रमण का परिणाम

अरबों के आक्रमण का भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर लगभग 1000 ई. तक प्रभाव रहा। प्रारम्भ में अरबियों ने कठोरता से इस्लाम धर्म को थोपने का प्रयास सिंध पर तत्कालीन शासकों के विरोध के कारण इन्हें अपनी नीति बदलनी पड़ी। सिंध पर अरबों के शासन से परस्पर दोनों संस्कृतियों के मध्य प्रतिक्रिया हुई। अरबियों की मुस्लिम संस्कृति पर भारतीय संस्कृति का काफी प्रभाव पड़ा।

अरबवासियों ने चिकित्सा, दर्शनशास्त्र, नक्षत्र विज्ञान, गणित (दशमलव प्रणाली) एवं शासन प्रबंध की शिक्षा भारतीयों से ही ग्रहण की।

चरक संहिता एवं पंचतंत्र ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किया गया। बगदाद के खलीफाओं ने भारतीय विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। खलीफा मंसूर के समय में अरब विद्वान अपने साथ ब्रह्मागुप्त द्वारा रचित 'ब्रह्मासिद्धांत' एवं 'खण्डनखाद्य' को लेकर बगदाद गये और अल-फाजरी ने भारतीय विद्वानों के सहयोग से इन ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद किया। भारतीय सम्पर्क से अरब सबसे अधिक खगोल शास्त्र के क्षेत्र में प्रभावित हुआ।

भारतीय खगोलशास्त्र के आधार पर अरबों ने इस विषय पर अनेक पुस्तकों की रचना की जिसमें सबसे प्रमुख अल-फजरी की किताब-उल-जिज है।

अरबों ने भारत में अन्य विजित प्रदेशों की तरह धर्म पर आधारित राज्य स्थापित करने करने का प्रयत्न नहीं किया। हिन्दओं को महत्व के पदों पर बैठाया गया।

इस्लाम धर्म ने हिन्दू धर्म के प्रति सहिष्णुता का प्रदर्शन किया। अरबो की सिंध विजय का आर्थिक क्षेत्र पर भी प्रभाव पड़ा। अरब से आने वाले व्यापारियों ने पश्चिमी समुद्र एवं दक्षिण पूर्वी एशिया में अपने प्रभाव का विस्तार किया अत: यह स्वाभाविक था कि भारतीय व्यापारी उस समय की राजनीति शक्तियों पर दबाव डालते कि वे अरब व्यापारियों के प्रति सहानुभूति पूर्ण रूख अपनायें।

भारत पर तुर्की आक्रमण

अरबों के बाद तुर्कों ने भारत पर आक्रमण किया। तुर्क चीन की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं पर निवास करने वाली एक असभ्य एवं बर्बर जाति थी। उनका उद्देश्य एक विशाल मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करना था। अलप्तगीन नामक एक तुर्क सरदार ने गजनी में स्वतन्त्र तुर्क राज्य की स्थापना की।

1977 ई. में अलप्तगीन के दाद सुबुक्तगीन ने गजनी पर अपना अधिकार कर लिया। भारत पर आक्रमण करने वाला प्रथम मुस्लिम मुहम्मद बिन कासिम (अरबी) था।

जबकि भारत पर आक्रमण करने वाला प्रथम तुर्की मुसलमान सुबुक्तगीन था। सुबुक्तगीन से अपने राज्य को होने वाले भावी खतरे का पूर्वानुमान लगाते हुए दूरदर्शी हिन्दूशाही वंश के शासक जयपाल ने दो बार उस पर आक्रमण किया, किन्तु दर्भाग्यवश प्रकृति की भयावह लीलाओं के कारण उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा। अपमान एवं क्षोभ से संतप्त जयपाल ने आत्महत्या कर ली।

सुबुक्तगीन ने हिन्दुशही राजवंश के राजा जयपाल के खिलाफ एक संघर्ष में भाग लिया, जिसमें जयपाल की पराजय हुई। सुबुक्तगीन के मरने से पूर्व उसके राज्य सीमायें अफगनिस्तान, ख्रासान, बल्ख एवं पश्चिमोत्तर भारत तक फैली थी।

.सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी महमूद गजनवी गजनी की गद्दी पर बैठ। 'तारीख ए गुजीदा' के अनुसार महमूद ने सीस्तान के राजा खलफ बिन अहमद को पराजित कर सुल्तान की उपाधि धारण की। इतिहासविदों के अनुसार सुल्तान की उपाधि धारण करने वाला महमूद पहला तुर्क शासक था। महमूद ने बगदाद के खलीफा से 'यामीनुद्दौला तथा 'अमीन-एल-मिल्लाह' उपाधि प्राप्त करते समय प्रतिज्ञा की थी कि वह प्रति वर्ष भारत पर एक आक्रमण करेगा। इस्लाम धर्म के प्रचार और धन प्राप्ति के उद्देश्य से उसने भारत पर 17 बार आक्रमण किये।

इलियट के अनुसा ये सारे आक्रमण 1001 से 1026 ई. तक किये गये। अपने भारतीय आक्रमों के समय महमूद ने 'जेहाद' का नारा दिया और साथ ही अपना नाम 'बुत शिकन' रखा। हालांकि इतिहासाकार महमूद गजनवी को मुस्लिम इतिहास में प्रथम सुल्तान मानते हैं किन्तु सिक्कों पर उसकी उपाधि केवल 'अमीर महमूद' मिलती है।

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय भारत की दशा

10वीं शताब्दी ई. के अन्त तक भारत अपनी बाहरी सुरक्षा-प्राचीर जाबुलिस्तान तथा अफगनिस्तान खो चुका परिणामस्वरूप इस मार्ग द्वारा होकर भारत पर सीधे आक्रमण्रा किया जा सकता था। इस समय भारत में राजपूत राजाओं का शासन था।

काबुल एवं पंजाब का हिन्दुशाही राज्य

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय पंजाब एवं काबुल में हिन्दुशाही वंश का शासन था। यह राज्य चिनाब नदी के हिन्दुकुश तक फैला हुआ था।

PERFECTION IAS

इस राज्य के स्वामी बाह्मण राजवंश के शहिया अथवा हिन्दुशाह थे। इसकी राजधानी उद्भाण्डपुर थी। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय यहां का शासक जयपाल था।

1. मुल्तान- यह हिन्दुशाही राज्य के दक्षिण में स्थित था। यहां का शासन करमाथी शिया मुसलमानों के हाथ में था। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय यहां का शासक फतेह दाऊद था।

2. सिन्ध- अरबों के आक्रमण के समय से ही सिन्ध पर उनका आधिपत्य था। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय सिन्ध प्रांत में अरबों का शासन था।

3. कश्मीर का लोहार वंश- महमूद गजनवी के सिंहासनारूढ़ के समय कश्मीर की शासिका रानी दिद्दा थी। 1003 ई. में दिद्दार की मृत्यु के बाद संग्रामराज गद्दी पर बैठा। उसने लोहार वंश की स्थापना की।

4. कन्नौज के प्रतिहार- महमूद गजनवी के आक्रमण के समय कन्नौज पर प्रतिहारों का शासन था। प्रतिहारों की राजधानी कन्नौज थी। सबसे पहले बंगाल के राजा धर्ममाल ने इस नगर पर आक्रमण किया तथा कुछ वर्षों तक शासन किया। महमूद गजनवी के आक्रमण (1018 ई.) के समय यहां का शासक राज्यपाल था। उसने राजधानी कन्नौज से बारी में स्थानान्तरित किया था।

5. बंगाल का पाल वंश- पाल वंश की स्थापना 750 ई. में गोपाल ने की थी। इस वंश का महत्त्वपूर्ण शासक देवपाल था। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय यहां का शासक महीपाल प्रथम (992-1026 ई.) था।

6. दिल्ली के तोमर-तोमर राजपूतों की एक शाखा थे। तोमर शासक अनंगपाल दिल्ली नगर का संस्थापक था।

7. शाकम्भरी के चौहान- प्रतिहार राज्यों के विघटन के बाद जिन राजपूतों का उदय हुआ था उनमें अजमेर के शाकम्भरी के चौहान प्रमुख थे। पृथ्वीराज चौहान इस वंश का सबसे महान शासक था तथा उसकी शत्रुता कन्नौज के राजा जयचन्द्र से थी।

8. मालवा का परमार वंश- इस वंश की स्थापना नवीं शताब्दी ईस्वी के पूर्वार्द्ध में कृष्णराज ने किया था। इस वंश का सबसे महत्वपूर्ण शासक राजा भोज था। यहां महमूद गजनवी का समकालीन शासक सिंधुराज था।

9. गुजरात का चालुक्य वंश- महमूद गजनवी के आक्रमण के समय गुजरात पर चालुक्यों का शासन था। इस काल में चालुक्य वंश के चार शासक हुए-चामुण्डराज (997-1009 ई.), वल्लभ राज (1009 ई.), दुर्लभ राज (100-24 ई.) तथा भीम प्रथम (1024-64 ई.)।

10. बुंदेलखण्ड के चंदेल- महमूद गजनवी के आक्रमण के समय बन्देलखंड में चंदेलों का शासन था। उस समय बुंदेलखण्ड की राजधानी खजुराहो थी।

11. त्रिपुरी के कलचुरी वंश- कलचुरी वंश के हैहय वंश भी कहा जाता है। गुजरात के सोलंकी वंश से इसका संघर्ष चलता था। महमूद के समकालीन यहां दो शासक थे-कोक्कल द्वितीय (990-1015 ई.) तथा गांगेयदेव (1015-1040 ई.)।

दक्षिण भारत-

दक्षिण भारत में अनेक राजवंशों का शासन था। 11वीं शताब्दी के आरम्भ में यहां की राजनीति पर चोलों और चालुक्यों का वर्चस्व था। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय दक्षिण के दो राज्य प्रमुख थे-

1. परवर्ती चालुक्य और
2. चाले। लोल शसकों में राजराज प्रथम तथा राजेन्द्र प्रथम (1014-44 ई.) तथा जयसिंह द्वितीय और वेंगी के चालुक्य शासकों में शक्तिवर्मन प्रथम महमूद गजनवी का समकालीन थे।

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण (1001-1026 ई.)

999 ई. में जब महमूद गजनवी सिंहासन पर बैठा तो उसने प्रत्येक वर्ष भारत पर आक्रमण करने की प्रतिज्ञा की। उसने भारत पर कितनी बार आक्रमण किया, यह स्पष्ट नहीं है। किन्तु सर हेनरी इलियट ने महमूद गजनवी के 17 आक्रमणों का वर्णन किया है।

प्रथम आक्रमण (1001 ई.)- महमूद गजनवी ने अपना आक्रमण 1001 ई. में भारतीय के सीमावर्ती नगरों पर किया। पर यहां उसे कोई विशेष समफलता नहीं मिली।

दूसरा आक्रमण (1001-1002 ई.)- अपने दूसरे अभियान के अनतर्गत महमूद गजनवी ने सीमांत प्रदेशों के शासन जयपाल के विरुद्ध युद्ध किया। उसकी राजधानी बैहिन्द पर अधिकार कर लिया। जयपाल इस पराजय के अपमान को सहन नहीं कर सका और आग में जलकर आत्महत्या कर लिया।

तीसरा आक्रमण (1004 ई.)- महमूद गजनवी ने उच्छ के शासक वाजिरा को दण्डित करने के लिए आक्रमण किया। महमूद के भय के कारण वाजिरा सिन्धु नदी के किनारें जंगल में शरण लेने को भागा और अन्त में उसने आत्महत्या कर ली।

चौथा आक्रमण (1005 ई.)- पंजाब में ओहिन्द पर महमूद गजनवी ने जयपाल के पौत्र सुखपाल को नियुक्त किया था। सुखपाल ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था और उसे नौशाशाह कहा जाने लगा था। 1007 ई. में सुखपाल ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी। महमूद गजनवी ने ओहिन्द पर आक्रमण किया और नौशाशाह को बन्दी बना लिया गया।

छठां आक्रमण (1008 ई.)- महमूद गजनवी ने 1008 ई. अपने इस अभियान के अन्तर्गत पहले आनन्दपाल को पराजित किया। बाद में उसने इसी वर्ष कांगड़ी पहाड़ी में स्थित नागरकोट पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में महमूद को अपार धन की प्राप्ति हुई।

सातवां आक्रमण (1009 ई.)- इस आक्रमण के अन्तर्गत महमूद गजनवी ने अलवर राज्य के नारायणपुर पर विजय प्राप्त की।

आठवां आक्रमण (1010 ई.)- महमूद का आठवां आक्रमण मुल्तान पर था। वहां के शासक दाऊद को पराजित कर उसने मुल्तान के शासन को सदा के लिए अपने अथीन कर लिया।

नौवां आक्रमण (1013 ई.)- अपने नवें अभियान के अन्तर्गत महमूद गजनवी ने थानेश्वर पर आक्रमण किया।

PERFECTION IAS

दसवों आक्रमण (1013 ई.)- महमूद गजनवी ने अपना दसवां आक्रमण नन्दशाह पर किया। हिन्दूशाही शासक आनन्दपाल ने नन्दशाह को अपनी नयी राजधानी बनाया था। वहां का शासक त्रिलोचनपाल था। त्रिलोचनपाल वहां से भाग कर कश्मीर में शरण लिया। तुर्कों ने नन्दशाह में लूट-पाट की।

ग्यारहवां आक्रमण (1015 ई.)- महमूद का यह आक्रमण त्रिलोचन के पुत्र भीमपाल के विरुद्ध था जो कश्मीर पर शासन कर रहा था। युद्ध में भीमपाल पराजित हुआ।

बारहवां आक्रमण (1018 ई.) अपने बारहवें अभियान में महमूद गजनवी ने कन्नौज पर आक्रमण किया। उसने बुंलदशहर के शासक हरदत्त को पराजित किया। उसने महाबन के शासक बुलाचंद पर भी आक्रमण किया। 1019 ई. में उसने पुन: कन्नौज पर आक्रमण किया। वहां के शासक राज्यपाल ने बिना युद्ध किए ही आत्मसमर्पण कर दिया। राज्यपाल द्वारा इस आत्मसमर्पण से कालिंजर का चंदेल शासक क्रोधित हो गया। उसने ग्वालियर के शासक के साथ संधि कर कन्नौज पर आक्रमण कर दिया और राज्यपाल को मार डाला।

तेरहवां आक्रमण (1020 ई.)- महमूद का तेरहवां आक्रमण 1020 ई. में हुआ था। इस अभियान में उसने बारी, बुंदेलखण्ड, किरात तथा लोहकोट आदि को जीत लिया।

चौदहवां आक्रमण (1021 ई.)- अपने चौदहवें आक्रमण के दौरान महमूद ने ग्वालियर तथा कालिंजर पर आक्रमण किया। कालिंजर के शासक गोण्डा ने विवश होकर सांधि कर ली।

पन्द्रहवां आक्रमण (1025 ई.)- इस अभ्यिान में महमूद गजनवी ने लोदोर्ग (जैसलमेर), चिकलोदर (गुजरात) तथा अन्हिलवाड़ा (गुजरात) पर विजय स्थापित की।

सोलहवां आक्रमण (1025 ई.)- इस 16 वें अभियान में महमूद गजनवी ने सोमनाथ को अपना निशाना बनाया। उसके सभी अभियानों में यह अभियान सर्वाधिक महतवपूर्ण था।

सोमनाथ पर विजय प्राप्त करने के बाद उसने वहां के प्रसिद्ध मंदिर को तोड़ दिया तथा अपार धन प्राप्त किया।

यह मंदिर गुजरात में समुद्र तट पर स्थित अपनी अपार संपत्ति के लिए प्रसिद्ध था। इस मंदिर को लूटते समय महमूद ने लगभग 50,000 ब्राह्मणों एवं हिन्दुओं का कत्ल कर दिया था। पंजाब के बाहर किया किया गया महमूद का यह अंतिम आक्रमण था।

सत्रवहां आक्रमण (1027 ई.)- यह महमूद गजनवी का अन्तिम आक्रमण था। यह आक्रमण सिंध और मुल्तान के तटवर्ती क्षेत्रों के जाटों के विरुद्ध था। इसमें जाट पराजित हुए।

महमूद के भारतीय आक्रमण का वास्तविक उद्देश्य धन की प्राप्ति था। वह एक मूर्तिभंजक आक्रमणकारी था।

महमूद की सेना में सेवंदराय एवं तिलक जैसे हिन्दू उच्च पदों पर आसीन व्यक्ति थे।

महमूद के भारत आक्रमण के समय उसके साथ प्रसिद्ध इतिहासविद्, गणितज्ञ, भूगोलवेत्ता, खगोल एवं दर्शन शास्त्र का ज्ञाता तथा 'किताबुल हिन्द' का लेखक अलबरूनी भारत आया। अलबरूनी महमूद का दरबारी कवि था। 'तहकीक-ए-हिन्द' पुस्तक में उसने भारत का विवरण लिखा है। इसके अतिरिक्त इतिहासकार 'उतबी', तारीख-ए-सुबुक्तगीन का लेखक 'बैहाकी' भी उसके साथ आये। बैहकी को इतिहासकार लेनपूल ने 'पूर्वी पेप्स' की उपाधि प्रदान की है।

'शाहनामा' का लेख 'फिरदौसी', फारस का कवि जारी, खुरासानी विद्वान तुसी, महान् शिक्षक और विद्धान अस्जदी और फारूखी आदि दरबारी कवि थे।

मुहम्मद गोरी एवं भारत पर आक्रमण

शिहाबुद्दीन उर्फ मुईजुद्दीन गोरी ने भारत में तुर्क राज्य की स्थापना की। गजनी और हिरात के मध्य स्थित छोटा पहाड़ी प्रदेश गोर पहले महमूद गजनवी के कब्जे में था।

गोर में 'शंसबनी वंश' सबसे प्रधान वंश था। मुहम्मद गोरी ने भी भारत पर अनेक आक्रमण किये। उसने प्रथम आक्रमण 1175 ई. में मुल्तान के विरुद्ध किया।

एक दूसरे आक्रमण के अन्तर्गत गोरी ने 1178 ई. में गुजरात पर आक्रमण किया। यहां पर सोलंकी वंश (चालुक्य) का शासन था। इसी वंश के भीम द्वितीय (मूलराज द्वितीय) ने मुहम्मद गोरी को आबू पर्वत के समीप परास्त किया। सम्भवत: **यह मुहम्मद गोरी की प्रथम भारतीय पराजय थी।**

इसके बाद 1179-86 ई. के बीच उसने पंजाब पर आक्रम कर विजय प्राप्त की। 1179 ई. में उसने पेशावर को तथा 1185 ई. में स्यालकोट को जीता।

1191 ई. में पृथ्वीराज चौहान के साथ गोरी की भिड़न्त तराइन के मैदान में हुई। इस युद्ध में गोरी बुरी तरह परास्त हुआ। इस युद्ध को 'तराईन का प्रथम युद्ध' कहा गया है।

'तराईन का द्वितीय युद्ध' 1192 ई. में तराईन के मैदान में हुआ, पर इस युद्ध का परिणाम मुहम्मद गोरी के पक्ष में रहा तथा इसके उपरांत पृथ्वीराज चौहान की हत्या कर दी गई।

1194 ई. में प्रसिद्ध चन्दावर का युद्ध मुहम्मद गोरी एवं राजपूत नरेश जयचन्द्र के बीच लड़ा गया। जयचन्द्र की पराजय के उपरान्त उसकी हत्या कर दी गई जयचन्द्र को पराजित करने के उपरान्त मुहम्मद गोरी अपने विजित प्रदेशों की जिम्मेदारी कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंपकर वापस गजनी चला गया।

मुहम्मद गोरी की भारतीय विजयों तथा नवस्थापित तुर्की राज्य का प्रत्यक्ष विवरण मिनहाज की रचना 'तबकात-ए-नासिरी' में मिलता हैं

ऐबक ने अपनी महत्त्वपर्ण विजय के अन्तर्गत 1194 ई. में अजमेर को जीतकर यहां पर स्थित जैन मंदिर एवं संस्कृत विश्वविद्यालय को नष्ट कर उनके मलवे पर क्रमश: 'कुव्वत-उल-इस्लाम' एवं 'ढाई दिन के झोपड़े' का निर्माण करवाया।

ऐबक ने 1202-03 ई. में बुन्देलखण्ड के मजबूत कालिंजर के किले को जीता।

1197 से 1205 ई. के मध्य ऐबक ने बंगाल एवं बिहार पर आक्रमण कर उदण्डपुर, बिहार, विक्रमाशिला एवं नालन्दा

PERFECTION IAS

विश्वद्यिालय पर अधिकार कर लिया।

1205 ई. में मुहम्मद गोरी पुनः भारत आया और इस बार उसका मुकाबला खोक्खरों से हुआ। उसने खोक्खरों को पराजित कर उनका बुरी तरह कत्ल किया। इस विजय के बाद मुहम्मद गारी जब वापस गजनी जा रहा था तो मार्ग में 13 मार्च, 1206 को उसकी हत्या कर दी गई। अन्ततः उसके शव को गजनी ले जाकर दफनाया गया। गोरी की मृत्यु के बाद उसने गुलाम सरदार कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1206 ई. में गुलाम वंश की स्थापना की।

PERFECTION IAS

2. दिल्ली सल्तनत

दिल्ली सल्तनत की स्थापना 1206 ई. में की गई। इस्लाम की स्थापना के परिणामस्वरूप अरब और मध्य एशिया में हुए धार्मिक और राजनैतिक परिवर्तनों ने जिस प्रसारवादी गतिविधियों को प्रोत्साहित किया, दिल्ली सल्तनत की स्थापना उसी का परिणाम थी।

बाद के काल में मंगोलों के आक्रमण से इस्लामी जगत भयभीत था। उसके आंतक के कारण इस्लाम के जन्म स्थान से इस्लामी राजसत्ता के पांव उखड़ गये थे। इस स्थिति में दिल्ली सल्तनत इस्लाम को मानने वाले संतों, विद्वानों, साहित्यकारों और शासकों की शरणस्थली बन गयी थी।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना भारतीय इतिहास में एक युगांतकारी घटना है। शासन को यह नवीन स्वरूप भारत की पूर्ववर्ती राजव्यवस्थाओं से भिन्न था। इस काल के शासक एक ऐसे धर्म के अनुयायी थे जो जनसाधारण से भिन्न था। शासकों द्वारा सत्ता के अभूतपूर्व केन्द्रीकरण और कृषक वर्ग के शोषण का भारतीय इतिहास में कोई और उदाहरण नहीं मिलता है।

दिल्ली सल्तनत का काल 1206 ई. से प्रारंभ होकर 1526 ई. तक रहा। 320 वर्षों के इस लम्बे काल में भारत में मुस्लिमों का शासन व्याप्त रहा। दिल्ली सल्तनत के अधीन निम्नलिखित 5 वंशों का शासन रहा–

	वशं	शासक
1.	मामलूक अथवा गुलाम वंश	1206 से 1290 ई.
2.	खिलजी वंश	1290 से 1320 ई.
3.	तुगलक वंश	1320 से 1414 ई.
4.	सैयद वंश	1414 से 1451 ई.
5.	लोदी वंश	1415 से 1526 ई.

मामलूक अथवा गुलाम वंश (1206 से 1290 ई.)

1206 से 1290 ई. के मध्य 'दिल्ली सल्तनत' पर जिन तुर्क शासकों द्वारा शासन किया गया उन्हें 'गुलाम वंश' का शासक माना जाता है। इस काल के दौरान दिल्ली सल्तनत पर शासन करने वाले राजवंश थे– कुतुबुद्दीन ऐबक का 'कुत्बी', इल्तुतमिश का 'शम्सी' और बलबन का 'बलबनी'। इन शासकों को गुलाम वंश का शासक कहना इसलिए उचित नहीं है क्योंकि इन तीनों तुर्क शासकों का जन्म स्वतन्त्र माता–पिता से हुआ था। इसलिए इन्हें प्रारम्भिक तुर्क शासक व ममलूक शासक कहना अधिक उपर्युक्त होगा। इतिहासकार अजीज इहमद ने इन शासकों को दिल्ली के ''आरम्भिक तुर्क शासकों'' का नाम दिया है। मामलूक शब्द का प्रारम्भ होता है– स्वतंत्र माता पिता से उत्पन्न दास। ''मामलूक'' नाम इतिहासकार हबीबुल्लाह ने दिया है। ऐबक, इल्तुतमिश एवं बलबन में इल्तुतमिश एवं बलबन 'इल्बारी तुर्क' थे।

कुतुबुद्दीन ऐबक (1206–12010 ई.)

कुतुबुद्दीन ऐबक तुर्क जनजाति का था। ऐबक एक तुर्की शब्द है, जिसका अर्थ होता है– ''चन्द्रमा का देवता''। कुतुबुद्दीन का जन्म तुर्किस्तान में हुआ था। बचपन में ही वह अपने परिवार से बिछुड़ गया और उसे व्यापारी द्वारा निशापुर के बाजार में लाया गया, जहां काजी फखरुद्दीन अजीज कूफी (जो इमाम अबू हनीफ के वंशज थे) ने खरीद लिया। काजी ने अपने पुत्र की भांति ऐबक की परवरिश की तथा उसके लिए धनुर्विद्या और घुड़सवारी की सुविधाएं उपलब्ध की। कुतुबुद्दीन ऐबक बाल्याकाल से ही प्रतिभा का धनी था। उसने शीघ्र ही सभी कलाओं में कुशलता प्राप्त कर ली। उसने अन्यत्र सुरीले स्वर में कुरान पड़ना सीख लिया इसलिए वह कुरान खां (कुरान का पाठ करने वाला) के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कुछ समय बाद काजी की मृत्यु हो गयी। उसके पुत्रों ने उसे एक व्यापारी के हाथों बेच दिया तथा उसे गजनी ले गया जहां उसे मुहम्मद गोरी ने खरीद लिया और यहीं से उसकी जीवनचर्या का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ जिसने अन्त में उसे दिल्ली के सिंहासन पर बैठाया।

अपनी ईमानदारी, बुद्धिमानी और स्वामीभक्ति के बल पर कुतुबुद्दीन ने मुहम्मद गोरी का विश्वास प्राप्त कर लिया। गोरी उसके समस्त प्रशंसनीय गुणों से प्रभावित होकर अमीर–ए–आखूर (अस्तबलों का प्रधान) नियुक्त किया जा उस समय एक महत्वपूर्ण पद था। इस पद पर रहते हुए ऐबक ने गोर, बामियान और गजनी के युद्धों में सुल्तान की सेवा की। 1192 ई. में ऐबक ने तराइन के द्वितीय युद्ध में कुशलतापूर्वक भाग लिया।

तराइन के द्वितीय युद्ध के बाद मुहम्मद गोरी ने ऐबक को भारतीय प्रदेशों का सूबेदार नियुक्त कर दिया। गोरी के वापस जाने के बाद ऐबक ने अजमेर, मेरठ आदि स्थानों के विद्रोहों को दबाया। 1194 में मुहम्मद गोरी और कन्नौज के शासक जयचन्द्र के बीच हुए युद्ध में ऐबक ने अपने स्वामी की ओर से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1197 ई. मे ऐबक ने गुजरात की राजधानी अन्तिहलवाड़ को लूटा तथा वहां के शासक भीमदेव को दण्डित किया।

1202 ई. में उसने बुन्देलखण्ड के राजा परमर्दिदेव को परास्त किया तथा कालिंजर, महोबा और खजुराहो पर अधिकार कर लिया। 1205 ई. उसने खोक्खर के विरुद्ध मुहम्मद गोरी का हाथ बटाया। इस प्रकार ऐबक ने मुहम्मद गोरी के सैनिक योजनाओं को एक मुर्तरूप दिया। इसलिए भारतीय तुर्क अधिकारियों ने उसे अपना प्रधान स्वीकार किया।

मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद चूंकि उसका कोई अपना पुत्र नहीं था इसलिए लाहौर की जनता ने मुहम्मद गोरी के प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन ऐबक को लाहौर पर शासन करने का निमंत्रण दिया। ऐबक ने लाहौर पहुंच कर जून, 1206 में अपना राज्याभिषेक करावाया। सिंहासनारूढ़ होने के समय ऐबक ने अपने को 'मलिक एवं सिपहसालार' की पदवी से संतुष्ट रखा। उसने अपने नाम से न तो कोई सिक्का जारी करवाया और न कभी खुतबा पढ़वाया। कुछ समय बाद मुहम्मद गोरी के उत्तराधिकारी गयासुद्दीन ने ऐबक को सुल्तान स्वीकार कर लिया। ऐबक को 1208 ई. मे दासता से मुक्ति मिली।

सिंहासन पर बैठने के समय ऐबक को मुहम्मद गोरी के अन्य उत्तराधिकारी गायासुद्दीन मुहम्मद, ताजुद्दीन एल्दौज एवं नासिरुद्दीन कुबाचा के विद्रोह का सामना करना पड़ा। इन विद्रोहियों को शांत करने के लिए ऐबक ने वैवाहिक सम्बन्धों को आधार बनाया। उसने ताजुद्दीन एल्दौज (गजनी का शासक) की पुत्री से अपना विवाह, नासिरुद्दीन कुबाचा (मुल्तान एवं सिंध का शासक) से अपनी बहन का विवाह तथा

PERFECTION IAS

इल्तुतमिश से अपनी पुत्री का विवाह किया। इन वैवाहिक सम्बन्धों के करण एल्दौज तथा कुबाचा की ओर से विद्रोह का खतरा कम हो गया।

कालान्तर में गोरी के उत्तराधिकारी गयासुद्दीन ने ऐबक को सुल्तान के रूप में स्वीकार करते हुए 1208 ई. में सिंहासन, छात्र राजकीय पताका एवं नक्कारा भेंट किया। इस तरह ऐबक एक स्वतन्त्र शासक के रूप में तुर्की राज्य का संस्थापक बना।

ऐबक की भारत में राजनैतिक उपलब्धि के विषय में सिर्फ इतना कहा जा सकता है कि उसने नये प्रदेश जीतने की अपेक्षा जीते हुए प्रदेश की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया।

ऐबक को अपनी उदारता एवं दानी प्रवृत्ति के कारण 'लाखबख्या' (लाखों का दानी) कहा गया है। इतिहासकार मिनहाज ने उसकी दानशीलता के कारण ही उसे हातिम द्वितीय की संज्ञा दी है। फरिश्ता के अनुसार उस समय केवल किसी दानशील व्यक्ति को ही ऐबक की उपाधि दी जाती थी।

बचपन में ही ऐबक ने कुरान के अध्यायों को कंठस्थ कर लिया था और अत्यन्त सुरीले स्वर में इसका उच्चारण करता था इस कारण ऐबक को कुरान खां कहा जाता था। साहित्य एवं स्थापत्य कला में भी ऐबक की दिलचस्पी थी। उसके दरबार में विद्वान हसन निजामी एवं फख्र-ए-मुदब्बिर को संरक्षण प्राप्त थ। हसन निजामी ने ताज-उल-मासिर की) तथा अजमेर में अढाई दिन को झोपड़ा (संस्कृति विद्यालय के स्थान पर) नामक मस्जिदो का निर्माण करवाया।

कुतुबीमानार, जिसे 'शेख ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी' की स्मृति में बनाया गया है, के निर्माण कार्य को प्रारम्भ करवाने का श्रेय कुतुबुद्दीन ऐबक को जाता है। एक मान्यता के अनुसार कहा जाता है कि ऐबक के शासनकाल में बकरी ओर शेर एक ही घाट पर पानी पीते थे।

अपने शासन के 4 वर्ष बाद 1210 ई. में लाहौर में चौगान (पोलो) खेलते समय घोड़े से गिरने के कारण ऐबक की मृत्यु हो गई। कुतुबुद्दीन ऐबक का मकबरा लाहौर में है।

इल्तुतमिश (1210-1236 ई.)

इल्तुतमिश इल्बारी तुर्क था। खोखरों के विरुद्ध इल्तुतमिश की कार्य कुशलता से प्रभावित होकर मु. गोरी ने उसे ''अमीरूल उमरा'' नामक महत्वपूर्ण पद दिया आकस्मात् मृत्यु के कारण ऐबक अपने किसी उत्तराधिकारी का चुनाव नहीं कर सका था। अत: लाहौर के तुर्क अधिकारियों ने ऐबक के विवादित पुत्र आरामशाह (इसे इतिहासकार नहीं मानते) को लाहौर की गद्दी पर बैठाया परन्तु दिल्ली के तुर्की सरदारों एवं नागरिकों के विरोध के फलस्वरूप ऐबक के दामाद इल्तुतमिश, जो उस समय बदायूं का सूबेदार था, को दिल्ली आमंत्रित कर राजसिंहासन पर बैठाया गया।

आरामशाह एवं इल्तुतमिश के बीच दिल्ली के निकट संघर्ष हुआ जिसमें आरामशाह को बन्दी बनाकर हत्या कर दी गयी और इस तरह ऐबक वंश के बाद इल्बारी वंश का शासन प्रारम्भ हुआ।

सुल्तान का पद प्राप्त करने के बाद इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम 'कुत्बी' अर्थात् कुतुबुद्दीन के समय के सरदार तथा 'मुइज्जी' अर्थात् गोरी के समय के सरदारों के विद्रोह का दमन किया। इल्तुतमिश ने इन विद्रोही सरदारों पर विश्वास न करते हुए अपने 40 गुलाम सरदारों का एक गुट या संगठन बनाया जिसे 'तुकार्नन-ए-चिहालगानी' का नाम दिया गया। इस संगठन को 'चरगान' भी कहा गया है। इल्तुतमिश के समय में ही अवध में पिर्थू विद्रोह हुआ।

1215 से 1217 ई. के बीच इल्तुतमिश को अपने दो प्रबल प्रतिद्वन्दी एल्दौज और कुबाचा से संघर्ष करना पड़ा। 1215 ई. में इल्तुतमिश ने एल्दौज को तराइन के मैदान में पराजित किया। 1217 में इल्तुतमिश ने कुबाचा से लाहौर छीन लिया तथा 1228 में उच्छ पर अधिकार कर कुबाचा से बिना शर्त आत्समर्पण के लिए कहा। अन्त में निराश कुबाचा ने सिन्धु नदी में कूदकर आत्महत्या कर ली। इस तरह इन दोनों प्रबल विरोधियों का अन्त हुआ।

मंगोल आक्रमणकारी चंगेज खां के भय से भयभीत होकर ख्वारिज्म शाह का पुत्र 'जलालुद्दीन मंगबर्नी' वहां से भाग कर पंजाब की ओर आ गया। चंगेज खां उसका पीछा करता हुआ लगभग 1220-21 ई. में सिन्ध तक आ गया। उसने इल्तुतमिश के संदेश दिया कि वह मंगबर्नी की मदद न करे। यह संदेश लेकर चंगेज का दूत इल्तुतमिश के दरबार में आया। इल्तुतमिश ने मंगोल जैसे शक्तिशाली आक्रमणकारी से बचने के लिए मंगबर्नी की कोई भी सहायता नहीं की। मंगोल आक्रमण का भय 1228 ई. में मंगबर्नी के भारत से वापस जाने पर टल गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद अलीमर्दान ने बंगाल में अपने को स्वतंत्र घोषित कर लिया तथा अलाउद्दीन की उपाधि ग्रहण कर ली। दो वर्ष बाद इसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद उसका पुत्र हिसामुद्दीन इवाज उत्तराधिकारी बना। उसने गायासुद्दीन आजिम की उपाधि ग्रहण की तथा अपने नाम के सिक्के चलाएं और खुतबा पढ़वाया।

1225 में इल्तुतमिश ने बंगाल के स्वतन्त्र शासक हिसामुद्दीन इवाज के विरुद्ध अभियान किया। इवाज ने बिना युद्ध के ही उसकी अधीनता में शासन करना स्वीकार कर लिया पर इल्तुतमिश के दिल्ली वापस लौटते ही उसने पुन: विद्रोह कर दिया। इस बार इल्तुतमिश के दिल्ली वापस लौटते ही उसने पुन: विद्रोह कर दिया। इस बार इल्तुतमिश के पुत्र नासिरुद्दीन महमूद ने 1226 ई. के लगभग उसे पराजित कर लखनौती पर अधिकार कर लिया। दो वर्ष के उपरान्त नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु के बाद मलिक इख्तियारुद्दीन बल्का खलजी ने बंगाल की गद्दी पर अधिकार कर लिया।

1230 ई. में इल्तुतमिश ने इस विद्रोह को दबाया, संघर्ष में बल्का खलजी मारा गया और इस तरह एक बार फिर बंगाल दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गया। 1226 ई. में इल्तुतमिश ने रणथंभौर पर तथा 1227 ई. में परमारो की राजधानी मन्दौर पर अधिकार कर लिया। 1231 ई. में इल्तुतमिश ने ग्वालियर के किले पर घेरा डालकर वहां के शासक मंगल देव को पराजित किया।

1233 ई. में चंदेलों के विरुद्ध एवं 1234 ई. में उज्जैन एवं भिलसा के विरुद्ध उसका अभियान सफल रहा। इल्तुतमिश के नागदा के गुहिलोतों और गुजरात के चालुक्यों पर किए गए आक्रमण विफल हुए। इल्तुतमिश का अन्तिम अभियान बामियान के विरुद्ध हुआ। अप्रैल, 1936 में इल्तुतमिश की मृत्यु हो गयी। फरवरी, 1229 में बगदाद के खलीफा ने इल्तुतमिश की पुष्टि उन सारे क्षेत्रों में कर दी जो उसने जीते थे। साथ ही खलीफा ने उसे सुल्तान-ए-आजम (महान शासक) की उपाधि भी प्रदान की। प्रमाण पत्र प्राप्त होने के बाद इल्तुतमिश वैध सुल्तान एवं दिल्ली सल्तनत एक वैध स्वतन्त्र राज्य बन गया। इस

PERFECTION IAS

स्वीकृति से इल्तुतमिश को सुल्तान के पद को वंशानुगत बनाने और दिल्ली के सिंहासन पर अपनी सन्तानों के अधिकार को सुरक्षित करने में सहायता मिली। खिलअत मिलने के बाद इल्तुतमिश ने 'नासिर अमीर उल मोमिनीन' की उपाधिग्रहण की। बयाना पर आक्रमण करने के लिए जाते समय मार्ग में इल्तुतमिश बीमार हो गया। अन्ततः अप्रैल, 1236 में उसकी मृत्यु हो गई।

इल्तुतमिश प्रथम सुल्तान थ जिसने दोआब के आर्थिक महत्व को समझा और उसमें सुधार किया। इल्तुतमिश प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने शासन व्यवस्था में सुधार करने का प्रयास किया। इल्तुतमिश पहला तुर्क सुल्तान था जिसने शुद्ध अरबी सिक्के चलवाये। उसने सल्तनतकालीन दो महत्वपूर्ण सिक्के चांदी का 'टंका' (लगभग 175 ग्रेन का) तथा तांबे का 'जीतल' चलवाया। इल्तुतमिश ने सिक्को पर टकसाल के नाम अंकित करवाने की परम्परा आरम्भ किया।

सिक्कों पर इल्तुतमिश ने अपना उल्लेख खलीफ का प्रतिनिधि के रूप में किया है। ग्वालियर विजय के बाद इल्तुतमिश ने अपने सिक्कों पर कुछ गौरवपूर्ण शब्दों को अंकित करवाया; जैसे- ''शक्तिशाली सुल्तान'', साम्राज्य व धर्म का सूर्य'', ''धर्मनिष्ठों के नायक के साहयक''। इल्तुतमिश ने 'इक्ता व्यवस्था' का प्रचलन किया और अपनी राजधानी को लाहौर से दिल्ली स्थानान्तरित किया।

इल्तुतमिश की न्यायप्रियता का वर्णन करते हुए इब्नबतूता लिखता है कि सुल्तान ने अपने महल के सामने संगमरमर की दो शेरों की मूर्तियां स्थापित करायीं जिनके गले में घण्टियां लगी थी। जिसको कोई भी व्यक्ति बजाकर न्याय की मांग कर सकता था।

मुहम्मद जुनैदी और फखरुल इसामी की मदद से इल्तुतमिश के दरबार में मिन्हाज-उल-सिराज, मलिक ताजुद्दीन को संरक्षण मिला था। मिन्हाज-उल-सिराज ने इल्तुतमिश को महान दयालु, सहानुभूति रखने वाला, विद्वानों एवं वृद्धों के प्रति श्रद्धा रखने वाला सुल्तान बताया है। डॉ. आर.पी. त्रिपाठी के अनुसार भारत में मुस्लिम सम्प्रभुता का इतिहास इल्तुतमिश से आरम्भ होता है। अवफी ने इल्तुतमिश के ही शासन काल में 'जिवामी-उल-हिकायत' की रचना की। निजामुल्मुल्क मुहम्मद जुनैदी, मिलक कुतुबुद्दीन हसन गोरी और फखरुल मुल्क इसामी जैसे योग्य व्यक्तियों को उसका संरक्षण प्राप्त था। वह शोख कुतुबुद्दीन तबरीजी, शेख बहाउद्दीन जकारिया, शेख नजीबुद्दीन नख्शबी आदि सूफी संतों का बहुत सम्मान करता था।

डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार ''इल्तुतमिश निस्सन्देह गुलाम वंश का वास्तविक संस्थापक था।''

स्थापत्य कला के अन्तर्गत इल्तुतमिश ने कुतुबुद्दीन के निर्माण कार्य को पूरा करवाया।

भारत में सम्भवतः पहला मकबरा निर्मित करवाने का श्रेय भी इल्तुतमिश को दिया जाता है। इल्तुतमिश ने बदायूं की जामा मस्जिद एवं नागौर में अतरकिन के दरवाजा का निर्माण करवाया। 'अजमेर की मस्जिद' का निर्माण इल्तुतमिश ने ही करवाया था। उसने दिल्ली में एक विद्यालय की स्थापना की इल्तुतमिश का मकबरा दिल्ली में स्थित है जो एक कक्षीय मकबरा है।

सुल्तान रुक्नुद्दीन फिरोज (1236 ई.)

इल्तुतमिश ने अपनी पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी बनाया था, पर उसकी मृत्यु के बाद उसके बड़े पुत्र रुक्नुद्दीन फिरोज को दिल्ली की गद्दी पर बैठाया गया। सुल्तान बनने से पहले वह बदायूं और लाहौर की सरकार का प्रबन्ध सम्भाल चुका था। वह विलासी प्रवृत्ति का होने के कारण शासन के कार्यों में रुचि नहीं लेता था। इसलिए उसे विलास-प्रेमी जीव कहा गया है। वस्तुतः शासन की बागडोर उसकी मां शाहतुर्कान के हाथों में थी जो मूलतः एक तुर्की दासी थी।

फिरोज एवं उसकी मां शाहतुर्कान के अत्याचारों से चारों तरफ विद्रोह फूट पड़ा विद्रोह के दबाने के लिए जैसे ही फिरोज राजधानी से बाहर गया, रजिया ने लाल वस्त्र धारण कर (लाल वस्त्र पहन कर ही न्याय की मांग की जाती थी) जनता के सामने उपस्थित होकर शाहतुर्कान के विरुद्ध सहायता मांगी। जनता ने उत्साह के साथ रजिया को फिरोज के दिल्ली में घुसने के पूर्व ही दिल्ली के तख्त पर बैठा दिया तथा रुक्नुद्दीन फिरोज को कैद कर उसकी हत्या कर दी गई।

रजिया सुल्तान (1236-1240 ई.)

अपने कार्यकाल में ही इल्तुतमिश रजिया को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया तथा सिक्कों पर उसका नाम अंकित करवाय। रजिया सुल्तान दिल्ली जनता तथा अमीरों के सहयोग से राज्य सिंहासन पर बैठी और चूंकि रजिया को सुल्तान बनाने का अधिकार सिर्फ दिल्ली के अमीरो को मिला, इसलिए अन्य तुर्क अमीर जैसे निजामुलमुल्क जुनैदी, मलिक अलाउद्दीन जानी, मलिक सैफुद्दीन कूची, मलिक ईजुद्दीन कबीर खां एवं मलिक ईजुद्दीन सलारी आदि रजिया के प्रबल विरोधी बन गये। रजिया ने इजुद्दीन सलारी एवं इजुद्दीन कबीर खां को अपनी तरफ करके विद्रोह को सफलता से कुचल दिया।

सुल्तान की शक्ति एवं सम्मान में वृद्धि करने के लिए रजिया ने अपने व्यवहार में परिवर्तन किया। वह पर्दा प्रथा को त्याग कर पुरुषों की तरह 'कुबा' (कोट) एवं 'कुलाह' (टोपी) पहन कर राजदरबार में खुले चेहरे के साथ जाने लगी। उसने अपने कुछ विश्वासपात्र सरदारों को उच्च पदों पर नियुक्त किया।

इख्तियारुद्दीन ऐतगीन को, 'अमरीरे हाजिब', मलिक जमालुद्दीन याकूत (अबीसीनियन) को 'अमीर-ए-आखूर', मलिक इजुद्दीन कबीर खां को लाहौर का अक्तादार और इख्तियारुद्दीन अल्तूनिया को तबरहिंद (भटिण्डा) का अक्तादार नियुक्त किया गया। जलालुद्दीन याकूत रजिया को घोड़ों पर बैठते समय हाथों से सहारा देता था। इतिहासकार इसामी याकूत से रजिया के प्रेम सम्बन्ध होने का आरोप लगाता है, परन्तु आधुनिक इतिहासकार इससे सहमत नहीं हैं। रजिया के विरुद्ध प्रथम विद्रोह कबीर खां (लाहौर का गवर्नर) ने किया था।

लगभग 1240 ई. में तबरहिंद के अक्तादार अल्तूनिया द्वारा किये गये विद्रोह को कुचलने के लिए रजिया को तबरहिंद की ओर जाना पड़ा। तुर्क अमीरों ने याकूत की हत्या कर रजिया को बंदी बना लिया तथा दिल्ली के सिंहासन पर इल्तुतमिश के तीसरे पुत्र मुइजुद्दीन बहरामशाह को बैठाया गया।

तबरहिंद के अक्तादार अल्तूनिया से विवाह कर रजिया ने पुनः दिल्ली के तख्त को प्राप्त करने का प्रयत्न किया, पर बहरामशाह ने कैथल के समीप दोनों की हत्या कुछ हिन्दू डाकुओं द्वारा करा दी।

रजिया दिल्ली सल्तनत की प्रथम तुर्क महिला शासिका थी। उसने अपने विरोधी गुलाम सरदारों पर पूर्ण नियंत्रण रख। रजिया की असफलता के कारणों में कुछ इतिहासकारों को मत है कि 'रजिया का स्त्री होना' ही उसकी असफलता का कारण था, पर कुछ आधुनिक इतिहासकार

PERFECTION IAS

इस मत से सहमत न होकर गुलाम तुर्क सरदारों की महत्वाकांक्षा की ही रजिया ओ असफलता का कारण मानते हैं। इसामी ने रजिया पर जमालुद्दीन याकूत से अनुचित प्रेम-सम्बन्ध का आरोप लगाया है। यदि रजिया स्त्री न होती तो उसका नाम भारत के महान मुस्लिम शासकों में लिया जाता।

मुईजुद्दीन बहरामशासह (1240-1242 ई.)

रजिया को अपदस्थ करके तुर्की सरदारों ने बहरामशाह को दिल्ली के तख्य पर बैठाया। सुल्तान के अधिकार को कम करने के लिए तुर्क सरदारों ने एक नये पद 'नाइब' अर्थात् नाइब-ए-मुमलिकात का सृजन किया। इस पद पर नियुक्त व्यक्ति संपूर्ण अधिकारों का स्वामी होता था। बहरामशाह के समय में इस पद पर सर्वप्रथम मलिक इख्तियारुद्दीन एतगीन को नियुक्त किया गया। अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए एतगीन ने बहरामशाह की तलाकशुदा बहन से विवाह कर लिया।

कालान्तर में इख्तियारुद्दीन एतगीन की शक्ति इतनी बढ़ गई कि उसने अपने महल के सामने सुल्तान की तरह नौबत एवं हाथी रखना आरम्भ कर दिया था। सुल्तान ने इसे अपने अधिकारों में हस्तक्षेप समझ कर उसकी हत्या कर दी। एतगीन की मृत्यु के बाद नाइब के सारे अधिकार 'अमीर-ए-हाजिब' बदरुद्दीन शंकर रूमी खां के हाथों में आ गये।

रूमी द्वारा सुल्तान की हत्या हेतु षडयंत्र रचने के कारण उसकी एवं सरदार सैयद ताजुद्दीन की हत्या कर दी गई। इन हत्याओं के कारण सुल्तान के विरुद्ध अमीरों या तुर्की सरदारों में भयानक असन्तोष व्याप्त हो गया। 1241 ई. में मंगोल आक्रमणकारियों द्वारा पंजाब पर आक्रमण के समय रक्षा के लिए भेजी गयी सेना को वजीर बहरामशाह के विरुद्ध भड़का दिया। सेना वापस दिल्ली की ओर मुड़ गई और मई, 1241 ई. में तुर्क सरदारों ने दिल्ली पर कब्जा कर बहरामशाह का वध कर दिया। तुर्क सरदारों ने बहरामशाह के पौत्र अलाउद्दीन मसूदशह को अगला सुल्तान बनाया।

अलाउद्दीन मसूदशाह (1242-1246 ई.)

मसूदशाह बहरामशाह का पौत्र तथा फिरोजशाह का पुत्र था। उसके समय में नाइब का पद गैर तुर्की सरदारों के दल के नेता मालिक कुतुबुद्दीन हसन को मिला। चूंकि अन्य पदों पर तुर्की सरदारों के गुट के लोगों का प्रभुत्व था, इसलिए नाइब के पद का कोई विशेष महत्व नहीं रह गया था। शासन का वास्तविक अधिकार बज़ीर मुहाजबुद्दीन के पास था जो जाति से ताजिक (गैर तुर्क) था। तुर्की सरदारों के विरोध के परिणामस्वरूप यह पद नजुमुद्दीन अबू बक्र को प्राप्त हुआ। इसी के समय में बलबन को हांसी का अक्ता प्राप्त हुआ। 'अमीरे हाजिब' का पद इल्तुतमिश के 'चालीस तुर्कों के दल' के सदस्य बलबन को प्राप्त हुआ। 1245 में मंगोलों ने उच्छ पर अधिकर कर लिया परन्तु बलबन ने मंगोलों को उच्छ से खदेड़ दिया, इससे बलबन की प्रतिष्ठा बढ़ गयी। अमीरे हाजिब के पद पर बने रह कर बलबन ने शासन का वास्तविक अधिकार अपने हाथ में ले लिया। अन्ततः बलबन ने नासिरुद्दीन एवं उसकी मां से मिलकर मसूदशाह को सिंहासन से हटाने का षडयंत्र रचा। जून, 1246 में उसे इसमें सफलता मिली। बलबन ने मसूदशाह के स्थान पर इल्तुतमिश के प्रपौत्र नासिरुद्दीन महमूद को सुल्तान बनाया। मसूदशाह का शासन तुलनात्मक दृष्टि से शांतिपूर्ण रहा। इस समय सुल्तान एवं सरदारों तथा सरदारों के मध्य संघर्ष नहीं हुए। वास्तव में यह काल बलबन की 'शांति निर्माण' का काल था।

नासिरुद्दीन महमूद (1246-1266 ई.)

इल्तुतमिश का पौत्र नासिरुद्दीन 10 जनू, 1246 को सिंहासन पर बैठा। उसके सिंहासन पर बैठने के बाद अमीर सरदारों एवं सुल्तान के बीच शक्ति के लिए चल रहा संघर्ष समाप्त हो गया। नासिरुद्दीन ने राज्य की समस्त शक्ति बलबन को सौंप दी। नासिरुद्दीन महमूदशाह की स्थिति का वर्णन करते हुए इतिहासकार इसामी लिखते है कि ''वह तुर्की अधिकारियों की पूर्व आज्ञा के बिना अपनी कोई राय नहीं व्यक्त कर सकता। वह बिना उसकी आज्ञा के हाथ पैर तक नहीं हिलाता था। कहा गया है कि सुल्तान नासिरुद्दीन महात्वाकांक्षाओं से रहित एक धर्मपरायण व्यक्ति था। वह कुरान की नकल करता था और उसको बेचकर अपनी जीविका चलाता था। नासिरुद्दीन ने 7 अक्टूबर, 1246 को बलबन को 'उलूग खां' की, उपाधि प्रदान की, तदुपरान्त उसे 'अमीरे-हाजिब' बनाया गया। अगस्त, 1249 में नासिरुद्दीन की मां एवं कुछ भारतीय मुलसमानों के साथ एक दल बनाया जिसका नेता रायहान 'वकीलदर' के पद पर नियुक्त किया। गया। परन्तु यह परिवर्तन बहुत दिन तक नहीं चल सका। भारतीय मुलसमान रायहान को अधिक दिन तक तुर्क सरदार नहीं सह सके, वे पुनः बलबन से जा मिले। इस तरह दोनों विरोधी सेनाओं के बीच आमना-सामना हुआ। परन्तु अन्ततः एक समझौते के तहत नासिरुद्दीन ने रायहान को 'नाइब' के पद से मुक्त कर पुनः बलबन को यह पद दे दिया।

रायहान को एक धर्मच्युत (धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बनाया गया था), शक्ति का अपहरणकर्ता, षड्यंत्रकारी आदि कहा गया है। कुछ समय पश्चात् रायहान की हत्या कर दी गयी। सम्भवतः इसी समय बलबन ने सुल्तान नासिरुद्दीन से 'छत्र' (सुल्तान के पद का प्रतीक) प्रयोग की अनुमति मांगी, सुल्तान ने उसे अपने छत्र प्रयोग करने के लिए आज्ञा दी।

1245 ई. से सुल्तान बनने तक बलबन का अधिकांश समय विद्रोहों को दबाने में बीता। उसने 1259 ई. में मंगोल नेता हलाकू के साथ समझौता कर पंजाब में शांति स्थापित की। मिनहाजुद्दीन सिराज ने जो सुल्तान नासिरुदीन महमूद के शासनकाल में मुख्य काजी के पद पर था, अपना ग्रन्थ ताबकात-ए-नासिरी उसे समर्पित किया।

1266 ई. में नासिरुद्दीन महमूद की अकस्मात् मृत्यु के बाद बलबन उसका उत्तराधिकारी बना, क्योंकि महमूद का कोई पुत्र नहीं था।

बलबनी वंश (1265-1290 ई.)

गायासुद्दीन बलबन (1266-1286 ई.)

इल्बरी जाति के गयासुद्दीन बलबन ने एक नये राजवंश 'बलबनी वंश' की स्थापना की। बलबन को ख्वाजा जमालुद्दीन बसरी नाम का एक व्यक्ति खरीद कर 1232-33 ई. में दिल्ली लाया था। इल्तुतमिश ने ग्वालियर को जीतने के उपरान्त गयासुद्दीन बलबन को खरीद लिया। अपनी योग्यता के कारण ही बलबन इल्तुतमिश के समय में, विशेषकर रजिया के समय में अमीर-ए-शिकार, बहरामशाह के समय में अमीर-ए-आखूर, मसूदशाह के समय में अमीर-ए-हाजिब एवं सुल्तान नासिरुद्दीन के समय में अमीर-ए-हाजिब व नाइब के रूप में राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का केन्द्र बन गया। बलबन तुर्कान-ए-चिहलगानी का सदस्य था। उसे रजिया के समय अमीर-ए-शिकार का पद प्रदान किया गया था। नासिरुद्दीन की मृत्यु के उपरान्त 1266 ई. में अमीर सरदारों के सहयोग से वह गयासुद्दीन बलबन के नाम से दिल्ली के राज्य सिंहासन

PERFECTION IAS

पर बैठा। इस प्रकार वह इल्बरी जाति का द्वितीय शासक बना। बलबन जातीय श्रेष्ठता में विश्वास रखता था। इसीलिए उसने अपना संबंध फिरदौसी के शाहनामा में उल्लिखित तुरानी शासक के वंश अफरासियाब से जोड़ा। अपने पौत्रों का नामकरण मध्य एशिया के ख्याति प्राप्त शासक कैखुसरो, कैकुबाद इत्यादि के नाम पर किया। उसने प्रशासन में सिर्फ कुलीन व्यक्तियों को नियुक्त किया। उसका कहना था कि ''जब मैं किसी तुच्छ परिवार के व्यक्ति को देखता हूं तो मरे शरीर की प्रत्येक नाड़ी उत्तेजित हो जाती है।''

बलबन ने इल्तुतमिश द्वारा स्थापित 40 तुर्की सरदारों के दल को समाप्त किया, तर्क अमीरों को शक्तिशाली होने से रोका, अपने शासन काल में हुए एकमा बंगाल का तुर्क विद्रोह, जहां के शासक तुगरिल खां वेग ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था, की सूचना पाकर बलबन ने अवध के सूबेदार अमीन खां को भेजा परन्तु वह असफल होकर लौटा। अत: क्रोधित होकर बलबन ने उसकी हत्या करवा दी और उसका सिर अयोध्या के फाटक पर लटका दिया और स्वयं इस विद्रोह का बखूबी दमन किया। बंगाल की तत्कालीन राजधानी लखनौती को उस मसय 'विद्रोह का नगर' कहा जाता था। तुगरिल वेग को पकड़ने एवं उसकी हत्या करने का श्रेय मलिक कुकद्दीर को मिला, चूंकि इसके पहले तुगरिल को पकड़ने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा था इसलिए मुकद्दीर की सफलता से प्रसन्न होकर बलबन ने उसे 'तुगरिलकुश' (तुगरिल की हत्या करने वाला) की उपाधि प्रदान की। अपने पुत्र बुखरा खां को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त बलबन ने मेवातियों एवं कटेहर में हुए विद्रोह का भी दमन किया तथा दोआब एवं पंजाब क्षेत्र में शान्ति स्थापित की। इस प्रकार अपनी शक्ति को समेकित करने के बाद बलबन ने भव्य उपाधि जिल्ले-इलाही धारण किया।

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त पर मंगोल आक्रमण के भय को समाप्त करने के लिए बलबन ने एक सुनिश्चित योजना का क्रियान्वयन किया। उत्तर-पश्चिमी सीमा को दो भागों में बांट दिया गया।

लाहौर, मुल्तान और दिपालपुर का क्षेत्र शाहजादा मुहम्मद को और सुमन, समाना तथा उच्छ का क्षेत्र शाहजादा बुगरा खां को दिया गया। प्रत्येक शाहजादे के लिए प्राय: 18 हजार घुड़सवारों की एक शक्तिशाली सेना रखी गयी। उसने सैन्य विभाग 'दीवान-ए-अर्ज' को पुनर्गठित करवाया, इमादुलमुल्क को दीवान-ए-अर्ज के पद पर प्रतिष्ठित किया तथा सीमान्त क्षेत्र में स्थित किलों का पुनर्निर्माण करवाया। बलबन ने दीसपन-ए-अर्ज को वजीर के नियंत्रण से मुक्त कर दिया जिससे उसे धन की कमी न हो।

बलबन की अच्छी सेना व्यवस्था को श्रेय इमादुलमुल्क को ही था। साथ ही उसने अयोग्य एवं वृद्ध सैनिकों को पेंशन देकर मुक्त करने की योजना चलाई तथा बलबन ने अपने सैनिकों को वेतन का भुगतान नकद वेतन में किया। उसने तुर्क प्रभाव को कम करने के लिए फारसी परम्परा पर आधारित 'सिजदा' (घुटने पर बैठकर सम्राट के सामने सिर झुकाना) एवं 'पाबोस' (पांव को चूमना) के प्रचलन को अनिवार्य कर दिया। बलबन ने गुप्तचर विभाग की स्थापना राज्य के अन्तर्गत होने वाले षडयन्त्रों एवं विद्रोहों के विषय में पूर्व जानकारी के लिए किया। गुप्तचरों की नियुक्ति बलबन स्वयं करता था और उन्हें पर्याप्त धन उपलब्ध कराता था। कोई भी गुप्तचर खुले दरबार में उससे नहीं मिलता था। यदि कोई गुप्तचर अपने कर्तव्य की पूर्ति नहीं करता था तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। उसने फारसी रीति-रिवाज पर आधारित नवरोज उत्सव को प्रारम्भ करवाया। अपने विरोधियों के प्रति बलबन ने कठोर 'लौह एवं रक्त' नीति का पालन किया। इस नीति के अन्तर्गत विद्रोही व्यक्ति की हत्या कर उसकी स्त्री एवं बच्चों को दास बना लिया जाता था।

बलबन का राजत्व सिद्धान्त: बलबन दिल्ली सल्तनत का पहला ऐसा सुल्तान था जिसने अपने राजत्व सिद्धान्त की विस्तार पूर्वक व्याख्या की। उसके राजत्व सिद्धान्त के महत्त्वपर्णू तत्व थे- राजवंशज अर्थात् राजा को राजवंश से सम्बन्धित होना चाहिए।

राजत्व को दैवी संस्था मानते हुए बलबन ने कहा कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि (नियाबते खुदाई) होता है, अत: उसका स्थान केवल पैगम्बर के पश्चात् है। ऐसी स्थिति में उसके द्वारा किया गया कार्य न्याय संगत होता है। बलबन ने अपने पुत्र बुगरा खां से कहा था कि ''सुल्तान का पद निरंकुशता का सजीव प्रतीक है''। बलबन ने उच्च कुल एवं निम्न कुल के व्यक्तियों के बीच अन्तर स्थापित करने को महत्व दिया। बलबन के अनुसार राजत्व के लिए भव्य दरबार एवं दिखावटी मान मर्यादा का होना आवश्यक है।

बलबन ने फारसी रीति-रिवाज पर आधारित उनके राजाओं के नाम की तरह अपने पौत्रों का नाम कैकुबाद, कैखुसरो एवं क्यूमर्स रखा। उसका दरबार ईरानी परम्परा के अन्तर्गत सजाया गया था। उसने ईरानी त्यौहार नौरोज प्रथा आरम्भ किया। बलबन ने ईश्वर, शासक तथा जनता के बीच त्रिपक्षीय सम्बन्धों को राजत्व का आधार बनाना चाहा। उसने राजा द्वारा निष्पक्ष एवं कठोर न्याय किये जाने को महत्व दिया और साथ ही कुरान के नियमों को शासन का आधार बनाया।

बलबन ने खलीफा के महत्व को स्वीकार करते हुए अपने द्वारा जारी किये गये सिक्कों पर खलीफा के नाम को अंकित कराया तथा उसके नाम से खुतबे भी पढ़े। अमीर खुसरो ने अपना दरबारी जीवन बलबन के पुत्र मुहम्मद के समय से ही शुरू किया।

1286 ई. में बलबन का बड़ा पुत्र मुहम्मद अचानक एक बड़ी मंगोल सेना से घिर जाने के कारण युद्ध करते हुए मारा गया। विख्यात कवि अमीर खुसरो जिसका नाम तूतिए-हिन्द (भारत का तोता) था तथा अमीर हसन देहलवी ने अपना साहित्यिक जीवन शाहजादा मुहम्मद के समय में शुरू किए थे। अपने प्रिय पुत्र मुहम्मद की मृत्यु के सदमे को न बर्दाश्त कर पाने के कारण 80 वर्ष की अवस्था में 1286 ई. में बलबन की मृत्यु हो गई। मृत्यु पूर्व बलबन ने अपने दूसरे पुत्र बुगरा खां को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने के आशय से बंगाल से वापस बुलाया किन्तु विलासी बुगरा खां ने बंगाल के आरामपसन्द एवं स्वतंत्र जीवन को अधिक पसन्द किया और चुपके से बंगाल वापस चला गया। तदुपरान्त बलबन ने अपने पौत्र (मुहम्मद के पुत्र) कैखुसरो को अपना उत्तराधि कारी चुना।

बलबन शरीयत का कट्टर समर्थक था और वह दिन में 5 बार नमाज पढ़ता था। सुल्तान बनने के लिए उसने शराब तथा भोग विलास को पूर्णत: त्याग दिया। बलबन उलेमाओं का बहुत सम्मान करता था। उसने अपने राजदरबार में अनेक कलाकारों एवं साहित्यकारों को संरक्षण प्रदान किया। उसके राज्याश्रय में फारसी के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो एवं अमीर हसन रहते थे। इनके अतिरिक्त ज्योतिषी एवं चिकित्सक मौलाना हमीदुद्दीन मुतरिज, मौलाना बदरुद्दीन एवं मौलाना हिसामुद्दीन भी उसके दरबार में रहते थे। बलबन के बारे में के. ए. निजामी का कथन

PERFECTION IAS

है– ''बलबन एक उत्तम अभिनेता था और अपने दर्शकों को आधुनिक फिल्मी सितारो की भांति मंत्रगुग्ध रखता था।''

बलबन के कथन

1. ''राजा का हृदय ईश्वर की कृपा का विशेष कोष है और समस्त मनुष्य जाति में उसके समान कोई नहीं है।''
2. ''एक अनुग्रही राजा सदा ईश्वर के संरक्षण के छत्र से रहित रहता है।''
3. ''राजा को इस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए कि मुसलमान उसके प्रत्येक कार्य शब्द या क्रियाकलाप को मान्यता दे और प्रशंसा करे।''
4. ''जब मैं किसी तुच्छ परिवार के व्यक्ति को देखता हूं तो मेरे शरीर की प्रत्येक नाड़ी क्रोध से उत्तेजित हो जाती है।''

कैकुबाद एवं शम्सुद्दीन क्यूमर्स (1287–1290 ई.)

बलबन अपनी मृत्यु के पूर्व कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। पर दिल्ली के कोतवाल फखरुद्दीन मुहम्मद ने बलबन की मृत्यु के बाद कूटनीति के द्वारा कैखुसरो को मुल्तान की सूबेदारी देकर कैकुबाद को 17 या 18 वर्ष की अवस्था में दिल्ली की गद्दी पर बैठाया।

फखरुद्दीन के दामाद निजामुद्दीन ने अपने कुचक्र के द्वारा सुल्तान को भोग विलास में लिप्त कर स्वयं सुल्तान के सम्पूर्ण अधिकार को 'नाइब' बनकर प्राप्त कर लिया, निजामुद्दीन के प्रभाव से मुक्त होने के बाद कैकुबाद ने उसे जहर देकर मरवा दिया।

कैकुबाद ने गैर तुर्क सरदार जलालुद्दीन फिरोज खिलजी को अपना सेनापति बनाया जिसका तुर्क सरदारों पर बुरा प्रभाव पड़ा। बैकुबाद के समय मंगोलों ने तामर खां के नेतृत्व में समाना पर आक्रमण किया हालांकि सेना द्वारा उन्हें वापस खदेड़ दिया गया।

तुर्क सरदार बदला लेने की बात को सोच ही रहे थे कि कैकुबाद को लकवा मार गया। प्रशासन के कार्यों में उसे अक्षम देखकर तुर्क सरदारों ने उसके तीन वर्षीय पुत्र शुम्सुद्दीन क्यूमर्स को सुल्तान घोषित कर दिया।

कालान्तर में जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने उचित अवसर प्राप्त कर शम्सुद्दीन का वधकर दिल्ली के तख्त पर स्वयं अधिकार करके खिलजी वंश की स्थापना की।

खिलजी वंश (1290–1320 ई.)

खिलजी कौन थे? इस विषय में पर्याप्त विवाद है। इतिहासकार निजामुद्दीन अहमद ने खिलजी को चंगेज खां का दामाद और कुलीन खां का वंशज, बरनी ने उसे तुर्कों से अलग एवं फखरुद्दीन ने खिलजियों को तुर्कों की 64 जातियों में से एक बताया है। फखरुद्दीन के मत का अधिकांश विद्वानों ने समर्थन किया है। चूंकि भारत आने से पूर्व ही यह जाति अफगानिस्तान के हेलमन्द नदी के तटीय क्षेत्रो के उन भागों में रहती थी जिसे खिलजी के नाम से जाना जाता था। सम्भवत: इसीलिए इस जाति को खिलजी कहा गया।

मामलूक वंश के अंतिम सुल्तान शमसुद्दीन क्यूमर्स की हत्या के बाद ही जलालुद्दीन फिरोज सिंहासन पर बैठा था इसलिए इतिहास में खिलजी वंश की स्थापना को खिलजी क्रांति के नाम से भी जाना जाता है। खिलजी क्रांति केवल इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उसने गुलाम वंश को समाप्त कर नवीन खिलजी वंश की स्थापना की बल्कि इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि खिलजी क्रांति केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उसने गुलाम वंश को समाप्त कर नवीन खिलजी वंश की स्थापना की बल्कि इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि खिजली क्रांति के परिणामस्वरूप दिल्ली सल्तनत का सुदूर दक्षित तक विस्तार हुआ, जातिवाद में कमी आई और साथ ही यह धारणा भी खत्म हुई कि शासन केवल विशिष्ट वर्ग का व्यक्ति ही कर सकता है।

खिलजी मुख्यत: सर्वहारा वर्ग के थे। खिलजी युग साम्राज्यवाद और मुस्लिम शक्ति के विस्तार का युग था। इस क्रांति के बाद तुर्की अमीर सरदारों के प्रभाव क्षेत्र में कमी आई।

इस प्रकार खिलजी शासकों की सत्ता मुख्य रूप से शक्ति पर निर्भर थी। खिलजियों ने यह सिद्ध कर दिया कि राज्य बिना धर्म की सहायता से न केवल जीवित रखा जा सकता है बल्कि सफलतापूर्वक चलाया भी जा सकता है। जलालुद्दीन खिलजी द्वारा राजगद्दी संभालना मामलूक राजवंश के अंत और तुर्क गुलाम अभिजात वर्ग के वर्चस्व का द्योतक है।

जलालुद्दीन फिरोज (1290–96 ई.)

जलालुद्दीन फिरोज खिलजी 'खिलजी' वंश का संस्थापक था। उसने अपना जीवन एक सैनिक के रूप में शुरू किया था। अपनी योग्यता के बल पर उसने सर–ए–जहांदार/शाही अंगरक्षक का पद प्राप्त किया तथा बाद में समाना का सूबेदार बना। कैकुबाद ने उसे आरिज–ए–मुमालिक का पद दिया और शाइस्ता खां की उपाधि के साथ सिंहासन पर बैठा। उसने दिल्ली के बजाय किलोखरी के माध्य में राजयाभिषेक करवाया। सुल्तान बनते समय जलालुद्दीन की उम्र 70 वर्ष थी। दिल्ली सल्तनत का वह पहला सुल्तान था जिसकी आन्तरिक नीति दूसरों को प्रसन्न करने के सिद्धान्त पर आधारित थी। उसने हिन्दू जनता के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया।

जलालुद्दीन ने अपने राज्याभिषेक के एक वर्ष के बाद दिल्ली में प्रवेश किया। उसने अपने पुत्रों को खानखाना, अर्कली खां, एवं कक्र खां की उपाधि प्रदान की। जलालुद्दीन ने अपने अल्प शासन काल में कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियों प्राप्त की। इन उपलब्धियों में उसने अगस्त, 1290 में कड़ा मानिकपुर के सूबेदार मलिक छज्जू, जिसने 'सुल्तान मुगीसुद्दीन' की उपाधि धारण कर अपने नाम के सिक्के चलवाये एवं खुतबा पढ़वाया, के विद्रोह को दबाया। इस अवसर पर कड़ा मानिकपुर की सूबेदारी अपने भतीजे अलाउद्दीन खिलजी को दी। उसका 1291 ई. में रणथम्भौर का अभियान असफल रहा। 1292 में मन्डौर एवं झाईन के किलों को जीतने में जलालुद्दीन को सफलता मिली। दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों में ठगों का दमन किया।

1292 ई. में ही मंगोल आक्रमणकारी हलाकू का पौत्र अब्दुल्ला लगभग डेढ़ लाख सिपाहियों के साथ पंजाब पर आक्रमण कर सुनाम तक पहुंच गया परन्तु अलाउद्दीन ने मंगोलों को परास्त करने में सफलता प्राप्त की और अन्त में दोनों के बीच सन्धि हुई। मंगोल वापस जाने के लिए तैयार हो गये। परन्तु चंगेज खां के नाती उलगू ने अपने लगभग 4000 मंगोल समर्थकों के साथ इस्लाम धर्म ग्रहण कर भारत में ही रहने का निर्णय किया। कालान्तर में जलालुद्दीन ने उलगू के साथ ही अपनी पुत्री का विवाह किया और साथ ही उनके रहने के लिए दिल्ली के समीप ही मुगरलपुर नाम की बस्ती बसाई गई। बाद में उन्हें ही 'नवीन मुसलमान' के नाम से जाना गया। जलालुद्दीन ने ईरान के धार्मिक पाकीर सीदी मौला को हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया। हालांकि यह सुल्तान

PERFECTION IAS

का एकमात्र कठोर कार्य था अन्यथा उसकी नीति उदारता और सभी को संतुष्ट करने की थी। जलालुद्दीन के शासन काल में ही उसके भतीजे अलाउद्दीन खिलजी ने शासक बनने से पूर्व ही 1292 ई. में अपने चाचा की स्वीकृति के बाद भिलसा एवं देवगिरि का अभियान किया। उस समय देवगिरि का शासक रामचन्द्र देव था।

इस प्रकार जलालुद्दीन के समय में देवगिरि पर आक्रमण मुसलमानों का दक्षिण भारत पर प्रथम आक्रमण था। इन दोनों अभियानों से अलाउद्दीन को अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई। अमीरों ने मार्ग में ही अलाउद्दीन से सम्पत्ति को छीनने की सलाह दी, परन्तु जलालुद्दीन ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

जलालुद्दीन खिलजी की हत्या के षड्यंत्र में अलाउद्दीन ने अपने भाई अलमास बेग की सहायता ली जिसे बाद में उलूग खां की उपाधि से विभूषित किया गया। इस प्रकार अलाउद्दीन ने अपने उदार चाचा की हत्या कर दिल्ली के तख्त पर 22 अक्टूबर, 1296 को बलबन के लाल महल में अपना राज्याभिषेक करवाया। जलालुद्दीन खिलजी का शासन उदार निरंकुशता पर आधारित था। अपनी उदार नीति के कारण जलालुद्दीन ने कहा था।- ''मैं एक वृद्ध मुसलमान हूं, और मुसलमान का रक्त बहाने की मेरी आदत नहीं है।'' अमीर खुसरो और इमामी दोनों ने अलाउद्दीन को ''एक भाग्यवादी व्यक्ति'' कहा है।

अलाउद्दीन के राज्याभिषेक पर बरनी का कथन है कि ''शहीद सुल्तान (फिरोज खिलजी) के कटे मस्तक से अभी रक्त टपक ही रहा था कि शाही चंदोबा अलाउद्दीन के सिर पर रखा गया और उसे सुल्तान घोषित कर दिया गया।''

अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316 ई.)

अलाउद्दीन का बचपन का नाम अली तथा गुरशास्प था। जलालुद्दीन के दिल्ली तख्त पर बैठने के बाद उसे अमीर-ए-तुजुक का पद मिला। मलिक छज्जू के विद्रोह को दबाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण जलालुद्दीन ने उसे कड़ा-मानिकपुर की सूबेदारी सौंप दी। भिलसा, वंदेरी एवं देवगिरि के सफल अभियानों से प्राप्त अपार धन ने उसकी स्थिति और मजबूत कर दी। इस प्रकार उत्कर्ष पर पहुंचे अलाउद्दीन ने अपने चाचा जलालुद्दीन की हत्या कर 22 अक्टूबर, 1296 को दिल्ली में स्थित बलबन के लाल महल में अपना राज्याभिषेक सम्पन्न करवाया। राज्याभिषेक के बाद उत्पन्न कठिनाइयों का सफलता पूर्वक सामना करते हुए अलाउद्दीन ने कठोर शासन के अन्तर्गत अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करना प्रारम्भ किया। अपनी प्रारम्भिक सफलताओं से प्रोत्साहित होकर अलाउद्दीन ने सिकन्दर द्वितीय (सानी) की उपाधि ग्रहण कर इसका उल्लेख अपने सिक्कों पर करवाया।

उसने विश्व-विजय एवं एक नवीन धर्म को स्थापित करने के अपने विचार को अपने मित्र एवं दिल्ली के कोतवाल अलाउल मुल्क के समझाने पर त्याग दिया। यद्यपि अलाउद्दीन ने खलीफा की सत्ता को मान्यता प्रदान करते हुए 'यामिन-उल-खिलाफत-नासिरी- उल-मोमिमीन' की उपाधि ग्रहण की, किन्तु उसने खलीफा से अपने पद की स्वीकृति लेनी आवश्यक नहीं समझी। उलेमा वर्ग को भी अपने शासन कार्य में हस्तक्षेप नहीं करने दिया। उसने शासन में इस्लाम के सिद्धान्तों को प्रमुखता न देकर राज्यहित को सर्वोपरि माना। अलाउद्दीन खिलजी के समय निरंकुशता अपने चरम सीमा पर पहुंच गयी। अलाउद्दीन खिलजी ने शासन में न तो इस्लाम के सिद्धान्तों का सहारा लिया, न ही उलेमा वर्ग की सलाह ली।

अलाउद्दीन खिलजी के राज्य मे कुछ विद्रोह हुए जिनमें 1299 ई. में गुजरात के सफल अभियान में प्राप्त धन के बंटवारे को लेकर 'नवीन मुसलमानों' द्वारा किये गये विद्रोह का दमन नुसरत खां ने किया। दूसरा विद्रोह अलाउद्दीन के भतीजे अकत खां द्वारा किया गया। उसने मंगोल मुसलमानों के सहयोग से अलाउद्दीन पर प्राणघातक हमला किया जिसके बदले में उसे पकड़ कर मार दिया गया।

तीसरा विद्रोह अलाउद्दीन की बहन के लड़के मलिक उमर एवं मंगू खां ने किया, पर इन दोनों को हरा कर उनकी हत्या कर दी गई। चौथा विद्रोह दिल्ली के हाजी मौला द्वारा किया गया जिसका दमन सरकार हमीदुद्दीन ने किया। इस प्रकार इन सभी विद्रोहों को सफलता पूर्वक दबा दिया गया। अलाउद्दीन ने तुर्क अमीरों द्वारा किये जाने वाले विद्रोह के कारणों का अध्ययन कर उन कारणों को समाप्त करने के लिए 4 अध्यादेश जारी किये। प्रथम अध्यादेश के अन्तर्गत अलाउद्दीन ने दान, उपहार एवं पेंशन के रूप में अमीरों को दी गयी भूमि को जब्त कर उस पर अधिकाधिक कर लगा दिया जिससे उनके पास धनाभाव हो गया।

द्वितीय अध्यादेश के अन्तर्गत अलाउद्दीन ने गुप्तचर विभाग को संगठित कर 'बरीद' (गुप्तचर अधिकारी) एवं 'मुनहिन' (गुप्तचर) की नियुक्ति की। तृतीय अध्यादेश के अन्तर्गत अलाउद्दीन ने मद्यनिषेध, भांग खाने एवं जुआ खेलने पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया।

चौथे अध्यादेश के अन्तर्गत अलाउद्दीन ने अमीरों के आपस में मेल-जोल, सार्वजनिक समारोहों एवं वैवाहिक सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सुल्तान द्वारा लाये गये ये चारों अध्यादेश पूर्णतः सफल रहे। अलाउद्दीन ने मुकदमों, हिन्दू लगान अधिकारियों के विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया।

साम्राज्य विस्तारः अलाउद्दीन साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का था। इसने उत्तर भारत के राज्यों को जीत कर उन पर प्रत्यक्ष शासन किया। दक्षिण भारत के राज्यों को अलाउद्दीन ने अपने अधीन कर उनसे वार्षिक कर वसूला।

गुजरात विजयः 1298 ई. में अलाउद्दीन ने उलूग खां एवं नुसरत खां को गुजरात विजय के लिए भेजा। अहमदाबाद के निकट 'बघेल राजा कर्ण' (राज करन) और अलाउद्दीन की सेना में संघर्ष हुआ। राजा कर्ण पराजित होकर अपनी पुत्री 'देवल देवी' के साथ भागकर देवगिरि के शासक रामचन्द्र देव के यहां शरण लिया। खिलजी सेना कर्ण की सम्पत्ति एवं उसकी पत्नी कमला देवी को साथ लेकर वापस दिल्ली आया। कालान्तर में अलाउद्दीन ने कमला देवी से विवाह कर उसे अपनी सबसे प्रिय रानी बनाया। यहीं पर नुसरत खां ने हिन्दू हिजड़े मलिक काफूर को एक हजार दीनार में खरीदा। युद्ध में विजय के पश्चात् सैनिकों ने सूरत, सोमनाथ और कैम्बे तक आक्रमण किया।

मलिक काफूरः मलिक काफूर मूलतः हिन्दू जाति का एक हिजड़ा था। चूंकि यह एक हजार दीनार में खरीदा गया था, इसलिए मलिक काफूर को 'हजार दीनारी' भी कहा जाता था। नुसरत खां ने उसे खरीद कर 1298 ई. में गुजरात विजय से वापस जाने पर सुल्तान अलाउद्दीन के समक्ष तोहफे के रूप में प्रस्तुत किया। शीघ्र ही वह सुल्तान के काफी नजदीक आ गया और 1307 ई. में सुल्तान ने उसे दिल्ली सल्तनत का मलिक-ए-नाइब बना दिया।

उसने सफलतापूर्वक खिलजी सेना का नेतृत्व करते हुए देवगिरि,

PERFECTION IAS

वारंगल, द्वारसमुद्र, मालाबार एवं मदुरा को जीत कर दिल्ली सल्तनत के अधीन कर दिया। उसकी इस अभूतपूर्व सफलता से प्रभावित होकर अलाउद्दीन ने उसे अपना सर्वाधिक विश्वस्त अधिकारी बना लिया। सत्ता एवं प्रभाव में वृद्धि के साथ-साथ मलिक काफूर की महत्वाकांक्षाएं बड़ गयी। 1316 ई. में अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसने सुल्तान के नाबालिग लड़के को सिंहासन पर बैठाकर राज्य की सम्पूर्ण शक्ति को अपने हाथ में केंद्रित कर लिया। उसने स्वयं गद्दी हथियाने के मोह में फंसकर अलाउद्दीन के दो पुत्रों की आंखें निकालवा कर नाबालिग सुल्तान की मां को बन्दी बना लिया। परन्तु अलाउद्दीन के वफादारों ने संगठित होकर काफूर के सिंहासन पर बैठने के 35 दिन बाद उसकी हत्या कर दी।

जैसलमेर विजय: सुल्तान की सेना के कुछ घोड़े चुराने के कारण अलाउद्दीन ने जैसलमेर के शासक दूदा एवं उसके सहयोगी तिलक सिंह को 1299 ई. में पराजित किया।

रणथम्भौर विजय: रणथम्भौर का शासक हम्मीर देव अपनी योग्यता एवं साहस के लिए प्रसिद्ध था। अलाउद्दीन के लिए रणथम्भौर को जीतना इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि रणथम्भौर के जीते बिना पूरे राजस्थान को जीतना कठिन था। साथ ही राणा हम्मीरदेव ने विद्रोही मंगोल नेता मुहम्मद शाह एवं केहब को अपने यहां शरण दे रखी थी, इसलिए भी अलाउद्दीन रणथम्भौर को जीतना चाहता था।

अत: जुलाई, 1301 में अलाउद्दीन ने रणथम्भौर के किले को अपने कब्जे में कर लिया। हम्मीर देव वीरगति को प्राप्त हुआ। अलाउद्दीन ने रनमल और उसके साथियों का वध करवा दिया जो हम्मीर देव से विश्वासघात करके उससे आ मिले थे। 'तारीख-ए-अलाई' एवं 'हम्मीर महाकाव्य' में हम्मीर देव एवं उसके परिवार के लोगों का जौहर द्वारा मृत्यु प्राप्त होने का वर्णन है। रणथम्भौर युद्ध के दौरान ही नुसरत खां की मृत्यु हुई।

चित्तौड़ पर आक्रमण एवं मेवाड़ विजय (1303 ई.): मेवाड़ का शासक राणरतन सिंह था जिसकी राजधानी चित्तौड़ थी। चित्तौड़ का किला सामरिक दृष्टिकोण से बहुत सुरक्षित स्थान पर बना हुआ था। इसलिए यह किला अलाउद्दीन की निगाह में चढ़ा हुआ था। कुछ इतिहासकारों ने अमीर खुसरव के रानी शैबा और सुलेमान के प्रेम प्रसंग के उल्लेख के आधार पर और 'पद्मावत' की कथा के आधार पर चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण का कारण रानी पद्मिनी के अनुपम सौन्दर्य के प्रति उसके आकर्षण को ठहराया है।

अन्तत: 28 जनवरी, 1303 को सुल्तान चित्तौड़ के किले पर अधिकार करने में सफल हुआ। राणा रतन सिंह युद्ध में शहीद हुआ और उसकी पत्नी रानी पद्मिनी ने अन्य स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया किले पर अधिकार के बाद सुल्तान ने लगभग 30,000 राजपूत वीरों का कत्ल करवा दिया। उसने चित्तौड़ का नाम खिज्र खां के नाम पर खिज्राबाद रखा और उसे खिज्र खां को सौंप कर दिल्ली वापस आ गया।

चित्तौड़ को पुन: स्वतन्त्र कराने का प्रयत्न राजपूतों द्वारा जारी रहा। इसी बीच अलाउद्दीन ने खिज्र खां को वापस दिल्ली बुलाकर चित्तौड़ दुर्ग की जिम्मेदारी राजपूत सरदार मालदेव को सौंप दिया। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् गुहिलौत राजवंश के हम्मीरदेव ने मालदेव पर आक्रमण कर 1321 ई. में चित्तौड़ सहित पूरे मेवाड़ को आजाद करवा लिया। इस तरह अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद चित्तौड़ एक बार फिर पूर्ण स्वतन्त्र हो गया।

मालवा विजय (1305 ई.): मालवा पर शासन करने वाला महलकदेव एवं उसका सेनापति हरनन्द (कोका प्रधान) बहादुर योद्धा थे। 1305 ई. में अलाउद्दीन ने मुल्तान के सूबेदार आईन-अल-मुल्क के नेतृत्व में एक सेना को मालवा पर अधिकार करने के लिए भेजा। दोनों पक्षों के संघर्ष में महलकदेव एवं उसका सेनापति हरनन्द मारा गया।

नवम्बर, 1305 में किले पर अधिकार के साथ ही उज्जैन, धारानगरी, चंदेरी आदि को जीत कर मालवा समेत दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया। 1308 ई. में अलाउद्दीन ने सिवाना पर अधिकार करने के लिए आक्रमण किया। वहां के परमार राजपूत शासक शीतलदेव ने कड़ा संघर्ष किया, परन्तु अन्तत: वह मारा गया। कमालुद्दीन गुर्ग को वहां का शासक नियुक्त किया गया।

जालौर: जालौर के शासक कान्हणदेव ने 1304 ई. में अलाउद्दीन की अधीनता को स्वीकार कर लिया था पर धीरे-धीरे उसने अपने को पु: स्वतंत्र कर लिया। 1305 ई. में कमालुद्दीन गुर्ग के नेतृत्व में सुल्तान की सेना में कान्हणदेव का युद्ध में पराजित कर उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार जालौर पर अधिकार के साथ ही अलाउद्दीन की राजस्थान विजय का कठिन कार्य पूरा हुआ। 1311 ई. तक उत्तर भारत में सिर्फ नेपाल, कश्मीर एवं असम ही ऐसे भाग शेष बचे थे जिन पर अलाउद्दीन अधिकार नहीं कर सका था। उत्तर भारत की विजय के बाद अलाउद्दीन ने दक्षिण भारत की ओर अपना रुख किया।

अलाउद्दीन की दक्षिण विजय

अलाउद्दीन के समकालीन दक्षिण भारत की तीन महत्वपूर्ण शक्तियां थीं-

1. देवगिरि के यादव,
2. दक्षिण-पूर्व तेलंगान के काकतीय और
3. द्वारासमुद्र के होयसल। अलाउद्दीन द्वारा दक्षिण भारत के राज्यों को जीतने के उद्देश्य के पीछे धन की चाह एवं विजय लालसा थी। वह इन राज्यों को अपने अधीन कर वार्षिक कर वसूल करना चाहता था। दक्षिण भारत की विजय का मुख्य श्रेय 'मलिक काफूर' को ही जाता है। अलाउद्दीन के शासन काल में दक्षिण में सर्वप्रथम 1303 ई. में तेलंगाना पर आक्रमण किया गया। तेलंगाना का शासक प्रताप रूद्रदेव द्वितीय ने अपनी एक सोने की मूर्ति बनवाकर और उसके गले में सोने की जंजीर डालकर आत्मसर्पण हेतु मलिक काफूर के पास भेजा था। इसी अवसर पर प्रतापरुद्र देव ने मलिक काफूर को संसार प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा दिया था। दुर्भाग्यवश यह आक्रमण प्रतापरुद्रदेव द्वारा विफल कर दिया गया था।

देवगिरि (1307-08 ई.): शासक बनने के बाद अलाउद्दीन द्वारा 1296 ई. में देवगिरि के विरुद्ध किये गये अभियान की सफलता पर वहां के शासक रामचन्द्र देव ने प्रति वर्ष एलिचपुर की आय भेजने का वादा किया था पर रामचन्द्र देव के पुत्र शंकर देव (सिंहन देव) के हस्तक्षेप से वार्षिक कर का भुगतान रोक दिया गया। अत: नाइब मलिक काफूर के नेतृत्व में एक सेना को देवगिरि पर धावा बोलने के लिए भेजा गया। रास्ते में राजा कर्ण को युद्ध में परास्त कर काफूर ने उसकी पुत्री देवल देवी, जो कमला देवी एवं कर्ण की पुत्री थी, को दिल्ली भेज दिया जहां पर उसका विवाह खिज्र खां से कर दिया गया।

रास्ते भर लूट पाट करता हुआ काफूर देवगिरि पहुंचा और पहुंचते

PERFECTION IAS

ही उसने देवगिरि पर आक्रमण कर दिया। भयानक लूट-पाट के बाद रामचन्द्र देव के साथ वापस दिल्ली आया।

रामचन्द्र के सुल्तान के समक्ष प्रस्तुत होने पर सुल्तान ने उसके साथ उदारता का व्यवहार करते हुए 'राय रायान' की उपाधि प्रदान की। उसे सुल्तान ने गुजरात की नवसारी जागीर एवं एक लाख स्वर्ण टंके देकर वापस भेज दिया। कालान्तर में राजा रामचन्द्र देव अलाउद्दीन का मित्र बन गया। जब मलिक काफूर द्वारासमुद्र विजय के लिए जा रहा था तो रामचन्द्र देव ने उसकी भरपूर सहायता की थी।

तेलंगाना: तेलंगाना में काकतीय वंशीय राजा राज्य करते थे। तत्कालीन तेलंगाना का शासक प्रताप रुद्र देव था जिसकी राजधानी वारंगल थी। नवम्बर, 1309 मे काफूर तेलंगाना के लिए रवाना हुआ। रास्ते में रामचन्द्र देव ने काफूर की सहायता की। काफूर ने हीरों के खानों के जिले असीरगढ़ (मैरागढ़) के मार्ग से तेलंगाना में प्रवेश किया। 1310 ई. में काफूर अपनी सेना के साथ वारंगल पहुंचा। प्रतापरुद्र देव ने अपनी एक सोने की मूर्ति बनवाकर गले में एक सोने की जंजीर डालकर आत्मसपर्मण स्वरूप काफूर के पास भेजा, साथ ही 100 हाथी, 700 घोड़े अपार धन राशिं एवं वार्षिक कर देने के वायदे के साथ अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर ली। सम्भवत: इसी समय संसार प्रसिद्ध 'कोहिनूर' हीरा को प्रताप रुद्र देव ने काफूर को दिया था काफूर ने इसे सुल्तान अलाउद्दीन को सौंप दिया।

होयल: होयसल का शासक वीर बल्लाल तृतीय था। इसकी 1310 ई. में मलिक काफूर ने होयसल के लिए प्रस्थान किया। इसने अलाउद्दीन की अधीनता ग्रहण कर ली। उसने माबर के अभियान में काफूर की सहायता भी की। सुल्तान अलाउद्दीन ने बल्लाल देव को 'खिलअत', 'एक मुकुट', 'छत्र' एवं दस लाख टंके की थैली भेंट किया।

पाण्ड्य: पाण्ड्य को 'माबर' (मालाबार) के नाम से भी जाना जाता था। यहां के शासक सुन्दर पाण्ड्य एवं वीर पाण्ड्य थे। दोनों में हुए सत्ता संघर्ष में सुन्दर पाण्ड्य पराजित हुआ। सुन्दर पाण्ड्य द्वारा सहायता मांगने पर काफूर ने 1311 ई. में पाण्ड्यों के महत्वपूर्ण केन्द्र 'वीरधूल' पर आक्रमण कर दिया पर वीर पाण्ड्य हाथ नहीं आया। काफूर ने बरमतपती में स्थित 'लिंग महादेव' के सोने के मंदिर में खूब लूटपाट की। इसके अतिरिक्त ढेर सारे मंदिर उसके द्वारा लूटे एवं तोड़े गये। अमीर खुसरो के अनुसार काफूर ने रामेश्वरम् तक आक्रमण किया, वहां के हिन्दु मंदिर को तोड;कर एक मस्जिद बनवाया।

1311 ई. में काफूर विपुल धन सम्पत्ति के साथ दिल्ली पहुंचा, परन्तु उसे वीर पाण्ड्य को पकड़ने में सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस प्रकार दक्षिण में पाण्ड्य राज्य ने अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार नहीं की। सम्भवत: धन के दृष्टिकोण से यह काफूर का सर्वाधिक सफल अभियान था।

देवगिरि का द्वितीय अभियान (1312 ई.): देवगिरि के शासक रामचन्द्र देव की मृत्यु के बाद उसके पुत्र 'शंकर देव' (सिंहन देव) ने दिल्ली से सम्बन्ध तोड़ लिया। अत: 1313 ई. में काफूर को पुन: देवगिरि भेजा गया। युद्ध में शंकर देव ई. में काफूर को वापस दिल्ली बुला लिया गया। इस तरह अलाउद्दीन का साम्राज्य पश्चिमोत्तर भाग में सिन्धु नदी से लेकर दक्षिण में मदुरा तक तथा पूर्व में वाराणसी एवं अवध से लेकर पश्चिम में गुजरात तक विस्तृत था। उड़ीसा, बंगाल, बिहार एवं कश्मीर अलाउद्दीन के साम्राज्य में सम्मिलित नहीं थे। अलाउद्दीन के दक्षिण अभियानों के परिणाम स्वरूप दक्षिण में इस्लाम धर्म का प्रभाव बढ़ा और मुस्लिम संस्कृति का विस्तार हुआ।

मंगोल आक्रमण: अलाउद्दीन के समय में हुए मंगोलों के आक्रमण का उद्देश्य विजय और प्रतिशोध की भावना थी। 1297-98 ई. में मंगोल सेना ने अपने नेता कादर के नेतृत्व में पंजाब एवं लाहौर पर आक्रमण किया। जालन्धर के निकट इन आक्रमणकारियों को सुल्तान की सेना ने परास्त कर दिया। इस सेना का नेतृत्व जफर खां एवं उलुग खां ने किया था। मंगोलों का दूसरा आक्रमण सलदी के नेतृत्व में 1298 ई. में सहबान पर हुआ। जफर खां ने इस आक्रमण को सफलता पूर्वक असफल कर दिया।

1299 ई. में कुतलुग ख्वाजा के नेतृत्व में मंगोल सेना के आक्रमण को जफर खां ने पुन: असफल कर दिया। इसी युद्ध के दौरान जफर खां मारा गया, क्योंकि अलाउद्दीन एवं उलुग खां के नेतृत्व वाली सेना से उसे कोई सहायता नहीं मिली।

1303 ई. में मंगोल सेना का चौथा आक्रमण तार्गी के नेतृत्व में हुआ। लगभग 2 माह तक सीरी के क्षेत्रों में लूटपाट कर तार्गी वापस चला गया। 1305 ई. में 'अलीबेग', 'तार्ताक' एवं 'तार्गी' के नेतृत्व में मंगोलों ने अमरोहा पर आक्रमण किया, परन्तु मलिक काफूर एवं गाजी मलिक नें मंगोलों को बुरी तरह पराजित किया।

1306 ई. में मंगोल सेना का नेतृत्व करने वाला इकबालमन्द गाजी मलिक (गायासुद्दीन तुगलक) द्वारा रावी नदी के किनारे परास्त किया गया। गाजी मलिक तुगलक को अलाउद्दीन ने अपना सीमा रक्षक नियुक्त किया। इस प्रकार अलाउद्दीन ने अपने शासन काल में मंगोलों के सबसे अधिक एवं सबसे भयानक आक्रमण का सामना करते हुए सफलता प्राप्त की। मंगोल आक्रमण से सुरक्षा के लिए उसने 1304 ई. में सीरी को अपनी राजधानी बनाया तथा किलेबन्दी की।

प्रशासनिक सुधार

अपने पूर्वकालीन सुल्तानों की तरह अलाउद्दीन के पास भी कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका की सर्वोच्च शक्तियां विद्यमान थी। वह अपने को धरती पर ईश्वर का नायक या खलीफा होने का दावा करता था तथा उसने अपने को हमेशा उलेमा के आदेशों से अलग रखा। यह प्रशासन के केन्द्रीकरण पर विश्वास करता था। उसने प्रान्तों के सूबेदार तथा अन्य अधिकारियों को अपने पूर्ण नियंत्रण में रखा।

मंत्रीगण: बरनी के अनुसार ''एक बुद्धिमान वजीर के बिना राजतंत्र व्यर्थ है'' तथा ''सुल्तान के लिए एक बुद्धिमान बजीर से बढ़कर अभ्यान और यश का दूसरा स्त्रोत नहीं है और हो भी नहीं सकता।'' मंत्रीगण अलाउद्दीन को सिर्फ सलाह देते व राज्य के दैनिक कार्य को संभालते थे। अलाउद्दीन के समय में 4 महत्वपूर्ण मंत्री थे जो ऐसे 4

PERFECTION IAS

स्तम्भ के समान थे जिन पर प्रशासन रूपी भवन टिका हुआ था। ये मंत्री एवं संबंधित विभाग निम्न प्रकार थे-

1. **दीवान-ए-वजारत:** मुख्यमंत्री को 'वजीर' कहा जाता था। यह सर्वाधिक शक्तिशाली मंत्री होता था। अलाउद्दीन के समय में वजीर का महत्वपूर्ण विभाग होता था। वित्त के अतिरिक्त उसे सैनिक अभियान के समय शाही सेनाओं का नेतृत्व भी करना पड़ता था। अलाउद्दीन ने वजीर का पद अपने सैनिक अधिकारियों को सौंपा। अलाउद्दीन के शासन काल में ख्वाजा खातिर, ताजुद्दीन काफूर, नुसरत खां आदि वजीर के पद पर कार्य किये थे।
2. **दीवान-ए-आरिज या अर्ज:** आरिज-ए-मुमालिक युद्धमंत्री व सैन्य मंत्री होता था। यह वजीर के बाद दूसरा महत्वपूर्ण मंत्री होता था। इसके मुख्य कार्य सैनिकों की भर्ती करना, उन्हें वेतन बांटना, सेना की दक्षता एवं साज-सज्जा की देखभाल करना, युद्ध के समय सेनापति के साथ युद्ध क्षेत्र में जाना आदि था। अलाउद्दीन के शासन काल में मलिक नासिरुद्दीन मुल्क सिराजुद्दीन आरिज-ए-मुमालिक के पद पर था। उसका उपाधिकारी ख्वाजा हाजी नायब आरिज था। अलाउद्दीन अपने सैनिकों के साथ सहृदयता की नीति अपनाया।
3. **दीवान-ए-दंशा:** यह राज्या का तीसरा महत्वपूर्ण मंत्रालय होता था जिसका प्रधान दबीर-ए-खास था। उसका महत्वपूर्ण कार्य शाही उद्घोषणाओं एवं पत्रों का प्रारूप तैयार करना तथा प्रांतपतियों एवं स्थानीय अधिकारियों से पत्र व्यवहार करना होता था। इसके सहायक सचिव को 'दबीर' कहा जाता था। दबीर के प्रमुख को 'दबीर-ए-मुमलिकात' या दबीर-ए-खास कहा जाता था।
4. **दीवान-ए-रसालत:** यह राज्य का चौथा मंत्री होता था। इसका सम्बन्ध मुख्यत: विदेश विभाग एवं कूटनीति पत्र व्यवहार से होता था। यह पड़ोसी राज्यों को भेजे जाने वाले पत्रों का प्रारूप तैयार करता था और साथ ही विदेशों से आये राजदूतों से नजदीक का सम्पर्क बनाये रखता था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह ध र्म से सम्बन्धित विभाग था।

दीवान-ए-रियासत: आर्थिक मामलों से सम्बन्धित इस नये विभाग की स्थापना अलाउद्दीन खिलजी ने की थी। दीवान-ए-रियासत व्यापारी वर्ग पर नियंत्रण रखता था।

अलाउद्दीन द्वारा स्थापित दो नये विभाग-

1. दीवान-ए-मुस्तखराज।
2. दीवान-ए-रियासत।

अलाउद्दीन ने बाजार व्यवस्था के कुशल संचालन हेतु कुछ नये पदों को सृजित किया-

1. दीवान-ए-रियासत- यह व्यापारी वर्ग पर नियंत्रण रखता था।
2. शहना-ए-मंडी- यह बाजार का दरोगा होता था।
3. मुहत्सिब- जनसाधारण के आचरण का रक्षक एवं माप तौल का निरीक्षण करता था।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य अधिकारी सचिव होते थे। राज महल के कार्यों की देख-रेख करने वाला मुख्य अधिकारी वकील-ए-दर होता था। सुल्तान के अंगरक्षकों के मुखिया को सरजानदार कहा जाता था। इनके अतिरिक्त राजमहल के कुछ अन्य अधिकारी 'अमीर-ए-आखूर', 'शहना-ए-पील', 'अमीर-ए-शिकार', 'शराबादार', 'मुहरदार' आदि होते थे।

न्याय प्रशासन: न्याय का उच्च स्त्रोत एवं उच्चतम अदालत सुल्तान स्वयं होता था। सुल्तान के बाद 'सद्र-ए-जहां' या 'काजी-उल-कुजात' होता था, जिसके नीचे 'नायब काजी' या 'अदल' कार्य करता था जिनकी सहायता 'मुफ्ती' करते थे। 'अमरी-ए-दाद' नाम का अधिकारी दरबार में ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति को प्रस्तुत करता था जिस पर काजियों का नियंत्रण नहीं होता था।

पुलिस एवं गुप्तचर: अलाउद्दीन ने अपने शासन काल में पुलिस एवं गुप्तचर विभाग को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। कोतवाल पुलिस विभाग का प्रमुख अधिकारी होता था। पुलिस विभाग को और अधिक सुधारने के लिए अलाउद्दीन ने एक नये पद 'दीवान-ए-रियासत' का गठन किया जो व्यापारी वर्ग पर नियंत्रण स्थापित करता था। 'शहना' व 'दंडाधिकारी' भी पुलिस विभाग से सम्बन्धित अधिकारी थे। 'मुहत्सिब' सेंसर अधिकारी होता था जो जन सामान्य के आचार की रक्षा एवं देखभाल करता था। अलाउद्दीन द्वारा स्थापित गुप्तचर विभाग का प्रमुख अधिकारी 'बरीद-ए-मुमालिक' होता था। उसके नियंत्रण में उनके बरीद (संदेह वाहक) कार्य करते थे। बरीद के अतिरिक्त अन्य सूचनादाता को 'मुन्ही' कहा जाता था। मुन्हीं लोगों के घरों में प्रवेश करके गौण अपराधों को रोकते थे। मुख्यत: इन्हीं अधिकारियों को अलाउद्दीन के बाजार नियंत्रण की सफलता का श्रेय जाता है।

डाक पद्धति: अलाउद्दीन द्वारा स्थापित डाक चौकियों पर कुशल घुड़सवारों एवं लिपिकों को नियुक्त किया जाता था, जो राज्य भर का समाचार पहुंचाते थे। विद्रोहों एवं युद्ध अभियानों के बारे में सूचना शीघ्रता से मिल जाती थी।

सैनिक प्रबन्ध: अलाउद्दीन खिलजी ने आन्तरिक विद्रोहों को दबाने, वाह्य आक्रमणों का सफलतापूर्वक सामना करने एवं साम्राज्य विस्तार हेतु एक विशाल सुदृढ़ एवं स्थायी सेना का गठन किया। उसने घोड़ों को दागने एवं सैनिकों के हुलिया लिखे जाने के विषय में नवीनतम् नियम बनाये। स्थायी सेना को गठित करने वाला अलाद्दीन पहला सुल्तान था। उसने सेना का केन्द्रीकरण किया और साथ ही सैनिकों की सीधी भरती एवं नकद वेतन देने की प्रथा को प्रारम्भ किया। अमीर खुसरो के वर्णन के आधार पर **'तुमन'** दस हजार सैनिकों की टुकड़ी को कहा जाता था। अलाउद्दीन की सेना में घुड़सवार, पैदल सैनिक एवं हाथी सैनिक थे। इनमें घुड़सवार सैनिक सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे। दीवन-ए-आरिज प्रत्येक सैनिक की नामावली एवं हुलिया रखता था। फरिश्ता के अनुसर अलाउद्दीन के पास लगभग 4 लाख 75 हजार सुसज्जित एवं वर्दीधारी सैनिक थे। भलीभांति जांच परख कर भरती किये जाने वाले सैनक को **'मुर्रत्तव'** कहा जाता था। 'एक अस्पा' (एक घोड़े वाले सैनिक) सैनिक को प्रति वर्ष 234 टंका वेतन मिलता था तथा 'दो अस्पा' को प्रतिवर्ष 378 टंका वेतन के रूप में मिलता था।

प्रान्तीय प्रशासन: बरनी के अनुसर अलाउद्दीन के साम्राज्य में प्रांतों की संख्या ग्यारह थी-

PERFECTION IAS

1. गुजरात,
2. मुल्तान,
3. दिपालुपर,
4. समाना और सुनाम,
5. धार और उज्जैन,
6. झाइन,
7. चित्तौड़,
8. चंदेरी,
9. बदायूं (कटेहर),
10. अवध और
11. कड़ा।

प्रांतपति एक प्रकार का लघु सुल्तान था। प्रांतपति दरबार लगाता, न्याय करता तथा प्रशासन संभालता था। मध्यकालीन भारतीय इतिहासकार प्रांतपति के लिए 'वली' या 'मुक्ता' शब्द का प्रयोग करते हैं जो 'अक्ता' का अधिकारी होता था। ये पद वंशानुगत नहीं थे, सुल्तान जब चाहे उन्हें उनके पद से हटा सकता था तथा उन्हें स्थानान्तरित कर सकता था। अलाउद्दीन के समय में अनेक अधीनस्थ शासक थे, जैसे-देवगिरि, तेलंगाना इत्यादि के शासक। ये वली या मुक्ता की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र थे।

आर्थिक सुधार

अलाउद्दीन को आर्थिक सुधारों की आवश्यकता इसलिए महसूस हुई क्योंकि उसे अपने साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए एवं निरन्तर हो रहे मंगोल आक्रमणों के कारण एक विशाल सेना की आवश्यकता थी। फरिश्ता के अनुसार सुल्तान के पास लगभग 50,000 दास थे जिन पर अत्यधिक खर्च होता था। इन खर्चों को दृष्टि में रखते हुए अलाउद्दीन ने एक नई आर्थिक नीति का निर्माण किया। अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों में सेना भूमिका महत्वपूर्ण थी। अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीति के विषय में हमें व्यापक जानकारी जियाउद्दीन बरनी की कृति 'तरीखे-फिरोजशाही' से मिलती है। अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत मूल्य नियंत्रण के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी अमीर खुसरो की पुस्तक 'खजाइनुल-फुतूह', इब्नबतूता की पुस्तक 'रेहला' एवं इसामी की पुस्तक 'फुतूह-उस-सलातीन' से भी मिलती है। अलाउद्दीन का मूल्य नियंत्रण केवल दिल्ली में लागू था या फिर पूरी सल्तनत में, यह प्रश्न काफी विवादास्पद है। मोरलैण्ड एवं के.एस. लाल ने मूल्य नियंत्रण के केवल दिल्ली में लागू होने की बात कही है, परन्तु प्रो. बनारसी प्रसार सक्सेना ने इस मत का खण्डन किया है। अलाउद्दीन के बाजार व्यवस्था के पीछे कारणों को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। अलाउद्दीन के समकालीन इतिहासकारों ने उसके इस व्यवस्था के बारे में जो उल्लेख किया, उनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

- **जियाउद्दीन बरनी:** ''इन सुधारों के क्रियान्वयन के पीछे मूलभूत उद्देश्य मंगोलों के भीषण आक्रमण का मुकाबला करने के लिए एक विशाल एवं शक्तिशाली सेना तैयार करना था।''
- **अमीर खुसरो:** ''सुल्तान ने इन सुधारों को जनकल्याण की भावना से लागू किया।'' अलाउद्दीन ने एक अधिनियम द्वारा दैनिक उपयोग की वस्तुओं का मूल्य निश्चित कर दिया था। कुछ महत्वपूर्ण अनाजों का मूल्य इस प्रकार था- गेहूं 7.5 जीतल प्रति मन, चावल 5 जीतल प्रति मन, जौ 4 जीतल प्रति मन, उड़द 5 जीतल प्रति मन, मक्खन या घी 1 जीतल प्रति $2^{1/2}$ किलों। मूल्यों की स्थिरता अलाउद्दीन की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। उसने खाद्यान्नों की बिक्री हेतु 'शहना-ए-मंडी' नामक बाजार की स्थापना की थी। प्राकृतिक विपदा से बचने के लिए अलाउद्दीन ने 'शासकीय अन्न भण्डारों' की व्यवस्था की थी। अपनी 'राशन व्यवस्था' के अन्तर्गत अनाज को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराने के लिए सुल्तान ने दोआब क्षेत्र से लगान अनाज के रूप में वसूल किया पर पूर्वी राजस्थान के झाइन क्षेत्र से आधी मालगुजारी अनाज में और आधी नकद रूप में वसूली जाती थी। अकाल या बाढ़ के समय अलाउद्दीन प्रत्येक घर को प्रति आधा मन अनाज देता था। राशनिंग व्यवस्था अलाउद्दीन की नवीन सोच थी। मलिक-मकबूल को अलाउद्दीन ने खाद्यान्न या अन्न बाजार का 'शहना-ए-मंडी' नियुक्त किया था।

'सराय-ए-अदल': ऐसा बाजार होता था जहां पर वस्त्र, शक्कर, जड़ी बूटी, मेवा, दीपक जलाने का तेल एवं अन्य निर्मित वस्तुए बिकने के लिए आती थी। सराय-ए-अदल विशेष रूप से सरकारी धन से सहायता प्राप्त बाजार था। अलाउद्दीन ने कपड़े का व्यापार करने वाले व्यापारी को खाद्यान्न व्यापारियों की तुलना में अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया।

दिल्ली में आकर व्यपार करने वाले प्रत्येक व्यापारी को दीवान-ए-रियासत में अपना नाम लिखवाना पड़ता था। अलाउद्दीन के बाजार नियन्त्रण की पूरी व्यवस्था का संचालन 'दीवान-ए-रियासत' नाम का अधिकारी करता था। उसके नीचे काम करने वाले कर्मचारी वस्तुओं के क्रय-विक्रय एवं व्यवस्था का निरीक्षण करते थे। प्रत्येक बाजार का अधीक्षक जिसे 'शहना-ए-मंडी' कहा जाता था, बाजार का उच्च अधिकारी होता था। उसके अधीन 'बरीद' होते थे, जो बाजार के अन्दर घूम कर बाजार का निरीक्षण करते थे। बरीद के नीचे 'मुनहियान' या गुप्तचर कार्य करते थे।

अधिकारियों का क्रम इस प्रकार था-दीवान-ए-रियासत, शहना-ए-मंडी, बरीद और मुनहियान। अलाउद्दीन ने मलिक याकूब को 'दीवान-ए-रियासत' नियुक्त किया था। अलाउद्दीन ने 'परवान-नवीस' नामक अधिकारी की नियुक्ति की थी। इसका कार्य होता था- तस्बीहस तबरेज, कंजमाबरी, सुनहरी जरी, देवगिरि रेशम, खुज्जे दिल्ली एवं कमरबंद जैसी वस्तुओं को बेचने के लिए परवाना (परमिट) जारी करना।

घोड़ों, दासों एवं मवेशियों के बाजार में मुख्यत: चार नियम लागू थे-

1. किस्म के अनुसार मूल्य का निर्धारण,
2. व्यापारियों एवं पूंजीपतियों का बहिष्कार,
3. दलाली करने वाले लोगों पर कठोर अंकुश और
4. सुल्तान द्वारा बार-बार जांच पड़ताल।

मूल्य नियंत्रण को सफल बनाने में 'मुहत्सिब' (सेंसर) एवं 'नाजिर' (नाप-तौल अधिकारी) की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

राजस्व एवं कर व्यवस्था: राजस्व सुधारों के अन्तर्गत अलाउद्दीन ने सर्वप्रथम मिल्क, इनाम एवं वक्फ के अन्तर्गत दी गई भूमि को वापस लेकर उसे खालसा भूमि में बदल दिया, साथ

PERFECTION IAS

ही उसने मुकद्दमों, खूतों एवं बलाहारों के विशेष अधिकार को वापस ले लिय था। कर व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए 'दीवाने मुस्तखराज' विभाग की स्थापना की थी।

अलाउद्दीन की राजस्व नीति की सफलता, कर निर्धारण और कर वसूली का श्रेय उसके नायब शर्फ कायिनी को है। अलाउद्दीन ने पैदावार का 50% भूमिकार (खराज) के रूप में लेना निश्चित किया था। अलाउद्दीन प्रथम सुल्तान था जिसने भूमि की पैमाइश कराकर (मसाहत) उसकी वास्तविक आय पर लगान लेना निश्चित किया था। अलाउद्दीन ने भूमि के एक 'विस्वा' को एक इकाई माना। भूमि मापन की एक एकीकृत पद्धति अपनायी गयी थी तथा सबसे समान रूप से कर लिया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे जमींदार कृषकों की स्थिति में आ गये। सुल्तान लगान को अन्न में वसूलने को महत्व देता था। अलाउद्दीन द्वारा लगाये गये दो नवीन कर थे-

1. 'चराई कर', जो दुधारू पशुओं पर लगाया जाता था और
2. 'घरी कर', जो घरों एवं झोपड़ी पर लगाया जाता था। 'करही' नाम के कर का भी उल्लेख मिलता हे। 'जजिया' कर गैर मुस्लिमों से लिया जाता था। 'खुम्स' कर 4/5 भाग राज्य के हिस्से में एवं 1/5 भाग सैनिकों को मिलता था। 'जकात' केवल मुसलमानों से लिया जाने वाला एक धार्मिक कर था जो सम्पत्ति का 40वां (2/5 भाग) हिस्सा होता था। दीवान-ए-मुस्तखराज को राजस्व एकत्रित करने वाले अधिकारियों के बकाया राशि की जांच करने और वसूलने का कार्य सौंपा।

जलोदर रोग से ग्रसित अलाउद्दीन अपना अन्तिम समय अत्यन्त कठिनाई में व्यतीत करता हुआ 5 जनवरी, 1316 को मृत्यु को प्राप्त हो गया।

अलाउद्दीन के दरबार में अमीर खुसरो तथा हसन निजामी जैसे उच्च कोटि के विद्वानों को संरक्षण प्राप्त था। स्थापत्य कला के क्षेत्र में अलाउद्दीन खिलजी ने वृत्ताकार अलाई दरवाजा अथवा कुश्क-ए-शिकर का निर्माण करवाया। उसके द्वारा बनाया गया अलाई दरवाजा प्रारम्भिक तुर्की कला का एक श्रेष्ठ नमूना माना जाता हें

शिहाबुद्दीन उमर: मालिक काफूर के कहने पर अलाउद्दीन ने अपने पुत्र खिज्र खां को उत्तराधिकारी न बना कर अपने 5-6 वर्षीय पुत्र शिहाबुद्दीन उमर को उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद काफूर ने शिहाबुद्दीन को सुल्तान बना कर सारा अधिकार अपने हाथों में सुरक्षित कर लिया।

कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी: 19 अप्रैल, 1316 को कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। अपने शासन काल में उसने गुजरात के विद्रोह का दमन किया, साथ ही देवगिरि को 1318 ई. में पुनर्विजित किया। इसके अतिरिक्त उसकी कोई विजय नहीं मिलती है। अपने सैनिकों को छः माह का अग्रिम वेतन दिया। विद्वानों एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों की छीनी गयी जागीरे वापस कर दी।

अलाउद्दीन की कठोर दण्ड व्यवस्था एवं बाजार नियंत्रण आदि व्यवस्था को समाप्त कर दिया। उसे नग्न स्त्री-पुरुष की संगत पसन्द थी। कभी-कभी वह राज्य दरबार में स्त्रियों का वस्त्र पहन कर आ जाता था। बरनी के अनुसार मुबारक कभी-कभी नग्न होकर दरबारियों के बीच दौड़ा करता था। उसने 'अल-इमाम', 'उल इमाम' एवं 'खिलाफत-उल्लाह' की उपाधि धारण किया। उसने खिलाफत के प्रति भक्ति को हटाकर अपने को 'इस्लाम धर्म का सर्वोच्च प्रधान' और 'स्वर्ग तथा पृथ्वी के अधिपति का खलीफा' घोषित किया। साथ ही उसने 'अलवासिक विल्लाह' की धर्म प्रधान उपाधि धारण की। मुबारक के वजीर खुशरवशाह ने 15 अप्रैल, 1320 को उसकी हत्या कर स्वयं दिल्ली की गद्दी को हथिया लिया।

नासिरुद्दीन खुशरवशाह: नासिरुद्दीन खुशरवशाह 15 अप्रैल, 1320 को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। वह हिन्दू धर्म से परिवर्तित मुसलमान था। उसने अपने नाम से खुतबे पढ़ाये और साथ ही 'पैगम्बर के सेनापति' की उपाधि धारण की। उसके शत्रुओं ने उसके विरुद्ध ''इस्लाम का शत्रु'' और ''इस्लाम खतरे में है'' के नारे लगाए। लगभग साढ़े चार माह के शासन के उपरान्त 5 सितम्बर, 1320 को गाजी मलिक एवं खुशरव के मध्य युद्ध हुआ जिसमें खुशरव शाह पराजित हुआ खुशरवशाह ने दिल्ली के शेख निजामुद्दीन औलिया आदि को धन बांटकर अपने पक्ष में कर लिया था। 7 सितम्बर, को गाजी मलिक अलाउद्दीन के हजार स्तम्भों वाले महल में प्रवेश किया और 8 सितम्बर, 1320 को दिल्ली के तख्त पर बैठा।

तुगलक वंश 1320-1413 ई.)

गायासुद्दीन तुगलक (1320-25 ई.)

गाजी मलिक या तुगलक गाजी, गयासुद्दीन तुगलक के नाम से 8 सितम्बर, 1320 को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। इसे तुगलक वंश को संस्थापक भी माना जाता है। इसने कुल 29 बार मंगोल आक्रमण को विफल किया सुल्तान बनने से पहले वह कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिलजी के शासन काल में उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रान्त का शक्तिशाली गर्वनर-नियुक्त हुआ था। वह दिल्ली सल्तनत का पहला सुल्तान था जिसने अपने नाम से साथ गाजी (काफिरों का वध करने वाला) शब्द जोड़ा।

सुल्तान ने आर्थिक सुधार के अन्तर्गत अपनी आर्थिक नीति का आधार संयम, सख्ती एवं नरमी के मध्य संतुलन (रस्म-ए-मियान) को बनाया। उसने लगान के रूप में उपज का 1/10 या 1/12 हिस्सा ही लेने का आदेश जारी कराया। गयासुद्दीन ने मध्यवर्ती जमींदारों विशेष रूप में मुकद्दम तथा खूतो को पुराने अधिकार लौटा दिए गये तथा उनको वही स्थिति प्राप्त हो गयी जो बलबन के समय में थी। गयासुद्दीन ने अमीरों की भूमि पुनः लौटा दी। उसने सिंचाई के लिए कुंए एवं नहरों का निर्माण करवाया। सम्भवतः नहर का निर्माण करवाने वाला गायासुद्दीन प्रथम सुल्तान था।

अलाउद्दीन की कठोर नीत के विरुद्ध उसने उदारता की नीति अपनायी जिसे बरनी ने ''रस्मेमियान'' अथव मध्यपंथी नीति कहा है। गयासुद्दीन तुगलक की डाक व्यवस्था श्रेष्ठ थी। न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत गयासुद्दीन ने एक न्याय विभाग का निर्माण करवाया। उसमें धार्मिक सहिष्णुता का अभाव था। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चलाई गयी दाग तथा चेहरा प्रथा को प्रभावी तरीके से लागू किया। वह दानी स्वाभाव का होने के साथ जन कल्याणकारी कार्यों को कराने में दिलचस्पी रखता

PERFECTION IAS

था।

बरनी के अनुसार सुल्तान अपने सैनिकों के साथ पुत्रवत् व्यवहार करता था। उसकी सेना में गिज, तुर्क, मंगोल, रूमी, ताजिक, खुरासानी, मेवाती एवं दोआब के राजपूत सैनिक शामिल थें उसकी महत्वपूर्ण विजयें थी। वारंगल व तेलंगाना की विजय (1321-23 ई.), उड़ीसा की विजय (1324 ई.), बंगाल की विजय (1324 ई.), तिरहुत की विजय, मंगोल विजय (1324 ई.), आदि। 1321 में गायासुद्दीन ने वारंगल पर आक्रमण किया, किन्तु वहां के काकतीय राजा प्रतापरुद्र देव को पराजित करने में असफल रहा।

1323 ई. में द्वितीय अभियान के अन्तर्गत गयासुद्दीन तुगलक ने शहजादे जूना खां (मुहम्मद बिन तुगलक) को दक्षिण भारत में सल्तनत के प्रभुत्व की पुनर्स्थापना के लिए भेजा। जूना खां ने वारंगल के काकतीय एवं मदुरा के पाण्ड्य राज्यों को विजित कर दिल्ली सल्तनत में शामिल कर लिया। इस प्रकार सर्वप्रथम गयासुद्दीन के समय में ही दक्षिण के राज्यों को दिल्ली सल्तनत में मिलाया गया। इन राज्यों में सर्वप्रथम वारंगल था। गायासुद्दीन तुगलक पूर्णतः साम्राज्यवादी था। इसने अलाउद्दीन की दक्षिण नीति त्यागकर दक्षिणी राज्यों को दिल्ली सल्तनत में शामिल किया।

बंगाल के अभियान से लौटते समय तुगलकाबाद (गयसुद्दीन तुगलक द्वारा निर्मित) से 8 किलोमीटर की दूरी पर स्थित अफगानपुर में उसके लड़के जूना खां के निर्देश पर अहमद अयाज द्वारा निर्मित लकड़ी के महल में सुल्तान गायासुद्दीन के प्रवेश करते ही महल गिर गया जिसमें दबकर उसकी मार्च, 1325 को मृत्यु हो गयी। इस घटना के समय शेख रुकनुद्दीन महल में मौजूद था, जिसे उलूग खं ने नमाज पढ़ने के बहाने उस स्थान से हटा दिया था। गयासुद्दीन तुगलक का मकबरा तुगलकाबाद में स्थित है।

गायासुद्दीन जब बंगाल में था तभी सूचना मिली कि जूना खां (मुहम्मद तुगलक) निजामुद्दीन औलिया का शिष्य बन गया है और वह उसे राजा होने की भविष्यवाणी कर रहा है। निजामुद्दीन औलिया को गायासुद्दीन तुगलकने धमकी दी तो औलिया ने उत्तर दिया था कि- हुनूज दिल्ली दूर अस्त, अर्थात् दिल्ली अभी बहुत दूर है। हिन्दुओं के प्रति गयासुद्दीन तुगलक की नीति कठोर थी। गयासुद्दीन संगीत का घोर विरोध ी था।

बरनी के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी ने शासन स्थापित करने के लिए जहां रक्तपात व अत्याचार की नीति अपनाई वहीं गयासुद्दीन ने चार वर्षों में ही उसे बिना किसी कठोरता के संभव बनाया।

राजस्व सुधारः अपनी सत्ता स्थापित करने के बाद गयासुद्दीन तुगलक ने अमीरों तथा जनता को प्रोत्साहित किया। शुद्ध रूप से तुर्की मूल होने के कारण इस कार्य में उसे कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। गयासुद्दीन ने कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए किसानों के हितों की ओर ध्यान दिया। उसने एक वर्ष में इक्ता के राजस्व में 1/10 से 1/11 भाग से अधिक की वृद्धि नहीं करने का आदेश दिया उसने सिंचाई के लिए नहरें खुदवायीं तथा बाग बगवाये।

सार्वजनिक सुधारः जनता की सुविधा के लिए अपने शासनकाल में गयासुद्दीन ने किलो, पुलों और नहरों का निर्माण कराया। सल्तनत काल में डाक व्यवस्था को सुदृढ़ करने का श्रेय गयासुद्दीन तुगलक को ही जाता है। 'बरनी' ने डाक-व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया है। शारीरिक यातना द्वारा राजकीय ऋण वसूली को उसने प्रतिबंधित कर दिया। हिन्दुओं के प्रति उसकी कठोर नीति यथावात बनी रही। उसने हिन्दुओं को धन जमा करने की अज्ञा का निषेध किया।

धार्मिक कार्यः गयासुद्दीन एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। इस्लाम में उसकी गहरी आस्था थी और उसके सिद्धान्तों का वह सावध ानीपूर्वक पालन करता था। उसने मुसलमान जनता पर इस्लाम के नियमों का पालन करने के लिए दबाव डाला उसने अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णुता की नीति अपनाई।

निर्माण कार्यः स्थापत्य कला के क्षेत्र में गयासुद्दीन ने विशेष रूप में रूचि ली अपने शासन काल में उसने तुगलकाबाद नामक एक दुर्ग की नींव रखी।

मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1351 ई.)

गयासुद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जूना खां 'मुहम्मद बिन तुगलक' नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा। इसका मूल नाम उलूग खां था। राजमुंदरी एक अभिलेख में मुहम्मद तुगलक (जौना खां) को दुनिया का खान कहा गया। सम्भवतः मध्यकालीन सभी सुल्तानों में मुहम्मद तुगलक सर्वाधिक शिक्षित, विद्वान एवं योग्य व्यक्ति था। अपनी सनक भरी योजनाओं, क्रूर कृत्यों एवं दूसरे के सुख-दुख प्रति उपेक्षा का भाव रखनें के कारण इस स्वप्नशील, पागल एवं रक्त-पिपासु कहा गया है। बरनी, सरहिंदी, निजामुद्दीन, बदायुंनी एवं फरिश्ता जैसे इतिहासकारों ने सुल्तान को अधर्मी घोषित किया है।

सिंहासन पर बैठने के बाद तुगलक ने अमीरों एवं सरदारों को विभिन्न उपाधियां एवं पद प्रदान किये। उसने तातार खां को बहराम खां की उपाधि, मलिक कबूल को इमाद-उल-मुल्क की उपाधि एवं वजीर-ए-मुमालिक का पद दिया था पर कालान्तर में उसे खानेजहां की उपाधि के साथ गुजरात का हाकिम बनाया गया।

उसने मलिक अय्याज को ख्वाजा जहान की उपाधि के साथ 'शहना-ए-इमारत' का पद, मौलाना गयासुद्दीन को (सुल्तान का अध्यापक) कुतलुग खां की उपाधि के साथ वकील-ए-दर की पदवी, अपने चचेरे भाई फिरोज तुगलक को नायब बारबक का पद प्रदान किया।

मुहम्मद बिन तुगलक दिल्ली के सभी सुल्तानों में सर्वाधिक कुशाग्र, बुद्धि सम्पन्न, धर्मनिरपेक्ष, कलाप्रेमी एवं अनुभवी सेनापति था। वह अरबी एवं फारसी का विद्वान तथा खगोलशास्त्र, दर्शन, गणित, चिकित्सा, विज्ञान, तर्कशास्त्र आदि में पारंगत था। अलाउद्दीन की भांति अपने शासन काल के प्रारंभ में उसने न तो खलीफा से अपने पद की स्वीकृति ली और न उलेमा वर्ग का सहयोग लिया, यद्यपि बाद में उसे ऐसा करना पड़ा। न्याय विभाग पर उलेमा वर्ग का एकाधिपत्य समाप्त किया। काजी के जिस पैसले से वह संतुष्ट नहीं होता था उसे बदल देता था। सर्वप्रथम मुहम्मद तुगलक ने ही बिना किसी भेदभाव के योग्यता के आधार पर पदों का आवंटन किया। नस्ल और वर्ग-विभेद को समाप्त करके योग्यता के आधार पर अधिकारियों को नियुक्त करने की नीति अपनायी। वस्तुतः यह उस शासक का दुर्भाग्य था।- कि उसकी योजनाएं सफलतापूर्वक क्रियान्वित नहीं हुई जिसके कारण यह इतिहासकारों की आलोचना का पात्र बना।

मुहम्मद तुगलक के सिंहासन पर बैठते समय दिल्ली सल्लतनत कुल 23 प्रांतों में बंटा था जिनमें मुख्य थे- दिल्ली, देवगिरि, लाहौर, मुल्तान, सरसुती, गुजरात, अवध, कन्नौज, लखनौती, बिहार, मालवा,

PERFECTION IAS

जाजनगर (उड़ीसा), द्वार समुद्र आदि। कश्मीर एवं बलूचिस्तान दिल्ली सल्तनत में शामिल नहीं थे।

दिल्ली सल्तनत की सीमा का सर्वाधिक विस्तार इसी के शासनकाल में हुआ था। परन्तु इसकी क्रूर नीति के कारण राज्य में विद्रोह आरम्भ हो गया जिसके फलस्वरूप दक्षिण में नए स्वतंत्र राज्य की स्थापना हुई और ये क्षेत्र दिल्ली सल्तनत से अलग हो गए। बंगाल भी स्वतंत्र हो गया। राज्यारोहण के बाद मुहम्मद तुगलक ने कुछ नवीन योजनाओं का निर्माण कर उन्हें क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया जैसे-

1. दोआब क्षेत्र मे कर वृद्धि (1326-27 ई.),
2. राजधानी परिवर्तन (1326-27 ई.),
3. सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन (1329-30 ई.), खुरासान एवं कराचिल का अभियान आदि।

दोआब क्षेत्रमें कर वृद्धि (1326-27 ई.): अपनी प्रथम योजना के द्वारा मुहम्मद तुगलक ने दोआब के उपजाउ प्रदेश में कर की वृद्धि कर दी (संभवत: 50%), परन्तु उसी वर्ष दोआब में भयंकर अकाल पड़ गया जिससे पैदावार प्रभावित हुई। तुगलक के अधिकारियों द्वार जबरन कर वसूलने से उस क्षेत्र में विद्रोह हो गया जिससे तुगलक की यह योजना असफल रही। मुहम्मद तुगलक ने कृषि के विकास के लिए 'अमीर-ए-कोही' नामक एक नवीन विभाग की स्थापना की। सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार, किसानों की उदासीनता, भूमि का अच्छा न होना इत्यादि कारणों से कृषि उन्नति सम्बन्धी अपनी योजना को तीन वर्ष पश्चात् समाप्त कर दिया। मुहम्मद बिन तुगलक ने किसानों को बहुत कम ब्याज पर ऋण (सोनधर) उपलब्ध कराया।

राजधानी परिवर्तन (1326-1327 ई.): तुगलक ने अपनी दूसरी योजना के अन्तर्गत राजधानी को दिल्ली से देवगिरि स्थानान्तरित किया। देवगिरि को ''कुतब्बुल इस्लाम'' भी कहा गया। सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक खिजली ने देवगिरि का नाम कुतबाबाद रखा और मुहम्मद बिन तुगलक ने इसको बदलकर दौलताबाद कर दिया। सुल्तान की इस योजना के सर्वाधिक आलोचना की गई। मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी परिवर्तन के कारणों पर इतिहासकारों में बड़ा विवाद है फिर भी निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि देवगिरि का दिल्ली सल्तनत के मध्य स्थित होना, मंगोल आक्रमणकारियों के भय से सुरक्षित रहना, दक्षिण-भारत की सम्पन्नता की ओर खिंचाव आदि ऐसे कारण थे जिनके कारण सुल्तान ने राजधानी परिवर्तित करने की बात सोची। मुहम्मद तुगलक की यह योजना भी पूर्णत: असफल रही और उसने 1335 ई. में दौलताबाद से लोगों को दिल्ली वापस होने की अनुमति दे दी।

राजधानी परिवर्तन के परिणामस्वरूप दक्षिण में मुस्लिम संस्कृति का विकास हुआ। जिसने अंतत: बहमनी साम्राज्य के उदय का मार्ग खोला।

सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन (1329-30 ई.):
तीसरी योजना के अन्तर्गत मुहम्मद तुगलक ने सांकेतिक व प्रतीकात्मक सिक्कों का प्रचलन करवाय। सिक्के संबंधी विविध प्रयोगों के कारण ही एडवर्ड टामस ने उसे 'धनवानों का राजकुमार' कहा है। मुहम्मद तुगलक दोकानी (दोगनी) नामक सिक्के का प्रचलन करवाया बरनी के अनुसार सम्भवत: सुल्तान ने राजकोष की रिक्तता के कारण एवं अपनी साम्राज्य विस्तार की नीति को सफल बनाने हेतु सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन करवाया।

सांकेतिक मुद्रा के अन्तर्गत सुल्तान ने संभवत: पीतल (फरिश्ता के अनुसार) और तांबा (बरनी के अनुसार) धातुओं के सिक्के चलाये जिसका मूल्य चांदी के रुपये टंका के बराबर होता था। सिक्का ढालने पर राज्य का नियंत्रण नहीं रहने से अनेक जालनी टकसाल बन गये। लगान जाली सिक्के से दिया जाने लगा जिससे अर्थव्यवस्था ठप्प हो गयी। सांकेतिक मुद्रा चलाने की प्रेरणा चीन तथा ईरान से मिली।

वहां के शासकों ने इस योजना को सफलतापूर्वक चलाया जबकि मुहम्मद तुगलक का प्रयोग विफल रहा। सुल्तान को अपनी इस योजना की असफलता पर भयानक आर्थिक क्षति का सामना करना पड़ा।

खुरासान एवं कराचिल अभियान:
चौथी योजना के अन्तर्गत मुहम्मद तुगलक के खुरासान एवं कराचिल विजय अभियान का उल्लेख किया जाता है। खुरासान को जीतने के लिए मुहम्मद तुगलक ने 3,70,000 सैनिकों की विशाल सेना को एक वर्ष का अग्रिम वेतन दे दिया, परन्तु राजनैतिक परिवर्तन के कारण दोनों देशों के मध्य समझौता हो गया, जिससे सुल्तान की यह योजना असफल रही और उसे आर्थिक रूप से हानि उठानी पड़ी।

कराचिल अभियान के अन्तर्गत सुल्तान ने खुसरो मलिक के नेतृत्व में एक विशाल सेना को पहाड़ी राज्यों को जीतने के लिए भेजा। उसकी पूरी सेना जंगली रास्तों में भटक गई, इब्नबतूता के अनुसार अन्तत: केवल तीन अधिकारी ही बचकर वापस आ सके। इस तरह मुहम्मद तुगलक की यह योजना भी असफल रही। सम्भवत: 1328-29 ई. के मध्य मंगोल आक्रमणकारी तरमाशरीन चगताई ने एक विशाल सेना के साथ भारत पर आक्रमण कर मुल्तान, लाहौर से लेकर दिल्ली तक के प्रदेशों को रौंद डाला। ऐसा माना जाता है कि सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने मंगोल नेता को घूस देकर वापस कर दिया था। अपनी इस नीति के कारण सुल्तान को आलोचना का शिकार बनना पड़ा। मुहम्मद तुगलक को 'असफलताओं का बादशाह' कहा जाता है।

मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में सबसे अधिक (34) विद्रोह हुए, जिसमें सत्तरइस (27) विद्रोह अकेले दक्षिण भारत में हुए।

सुल्तान मुहम्मद तुगलक के शासन काल में हुए महत्वपूर्ण विद्रोह निम्नलिखित हैं-

प्रथम विद्रोह 1327 ई. में उसके चचेरे भाई सुल्तान गुरशास्प ने किया जो गुलबर्गा के निकट सागर का सूबेदार था। वह सुल्तान द्वारा बुरी तरह परास्त किया गया। मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध विद्रोहों में सिंध तथा मुल्तान के सूबेदार बहराम आईबा ऊर्फ किश्लू खां का विद्रोह (1327-28), सैयद जलालुद्दीन हसनशाह का मालाबार विद्रोह (1334-35) तथा बंगाल का विद्रोह (1330-31) प्रमुख हैं। बंगाल के विद्रोह को यद्यिप प्रारंभ में बंदकर दिया गया था, किन्तु 1340-41 ई. के लगभग श्म्सुद्दीन

के नेतृतव में बंगाल दिल्ली सलतनत से अलग हो गया।

1337-38 ई. में कड़ा के सूबेदार निजाम भाई का विद्रोह, 1338-39 ई. में बीदर के सूबेदार नुसरत खां का विद्रोह, 1339-40 ई. में गुलबर्गा के अलीशाह का विद्रोह, अवध के सूबेदार आईन-एल-मुल्क मुल्तानी का 1340-41 ई. के विद्रोहों को सुल्तान ने सफलता पूर्वक दमन किया। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में ही दक्षिण में 1336 ई. में हरिहर एवं बुक्का नामक दो भाईयों ने स्वतंत्र 'विजयनगर' की स्थापना की। अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता 1333 ई. में भारत आया। सुल्तान ने इसे दिल्ली का काजी नियुक्त किया। 1342 ई. में मुहम्मद ने उसे अपने राजदूत के रूप में चीन भेजा। इब्नबतूता ने अपनी पुस्तक 'रेहला' में मुहम्मद तुगलक के समय की घटनाओं का वर्णन किया है।

मुहम्मद तुगलक धार्मिक रूप में सहिष्णु था। जैन सल्तनत का प्रथम सुल्तान था जिसने हिन्दुओं के त्यौहारों (होली, दीपावली) में भाग लिया दिल्ली के प्रसिद्ध सूफी शेख शिहाबुद्दीन को दीवान-ए-मुस्तखराज नियुक्त किया तथा शेख मुईजुद्दीन को गुजरात का गवर्नर तथा सैयद कलामुद्दीन अमीर किरमानी को सेना में नियुक्त किया। शेख निजामुद्दीन चिराग-ए-दिल्ली सुल्तान के विरोधियों में से एक थे।

अपने शासन काल के अन्तिम समय में जब सुल्तान मुहम्मद तुगलक गुजरात में विद्रोह को कुचल कर तार्गी को समाप्त करने के लिए सिन्ध की ओर बढ़ा तो मार्ग में थट्टा के निकट गोंडाल पहुंचकर वह गंभीर रूप से बीमार हो गया। यहां पर सुल्तान की 20 मार्च, 1351 को मृत्यु हो गई। उसके मरने पर इतिहासकार बदायूनीं ने कहा कि 'सुल्तान को उसकी प्रजा से और प्रजा को अपने सुल्तान से मुक्ति मिल गई।'' इसामी ने सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक को इस्लाम विरोधी बताया है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने उसके बारे में कहा है कि ''मध्य-युग में राजमुकुट धारण करने वालों में मुहम्मद तुगलक, निःसन्देह योग्य व्यक्ति था। मुस्लिम शासन की स्थापना के पश्चात् दिल्ली के सिंहासन को सुशोभित करने वाले शासकों में वह सर्वाधिक विद्वान एवं सुसंस्कृत शासक था।''

उसने अपने सिक्कों पर ''अल सुल्तान जिल्ली अल्लाह'' (सुल्तान ईश्वर की छाया), सुल्तान ईश्वर का समर्थक है आदि वाक्य को अंकित करवाया। मुहम्मद बिन तुगलक एक अच्छा कवि और संगीत प्रेमी था।

फिरोजशाह तुगलक (1351-1388 ई.)

फिरोजशाह तुगलक मुहम्मद तुगलक का चचेरा भाई एवं सिपहसालार रज्जब का पुत्र था। उसकी मां 'बीबी नैला' राजपूत सरदार रणमल की पुत्री थी। मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद 20 मार्च, 1351 को फिरोज तुगलक का राज्याभिषेक थट्टा के नजदीक हुआ। पुनः फिरोज का राज्याभिषेक दिल्ली में अगस्त, 1351 में हुआ। सुल्तान बनने के बाद फिरोजशाह तुगलक ने सभी कर्जे माफ कर दिये जिसमें सोंधर ऋण भी शामिल था जो मुहम्मद तुगलक के समय किसानों को दिया गया था। इसने उपज के हिसाब से लगान निश्चित किया।

सरकारी पदों को पुनः वंशानुगत कर दिया। सुल्तान बनने के बाद फिरोज तुगलक ने दिल्ली सल्तनत से अलग हुए अपने प्रदेशों को पुनः जीतने के अभियान के अन्तर्गत बंगाल एवं सिंध पर आक्रमण किया। बंगाल को जीतने के लिए सुल्तान ने 1353 ई. में आक्रमण किया। उस समय शम्सुद्दीन इलियास वहां का शासक था। उसने इकदला के किले में शरण ले रखी थी, सुल्तान फिरोज अन्ततः किले पर अधिकार करने में असफल होकर 1355 ई. में वापस दिल्ली आ गया।

पुनः बंगाल पर अधिकार करने के प्रयास के अन्तर्गत 1359 ई. में फिरोज तुगलक ने वहां के तत्कालीन शासक शम्सुद्दीन के पुत्र सिकन्दर शाह पर आक्रमण किया, किन्तु असफल होकर एक बार फिर वापस आ गया।

1360 ई. में सुल्तान फिरोज ने 'जाजनगर' (उड़ीसा) पर आक्रमण करके वहां के शासक भानुदेव तृतीय को परास्त कर पुरी के जगन्नाथ मंदिर को ध्वस्त किया। 1361 ई. में फिरोज नगरकोट पर आक्रमण कर वहां के शासक को परास्त कर प्रसिद्ध के मंदिर को पूर्णतः ध्वस्त कर दिया।

1362 ई. में सुल्तान फिरोज ने सिंध पर आक्रमण किया। यहां के जामबाबनियो से लड़ती हुई सुल्तान की सेना लगभग 6 महीने तक रण के रेगिस्तान में फंसी रही, कालान्तर में जामबाबनियों ने सुल्तान की अधीनता को स्वीकार कर लिया और वार्षिक कर देने पर सहमत हो गये।

इन साधारण विजयों के अतिरिक्त फिरोज के नाम कोई बड़ी सफलता नहीं जुड़ी है। उसने दक्षिण में स्वतंत्र हुए राज्य विजयनगर, बहमनी एवं मदुरा को पुनः जीतने का कोई प्रयास नहीं किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सुल्तान फिरोज तुगलक ने अपने शासन काल में कोई भी सैनिक अभियान साम्राज्य विस्तार के लिए नहीं किया और जो भी अभियान उसने किया वह मात्र साम्राज्य को बचाये रखने के लिए किया। सुल्तान फिरोज तुगलक की सितम्बर, 1398 में मृत्यु हो गई।

राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत फिरोज ने अपने शासन काल में 24 कष्टदायक करों को समाप्त कर केवल 4 कर 'खराज' (लगान), 'खुम्स' (युद्ध में लूट का माल), 'जजिया' एवं 'जकात' को वसूल करने का आदेश दिया। उलेमाओं के आदेश पर सुल्तान ने एक नया कर सिंचाई (शर्ब) कर भी लगाया, जो उपज का 1/10 भाग वसूला जाता था। सम्भवतः फिरोज तुगलक के शासन काल में लगान उपज का 1/5 से 1/3 भाग होता था। सुल्तान ने सिंचाई की सुविधा के लिए 5 बड़ी नहरें युमना नदी से हिसार तक 150 मील लम्बी सतलज से घग्घर नदी तक 96 मील लम्बी सिरमौर की पहाड़ी से लेकर हांसी तक, घग्घर से फिरोजाबाद तक का निर्माण करवाया। उसने फलों के लगभग 1200 बाग लगावाये। आन्तरिक व्यापार को बढ़ाने के लिए अनेक करों को समाप्त कर दिया।

नगर एवं सार्वजनिक निर्माण कार्यों के अर्न्तगत सुल्तान ने लगभग 300 नये नगरों की स्थापना की। इनमें से हिसार, फिरोजाबाद (दिल्ली), फतेहाबाद, जौनपुर, फिरोजपुर आदि प्रमुख थे। इन नगरों में यमुना नदी के किनारे बसाया गया फिरोजाबाद सुल्तान को सर्वाधिक प्रिय था।

जौनपुर नगर की नींव फिरोज ने अपने चचेरे भाई फखरुदीन जौना (मुहम्मद बिन तुगलक) की स्मृति में डाली थी। उसके शासक काल में खिज्राबाद एवं मेरठ से अशोक के दो स्तम्भलेखों को लाकर दिल्ली में स्थापित किया गया। अपने कल्याणकारी कार्यों के अन्तर्गत फिरोज ने एक रोजगार का दफ्तर एवं मुस्लिम अनाथ स्त्रियों, विधवाओं एवं लड़कियों की सहायता हेतु एक नये दीवान-ए-खैरात नामक विभाग की

PERFECTION IAS

स्थापना की थी। दारुल-शफा नामक एक राजकीय अस्पताल का निर्माण करवाया जिसमें गरीबों का मुफ्त इलाज होता था।

फिरोज के शासन काल में दासों की संख्या लगभग 1,80,000 पहुंच गई थी। इनकी देखभाल हेतु सुल्तान ने दीवान-ए-बंदगान की स्थापना की। कुछ दास प्रांतों में भेजे गये तथा शेष को केन्द्र में रखा गया। दासों को नकद वेतन या भूखण्ड दिए गये। दासों को दस्तकारी का प्रशिक्षण भी दिया गया।

सैन्य व्यवस्था के अन्तर्गत फिरोज ने सैनिकों को पुन: जागीर के रूप में वेतन देना प्रारम्भ कर दिया। उसने सैन्य पदों को वंशानुगत बना दिया, इसमें सैनिकों की योग्यता की जांच पर असर पड़ा। खुम्स का 4/5 भाग फिर से सैनिकों को देने के आदेश दिए गये। कुछ समय बाद उसका भयानक परिणाम सामने आया। फिरोज तुगलक को कुछ इतिहासकार धर्मान्ध एवं असहिष्णु शासक मानते हैं।

सम्भवत: दिल्ली सल्तनत का वह प्रथम सुल्तान था जिसने इस्लामी नियमों का कड़ाई से पालन करके उलेमा वर्ग को प्रशासनिक कार्यों में महत्व दिया। न्याय व्यवस्था पर पुन: धर्मगुरुओं का प्रभाव स्थापित हो गया। मुफ्ती कानूनों की व्याख्या करते थे। मुसलमान अपराधियों को मृत्यु दण्ड देना बंद कर दिया गया। फिरोज कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने हिन्दुओं को 'जिम्मी' (इस्लाम स्वीकार ने करने वाले) कहा और हिन्दू ब्राह्मणों पर जजिया कर लगाया। डॉ. आर.सी. मजूमदार ने कहा है कि 'फिरोज इस युग का सबसे धर्मान्ध एवं इस क्षेत्र में सिकन्दर लोदी एवं औरंगजेब का अग्रगामी था।' दिल्ली सल्तनत में प्रथम बार फिरोज तुगलक ने बाह्मणों से भी जजिया लिया।

शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में सुल्तान ने अनेक मकतबों एवं मदरसों (लगभग 13) की स्थापना करवायी। उसने जियाउद्दीन बरनी एवं शम्स-ए-सिराज अफीफ को अपना संरक्षण प्रदान किया। बरनी ने 'फतवा-ए-जहांदारी' एवं 'तारीख-ए-फिरोजशाही' की रचना की। फिरोज ने अपनी आत्मकथा 'फुतूहात-ए-फिरोजशाही' की रचना की जबकि 'सीरत-ए-फिरोजशाही' की रचना किसी अज्ञात विद्वान द्वारा की गई है।

फिरोज ने ज्वालामुखी मंदिर के पुस्तकालय से लूटे गये 1300 ग्रंथों में से कुछ का एजुद्दीन द्वारा 'दलायले-फिरोजशाही' नाम से अनुवाद करवाया। दलायले-फिरोजशाही आयुर्वेद से संबंधित ग्रन्थ था। उसने जल घड़ी का आविष्कार किया। अपने भाई जौना खां (मुहम्मद तुगलक) की स्मृति में जौनपुर नामक शहर बसाया।

सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने प्रशासन में स्वयं घूसखोरी को प्रोत्साहित किया था। अफीफ के अनुसार, सुल्तान ने एक घुड़सवार को अपने खजाने से एक टंका दिया ताकि वह रिश्वत देकर अर्ज में अपने घोड़े को पास करवा सके।

फिरोज तुगलक सल्तनत कालीन पहला शासक था जिसने राज्य की आमदनी का ब्यौरा तैयार करवाया। ख्वाजा हिसामुद्दीन के एक अनुमान के अनुसार फिरोज तुगलक के शासन काल की वार्षिक आय 6 करोड़ 75 लाख टंका थी। उसके समय में इजारेदारी को पुन: बढ़ावा दिया गया।

फिरोज तुगलक ने मुद्रा व्यवस्था के अन्तर्गत बड़ी संख्या में तांबा एवं चांदी के मिश्रण से निर्मित सिक्के जारी करवाये जिसे सम्भवत: 'अद्धा' एवं 'बिख' कहा जाता था। फिरोज तुगलक ने 'शंशगानी' (6 जीतल का) नामक नया सिक्का चलाया था। उसने सिक्कों पर अपने नाम के साथ अपने पुत्र अथवा उत्तराधिकारी फतह खां का नाम अंकित करवाया। फिरोज ने अपने को खलीफा का नायब पुकारा तथा सिक्कों पर खलीफा का नाक अंकित करवाया।

फिरोज शाह तुगलक का शासन कल्याणकारी निरंकुशता पर आधारित था। वह प्रथम सुल्तान था जिसने विजयों तथा युद्धों की तुलना में अपनी प्रजा की भौतिक उन्नति को श्रेष्ठ स्थान दिया, शासक के कर्तव्यों को विस्तृत किया तथा इस्लाम धर्म को राज्य शासन का आधार बनाया।

हेनरी इलिएट और एलाफिन्सटन ने फिरोज तुगलक को ''सल्तनत युग का अकबर'' कहा है। फिरोजशाह तुगलक की सफलताओं का श्रेय उसके प्रधानमंत्री खान-ए-जहां मकबूल को दिया जाता है।

फिरोजशाह के उत्तराधिकारी (1388-1413 ई.)

तुगलकशाह (1388-1389 ई.) फिरोज की मृत्यु के बाद उसके पुत्र फतहखां का पुत्र तुगलकशाह 'गयासुद्दीन तुगलक द्वितीय' की उपाधि के साथ सितम्बर, 1388 में दिल्ली के के सिंहासन पर बैठा। उसकी विलासी प्रवृत्ति के कारण असंतुष्ट होकर, अबु बग्र को फरवरी, 1389 में दिल्ली का सुल्तान बनाया।

अबू बग्र (फरवरी, 1389 से अगस्त, 1390): अप्रैल, 1389 में शाहजादा मुहम्मद ने अपने को 'समाना' में सुल्तान घोषित कर दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। वह अबूब्रक को अपदस्थ कर अगस्त, 1390 में 'नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह' की उपाधि से दिल्ली का सुल्तान बना।

नासिरुद्दीन महमूदशाह (1390-1394 ई.): अधिक शराब पीने के कारण जनवरी, 1394 में उसकी मृत्यु हो गई। उसके मरने के बाद उसके पुत्र हुमायूं को 'अलाउद्दीन सिकन्दर शाह' की उपाधि से दिल्ली की गद्दी पर बैठाया गया, परन्तु 6 सप्ताह में उसकी भी मृत्यु हो गई। इसके बाद अमीरों ने उसके अनुज नासिरुद्दीन महमूदशाह को गद्दी पर बैठाया। यह तुगलक वंश का अंतिम शासक था।

नासिरुद्दीन महमूदशाह (1394-1412 ई.): उसने 1394 से ई. तक शासन किया। नासिरुद्दीन महमूदशाह के समय तक दिल्ली सल्तनत से दक्षिण भारत, बंगाल, खानदेश, गुजरात, मालवा, राजस्थान, बुन्देलखण्ड आदि प्रान्त स्वतन्त्र हो गये थे। नासिरुद्दीन के समय में मलिक सरवर (Sarvar) नाम के एक हिजड़े ने सुल्तान से 'मलिक-उस-शर्क' (पूर्वाधिपति) की उपाधि ग्रहण कर जौनपुर में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। महमूदशाह का शासन इस समय दिल्ली से पालम (निकटवर्ती कुछ जिलों में) तक ही रह गया था। इस समय फिरोज के पुत्र नुसरत शाह एवं नासिरुद्दीन ने एक साथ शासन किया।

नासिरुद्दीन ने दिल्ली से तथा नुसरत शाह ने फिरोजाबाद से अपने अपने शासन का संचालन किया। नासिरुद्दीन महमूद के समय में तैमूर लंग ने 1398 ई. में दिल्ली पर आक्रमण किया। एक पैर से लंगड़ा होने के कारण उसका नाम 'तैमूर लंग' पड़ा। था तैमूर के आक्रमण से डरकर दोनों सुल्तान राजधानी से भाग गये। 15 दिन तक दिल्ली में रहने के पश्चात् तैमूर वापस चला गया और खिज्र खां को अपने विजित प्रदेशों का राज्यपाल नियुक्त किया। एक मान्यता के अनुसार तैमूर आक्रमण के बाद दिल्ली सल्तनत का विस्तार सिमट कर पालम तक ही रह गया था।

तैमूर के वापस जाने पर नासिरुद्दीन ने अपने वजीर मल्लू इकबाल की सहायता से पुन: दिल्ली सिंहासन पर अधिकार कर लिया पर कालान्तर में मल्लू इकबार के मरने के बाद सुल्तान ने दिल्ली की सत्ता

PERFECTION IAS

एक अफगान सरदार दौलत खां लोदी को सौंप दी। 1412 ई. में नासिरुद्दीन महमूदशाह की मृत्यु हो गई। 1413 ई. मे दिल्ली सिंहासन के लिए दौदल खां एवं खिज्र खां में युद्ध हुआ। इस युद्ध में दौलत खां पराजित हुआ। खिज्र खां ने दिल्ली की गद्दी पर अधिकार कर एक नये राजवंश 'सैयद वंश' की स्थापना की।

सैयद वंश (1414-1450 ई.)

खिज्र खां (1414-21 ई.)

खिज्र खां सैयद वंश का संस्थापक था। उसने 1414 ई. में दिल्ली की राजगद्दी पर अधिकार किया। उसने सुल्तान की उपाधि न धारण कर अपने को 'रैयत-ए-आला' की उपाधि से ही खुश रखा। तैमूर लंग जिस समय भारत में वापस जा रहा था, उसने खिज्र खां को मुल्तान, लाहौर एवं दीपालपुर का शासक नियुक्त कर दिया था। खिज्र खां अपने को तैमूर के लड़के शाहरूख का प्रतिनिधि बताया था और साथ ही उसे नियमित कर भेजा करता था। उसने खुतबा में तैमूर और उसके उत्तराधिकारी शाहरूख का नाम पढ़वाया। खिज्र खां के शासन काल में पंजाब, मुल्तान एवं सिन्धि पुनः दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गये। उसने अपने समय में कटेहर, इटावा, खोर, जलेसर, ग्वालियर, बयाना, मेवात, बदायूं के विद्रोह को कुचल कर उन्हे जीतने का प्रयास किया।

सुल्तान को राजस्व वसूलने के लिए भी प्रतिवर्ष सैनिक अभियान का सहारा लेना पड़ता था। उसने अपने सिक्कों पर तुगलक सुल्तानों का नाम खुदवाया। फरिश्ता ने खिज्र खां को एक न्यायप्रिय एवं उदार शासक बताया है। 20 मई, 1421 को खिज्र खां की मृत्यु हो गई। फरिश्ता के अनुसार खिज्र खां की मृत्यु पर युवा, वृद्ध दास और स्वतंत्र सभी ने काले वस्त्र पहनकर दुःख प्रकट किया।

मुबारकशाह (1421-1434 ई.)

खिज्र खां ने अपने पुत्र मुबारकशाह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। उसने 'शाह' की उपाधि ग्रहण कर अपने नाम के सिक्के जारी किये। उसने अपने नाम से खुतबा पढ़ावा और इस प्रकार विदेशी स्वामित्व का अन्त किया। अपने पिता की भांति उसे भी विद्रोहों का दमन और राजस्व वसूली के लिए नियमित सैनिक यात्राएं करनी पड़ी। अपने शासन काल में मुबारक शाह ने भटिण्डा एवं दोआब में हुए विद्रोह को सफलापूर्वक दबाया परन्तु खोक्खर जाति के (नमक की पहाड़ी के) नेता दसरथ द्वारा किये गये विद्रोह को दबाने में असफल रहा। मुबारक शाह के समय में ही पहली बार दिल्ली सल्तनत में दो महत्वपूर्ण हिन्दू अमीरों का उल्लेख मिलता है।

मुबारकशाह के वजीर 'सरवर-एल-मुल्क' ने षडयन्त्र द्वारा 19 फरवरी, 1434 को उस समय उसकी हत्या कर दी, जिस समय वह अपने द्वारा निर्मित नये नगर 'मुबारकाबाद' का निरीक्षण कर रहा था। मुबारक शाह ने वीरतापूर्वक विद्रोहों का दमन किया, सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा बढ़ायी और अपने राज्य की सीमाओं को सुरक्षित किया।

इस प्रकार मुबारक शाह सैयद सुल्तानों में योग्यतम सुल्तान हुआ। उसने विद्वान याहिया बिन अहमद सरहिन्दी को अपना राज्यश्रय प्रदान किया। उसके ग्रंथ 'तारीख-ए-मुबारकशाही' से मुबारक शाह के शासन काल के विषय में जानकारी मिलती है।

मुहम्मदशाह (1434-1445 ई.)

मुबारकशाह के बाद दिल्ली की गद्दी पर मुबारक का भतीजा मुहम्मद बिन फरीद खां, मुहम्मदशाह के नाम से बैठा। उसके शासन काल के 6 महीने उसके वजीर सरवर-एल-मुल्क के आधिपत्य मे बीते, परन्तु छः महीने उपरान्त सुल्तान ने अपने नायब सेनापति कमाल-उल-मुल्क के सहयोग से वजीर का वध करवा दिया।

वजीर के प्रभाव से मुक्त होने के तुरन्त बाद मालवा के शासक महमूद द्वारा दिल्ली पर आक्रमण कर दिया गया। मुल्तान में लंगाओं ने विद्रोह किया जिसे सुल्तान ने स्वयं जाकर शांत किया।

मुहम्मदशाह मुल्तान के सूबेदार बहलोल की सहायता द्वारा महमूद को वापस करने में सफल रहा। मुहम्मदशाह ने खुश होकर बहलोल को 'खान-ए-खाना' की उपाधि दी और साथ ही उसे अपना पुत्र कह कर पुकारा। इसके समय की प्रमुख घटना रही-बहलोल लोदी का उत्थान। बहलोल लोदी ने दिल्ली पर आक्रमण किया परन्तु असफल रहा। अपने अन्तिम समय में हुए विद्रोह को दबाने में मुहम्मदशाह असमर्थ रहा, अतः अधिकांश राज्यों ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। सैयद वंश पतन की ओर अग्रसर हो गया।

अलाउद्दीन आलमशाह (14445-1450 ई.)

मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन 'अलाउद्दीन आलमशाह' की उपाधि ग्रहण कर सिंहासन पर बैठा। वह आरामपसन्द एवं विलासी प्रवृत्ति का था। अलाउद्दीन आलमशाह को अपने वजीर हमीद खां से अनबन होने के कारण दिल्ली छोड़कर बदायूं में शरण लेनी पड़ी तथा हमीद खां ने बहलोल लोदी को दिल्ली आमंत्रित किया। बहलोल ने दिल्ली आने के कुछ दिन पश्चात् हमीद खां की हत्या करवाकर 1450 ई. में दिल्ली प्रशासन को अपने कब्जे में कर लिया। दूसरी तरफ सुल्तान अलाउद्दीन आलमशाह ने अपने को बदायूं में ही सुरक्षित महसूस किया और वहीं पर 1476 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार लगभग 37 वर्ष के बाद सैयद वंश समाप्त हो गया।

लोदी वंश (1451-1526 ई.)

बहलोल लोदी (1451-1489 ई.)

बहलोल लोदी दिल्ली में प्रथम अफगान राज्य का संस्थापक था। वह अफगानिस्तान के 'गिलजाई कबीले' की महत्वपूर्ण शाख 'शाहूखेल' में पैदा हुआ था। 19 अप्रैल, 1451 को बहलोल 'बहलोल शाह गाजी' उपाधि से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। चूंकि वह लोदी कबीले का अग्रगामी था इसलिए उसके द्वारा स्थापित वंश को लोदी वंश कहा जाता है। जब 1415 में सैयद आलमशाह ने गद्दी छोड़ी तो बहलोल ने अपने वजीर हमीद खां की सहायता से दिल्ली सल्तनत पर अधिकार कर लिया। अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए उसने रोह के अफगानों को भारत आमंत्रित किया और योग्यता के अनुसार उनको जागीरें प्रदान की। अपने राज्याभिषेक के उपरान्त सुल्तान ने सम्भल, कोल, इटावा, रपरी, भोगांव एवं मेवात पर आक्रमण कर उनको अपने अधीन करने में सफलता प्राप्त की।

उसके शासन काल की महत्वपूर्ण सफलता थी-जौनपुर का एक बार फिर दिल्ली राज्य में शामिल होना। जौनपुर पर अधिकार को लेकर बहलोल लोदी एवं जौनपुर के शर्की सुल्तानों से लम्बा संघर्ष हुआ परन्तु सफलता अन्ततः बहलोल लोदी को मिली।

ग्वालियर पर किया गया आक्रमण सुल्तान का अन्तिम विजय अभियान था। वहां के शासक मानसिंह ने बहलोल को 80 लाख टंके दिये। ग्वालियर अभियान से वापस आते समय बहलोल बीमार पड़ गया और जलाली के समीप जुलाई, 1489 में उसकी मृत्यु हो गई। बहलोल

PERFECTION IAS

अपने सरदारों को 'मसनद-ए-अली' कह कर पुकारता था।

बहलोल लोदी का राजत्व सिद्धान्त समानता पर आधिरित था। वह अफागन सरदारों को अपने समकक्ष मानता था। वह अपने सरदारों के खड़े रहने पर खुद भी खड़ा रहता थां बहलोल लोदी ने 'बहलोली सिक्के' का प्रचलन करवाया जो अकबर के समय तक उत्तर भारत में विनिमय का प्रमुख साधन बना रहा। बहलोल लोदी धार्मिक रूप से सहिष्णु था। उसके सरदारों में कई प्रतिष्ठित सरदार हिन्दू थे। इनमें रायप्रताप सिंह, रायकरन सिंह, रायनर सिंह, राय त्रिलोकचन्द्र और राय दांदू प्रमुख हैं।

सिकन्दर शाह लोदी (1489-1517 ई.)

बहलोल लोदी का पुत्र एवं उत्तराधिकारी निजाम खां 17 जुलाई, 1489 को 'सुल्तान सिकन्दर शाह' की उपाधि से दिल्ली के सिंहासन के सिंहासन पर बैठा। वह स्वर्णकार हिन्दू मां की संतान था। सिंहासन पर बैठने के उपरान्त सुल्तान ने सर्वप्रथम अपने विरोधियों में चाचा आलम खां, ईसा खां, आजम हुमायूं (सुल्तान का भतीजा) तथा जालरा के सरदार तातारखां को परास्त किया।

सिकन्दर लोदी ने जौनपुर को अपने अधीन करने के लिए अपने बड़े भाई बारबक शाह के खिलाफ अभियान किया जिसमें उसे पूर्ण सफलता मिली। जौनपुर के बाद सुल्तान सिकन्दर लोदी ने 1494 ई. में बनारस के समीप हुए एक युद्ध में हुसैन शाह शर्की को परास्त कर बिहार को दिल्ली में मिला लिया।

इसके बाद उसने तिरहुत के शासक को अपने अधीन किया। राजपूत राज्यों में सिकन्दर लोदी ने धौलपुर, मन्दरेल, उतागिरि, नरवर एवं नागौर को जीता परन्तु ग्वालियर पर अधिकार नहीं कर सका। राजस्थान के शासकों पर प्रभावी नियंत्रण रखने तथा व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण स्थापित करने के उद्देश्य से सिकन्दर लोदी ने 1504 ई. में आगरा नामक शहर की नींव डाली।

सिकन्दर शाह ने भूमि के लिए एक प्रमाणिक पैमाना 'गज-ए-सिकन्दरी' का प्रचलन करवाया जो 30 इंच का था। उसने अनाज पर से चुंगी हटा दी और अन्य असह्य व्यापारिक कर हटा दिये जिससे अनाज, कपड़ा एवं आवश्यकता की अन्य वस्तुएं सस्ती हो गयी। सिकन्दर लोदी ने अफगान सरदारों से समानता की नीति का परित्याग करके श्रेष्ठता की नीति का अनुसरण किया।

सिकन्दर लोदी लोदी सल्तनत काल का एकमात्र सुल्तान हुआ जिसने खुम्स से कोई हिस्सा नहीं लिया। उसने निर्धनों के लिए मुफ्त भोजन की व्यवस्था करायी। उसने आन्तरिक व्यापार कर को समाप्त कर दिया तथा गुप्तचर विभाग का पुनर्गठन किया।

धार्मिक दृष्टि से सिकन्दर लोदी असहिष्णु था। उसने हिन्दू मंदिरों को तोड़ कर वहां पर मस्जिद का निर्माण करवाया। एक इतिहासकार के अनुसार सिकन्दर ने नगरकोट के ज्वालामुखी मंदिर की मूर्ति को तोड़कर उसके टुकड़ों को कसाइयों को मांस तोलने के लिए दे दिया था।

सिकन्दर लोदी ने हिन्दुओं पर जजिया कर पुनः लगा दिया। उसने एक बाह्मण को इसलिए फांसी दे दी क्योंकि उसका कहना था कि हिन्दु और मुस्लिम धर्म समान रूप से पवित्र हैं। मुसलमानों को 'ताजिया' निकालने एवं मुसलमान स्त्रियों को पीरो एवं सन्तों के मजार पर जाने पर सुल्तान ने प्रतिबंध लगाया। क्रोध में उसने शर्की शासकों द्वारा जौनपुर में बनवायी गयी एक मस्जिद को तोड़ने का आदेश दिया, यद्यपि उलेमाओं की सलाह पर आदेश वापस ले लिया।

जीवन के अन्तिम समय में सुल्तान सिकन्दरशाह के गले मे बीमारी होने से 21 नवम्बर, 1517 को उसकी मृत्यु हो गई। आधुनिक इतिहासकार सिकन्दर लोदी को लोदी वंश का सर्वाधिक सफल शासक स्वीकार करते हैं। सिकन्दर लोदी कहता था कि ''यदि मैं अपने एक गुलाम की भी पालकी में बैठा हूं तो मेरे आदेश पर मेरे सभी सरदार उसे अपने कन्धों पर उठाकर ले जायेंगे।'' सिकन्दर लोदी प्रथम सुल्तान था जिसने आगरा को अपनी राजधानी बनाया। निष्पक्ष न्याय के लिए मियां भुआं को नियुक्त किया। सुल्तान शहनाई सुनने का शैकीन था।

सिकन्दर विद्या का पोषक था। उसके आदेश पर संस्कृत के एक आयुर्वेद गंथ का फारसी में 'फरहंगे सिकन्दरी' के नाम से अनुवाद हुआ। उसका उपनाम 'गुलरुखी' था। इसी उपनाम से वह कविताएं लिखा करता था। उसने संगीत के एक ग्रन्थ 'लज्जत-ए-सिकंदरशाही' की भी रचना की। सिकन्दर लोदी शिक्षित और विद्वान था। वह विद्वासनों का सम्मान करता था। विद्वानों को संरक्षण देने के कारण उसका दरबार विद्वानों का केन्द्र स्थल बन गया था। प्रत्येक रात्रि को 70 विद्वान उसके पलंग के नीचे बैठकर विभिन्न प्रकार की चर्चा किया करते थे।

उसने मस्लिदों को सरकारी संस्थाओं का स्वरूप प्रदान करके उन्हें शिक्षा का केन्द्र बनाने का प्रयत्न किया था। मुस्लिम शिक्षा में सुधार करने के लिए उसने तुलम्बा (फारस) के विद्वान शेख अब्दुल्लाह और शेख अजीजुल्लाह को बुलाया था।

इब्राहीम लोदी (1517-1526 ई.)

सिकन्दर के मरने के बाद अमीरों ने आम सहमति से उसके पुत्र इब्राहीम को 21 नवम्बर, 1517 को इब्राहीम शाह की उपाधि से आगरा के सिंहासन पर बैठाया। उसने राज्य का विभाजन करके अपने भाई जलाल खां को जौनपुर का शासक नियुक्त किया परन्तु बाद में जौनपुर को अपने राज्य में मिला लिया सिंहासन पर बैठने के उपरान्त इब्राहीम ने आजम हुमायूं शेरवानी को ग्वालियर पर आक्रमण करने हेतु भेजा। वहां के तत्कालीन शासक विक्रमजीत सिंह ने इब्राहीम की अधीनता स्वीकार कर ली। मेवाड़ के शासक राणा सांगा के विरुद्ध इब्राहीम का अभियान असफल रहा। खतौली के युद्ध में इब्राहिम लोदी राणा सांगा से हार गया। इस युद्ध में राणा सांगा ने अपना बांया हाथ खो दिया। राणा सांगा ने चन्देरी पर अधिकार कर लिया। मेवाड़ एवं इब्राहीम लोदी के बीच झगड़े का मुख्य कारण मालवा पर अधिकार को लेकर था। इब्राहीम के भाई जलाल खां ने जौनपुर को अपने अधिकार में कर लिया था। उसने कालपी में 'जलालुद्दीन' की उपाधि के साथ अपना राज्याभिषेक करवाया था। इब्राहीम लोदी ने लोहानी, फारमूली एवं लोदी जातियों के दमन का पूर्ण प्रयास किया जिससे शक्तिशाली सरदार असंतुष्ट हो गये। असंतुष्ट सरदारों में पंजाब का शासक 'दौलत खां लोदी' एवं इब्राहीम लोदी के चाचा 'आलम खां' ने काबुल के तैमूर वंशी शासक बाबर को भारत पर आक्रमण के लिए निमंत्रण दिया। बाबर ने यह निमंत्रण स्वीकार कर लिया और वह भारत आया। 21 अप्रैल, 1526 को पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी और बाबर के मध्य हुए भयानक संघर्ष में लोदी की बुरी तरह हार हुई और उसकी हत्या कर दी गई। इब्राहिम लोदी की सबसे बड़ी दुर्बलता उसका हठी स्वभाव था। उसके समय की प्रमुख विशेषता उसका अपने अफगान सरदारों से संघर्ष था। इब्राहीम की मृत्यु के साथ दिल्ली सल्तनत काल समाप्त हो गया और बाबर ने भारत में एक नवीन

PERFECTION IAS

वंश 'मुगल वंश' की स्थापना की।

PERFECTION IAS

3. सल्तनतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था

सल्तनत काल में भारत में एक नई प्रशासनिक व्यवस्था की शुरुआत हुई जो मुख्य रूप से अरबी-फारसी पद्धति पर आधारित थी। सल्तनत काल में प्रशासनिक व्यवस्था पूर्ण रूप में इस्लामिक धर्म पर पर आधारित थी। प्रशासन में उलेमाओ की महत्वपूर्ण भूमिकों होती थी। 'खलीफा' इस्लामिक संसार का पैगम्बर के बाद का सर्वोच्च नेता होता था। प्रत्येक सुल्तान के लिए आवश्यक होता था कि खलीफा उसे मान्तया दे, फिर भी दिल्ली सल्तनत के तुर्क सुल्तानों ने खलीफा को नाममात्र का ही प्रधान माना। इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत का पहला सुल्तान था जिसने 1229 ई. में बगदाद के खलीफा का 'नायब' कहा। अलाउद्दीन खिलजी ने अपने को खलीफा का नायब नहीं माना। मुबारक खिलजी पहला ऐसा सुल्तान था जिसने खिलाफत के मिथन को तोड़कर स्वयं को खलीफा घोषित किया। मुहम्मद तुगलक ने अपने शासन काल के प्रारम्भ में खलीफा को मान्यता नहीं दी, किन्तु शासन के अन्तिम चरण में उसने खलीफा को मान्तया नहीं दी, किन्तु शासन के अन्तिम चरण में उसने खलीफा को मान्यता प्रदान कर दी।
फिरोजशाह तुगलक ने अपने सिक्कों पर खलीफा का नाम उत्कीर्ण करवाया।

सुल्तानः सुल्तान की उपाधि तुर्की शासकों द्वारा प्रारम्भ की गयी। महमूद गजनवी पहला शासक था जिसने 'सुल्तान' की उपाधि धारण की। दिल्ली सुल्तानों में अधिकांश ने अपने को खलीफा का नायब पुकारा परन्तु कुतुबुद्दीन मुबारक खिलजी ने स्वयं को खलीफा घोषित किया। खिज्र खां ने तैमूर के पुत्र शाहरूख का प्रभुत्व स्वीकार किया और रैय्यत-ए-आला की उपाधि धारण की। उसके और उत्तराधिकारी मुबारकशाह ने इस प्रथा को समाप्त कर दिया और शाह सुल्तान की उपाधि ग्रहण की।

सुल्तान केन्द्रीय प्रशासन का मुखिया होता था। सल्तनत काल में उत्तराधिकार को कोई निश्चित नियम नहीं था, किन्तु सुल्तान को यह अधिकार होता था कि वह अपने बच्चों में किसी एक को अपना उत्तराधिकारी चुना सकता था। सुल्तान द्वारा चुना गया उत्तराधिकारी यदि अयोग्य है तो ऐसी स्थिति में सरदार नये सुल्तान का चुनाव करते थे। कभी-कभी शक्ति के प्रयोग से भी सिंहासन पर अधिकार किया जाता था। दिल्ली सल्तनत में सुल्तान पूर्ण रूप से निरंकुश होता था। उसकी सम्पूर्ण शक्ति सैनिक बल पर निर्भर करती थी। सुल्तान सेना का सर्वोच्च सेनापति एवं न्यायालय का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। सुल्तान 'शरीयत' के अधीन ही कार्य करता था।

अमीरः सल्तनत काल में सभी प्रभावशाली पदों पर नियुक्त व्यक्तियों की सामान्य संज्ञा अमीर थी। अमीरों का प्रभाव सुल्तान पर होता था। सुल्तान को शासन करने के लिए अमीरों को अपने अनुकूल किये रहना आवश्यक होता था। अमीरों का प्रभाव उस समय बढ़ जाता था जब सुल्तान अयोग्य, प्रभावहीन हो गये थे। प्रायः नये राजवंश के सत्ता में आने पर पुराने अमीरों को या तो मार दिया जाता था या फिर उन्हें छोटे पद दे दिये जाते थे। मुहम्मद तुगलक के काल में हुए विद्रोहों में अमीरों का योगदान सर्वाधिक था। इसलिए उसने पुराने अमीरों को कमजोर करने की दृष्टि से मिश्रित जनजातीय आधार पर पदाधिकारियों की एक नई व्यवस्था स्थापित की। अमीरों का प्रशासन में महत्वपूर्ण योगदान होता था। लोदी वंश के शासन काल में अमीरों का महत्व अपने चरमोत्कर्ष पर था।

मंत्रिपरिषद्: यद्यपि सत्ता की धुरी सुल्तान होता था फिर भी विभिन्न विभागों के कार्यों के कुशल संचालन हेतु उसे एक मंत्रिपरिषद् की आवश्यकता पड़ती थी, जिसे सल्तनत काल में 'मजलिस-ए-खलवत' कहा जाता था। मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए सुल्तान बाध्य नहीं होता था। परन्तु अगर सुल्तान निर्बल या अयोग्य हो तो सारी शक्ति मंत्री अपने हाथ में केन्द्रित कर लेते थे। वह इनकी नियुक्ति एवं पदमुक्ति अपनी इच्छानुसार कर सकता था।

'मजलिस-ए-खस' में 'मजलिस-ए-खलवत' की बैठक हुआ करती थी। यहां पर सुल्तान कुछ खास लोगों को बुलाता था। 'बार-ए-खस' में सुल्तान सभी दरबारियों, खानों, अमीरों, मालिकों और अन्य रईसों को बुलाया करता था। 'बार-ए-आजम' में सुल्तान राजकीय कार्यों का अधिकांश भाग पूरा करता था। यहां पर विद्वान, मुल्ला, काजी भी उपस्थित रहते थे।

सल्तनतकालीन मंत्रिरपषिद् में 4 मंत्री महत्वपूर्ण थे। ये निम्नलिखित हैं-

1. **वजीर (प्रधानमंत्री):** मंत्रिपरिषद में वजीर शायद सर्वप्रमुख होता था। उसके पास अन्य मंत्रियों की अपेक्षा अधिक अधिकार होता था और वह अन्य मंत्रियों के कार्यों पर नजर रखता था। वजीर राजस्व विभाग का प्रमुख होता था, उसे लगान, कर व्यवस्था, दान, सैनिक व्यय आदि की देख-भाल करनी पड़ती थी। वह प्रान्तपतियों के राजस्व लेखा का निरीक्षण करता था तथा प्रान्तपतियों से अतिरिक्त राजस्व की वसूली करता था। सुल्तान की अनुपस्थिति में उसे शासन का प्रबन्ध करना पड़ता था। वह दीवान-ए-विजारत (राजस्व विभाग), दीवान-ए-इमारत (लोक निर्माण विभाग), दीवान-ए-अमीर कोही (कृषि विभाग) विभाग के मंत्रियों का प्रमुख होता था। वजीर के सहयोगियों में प्रमुख नायब-वजीर, मुशरिफ-ए-मुमालिक, मुस्तौफी-ए-मुमालिक एवं खजीन (खजांची) होते थे। तुगलक काल ''मुस्लिम भारतीय वजीरत का स्वर्ण काल'' था। उत्तरगामी तुगलकों के समय में वजीर की शक्ति बहुत बढ़ गयी थी। अंतिम तुगलक शासक नासिरुद्दीन महमूद के समय में जब अशांति फैली तो एक नये कार्यालय वकील-ए-सुल्तान की स्थापना हुई। सैयदों के समय में यह शक्ति घटने लगी तथा अफगानों के अधीन वजीर का पद महत्वहीन हो गया।

नायब वजीरः नायब वजीर, वजीर का सहयोगी होता था तथा वजीर की अनुपस्थिति में उसके कार्यों का निर्वहन इसके द्वारा ही किया जाता था।

मुशरिफ-ए-मुमालिक (महालेखाकार): प्रान्तों एवं अन्य विभागों से प्राप्त होने वाली आय एवं उसके व्यय का लेखा-जोखा रखने का दायित्व मुशरिफ-ए-मुमालिक का होता था। नाजिर इसका सहायक होता था।

PERFECTION IAS

मुस्तौफी-ए-मुमालिका (महालेखा परीक्षक): मुशरिफा द्वारा तैयार किये गये लेखों-जोखों की जांच के लिए मुस्तौफी-ए-मुमालिक के पद की व्यवस्था थी। कभी-कभी यह मुशरिफ की तरह आय-व्यय का निरीक्षण भी करता था।

खजीन (खजांची): यह कोषाध्यक्ष के रूप में कार्य करता था।

दीवान-ए-वकूफ: जलालुद्दीन खिलजी द्वारा स्थापित इस विभाग की स्थापना अलाउद्दीन खिलजी ने किया था। इसका कार्य अतिरिक्त मात्रा मे वसूले, गये कर का हिसाब रखना होता था।

दीवान-ए-अमीर कोही: मुहम्मद तुगलक द्वारा स्थापित इस विभाग का मुख्य कार्य मालगुजारी व्यवस्था की देखभाल करना एवं भूमि को खेती योग्य बनाना होता था।

उपर्युक्त समस्त विभाग दीवान-ए-विजारत विभाग से नियंत्रित होते थे। दीवान-ए-विजारत वजीर का कार्यालय होता था। विजारत को एक संस्था के रूप में प्रयोग करने की प्रेरणा अब्बासी खलीफाओं ने फारस से ली थी। दिल्ली-सल्तनत के प्रारम्भिक वजीरों में कुतुबुद्दीन ऐबक, ताजुद्दीन एल्दौज, नासिरुद्दीन कुबाचा आदि थे। वजीर का पद दिल्ली सल्तनत में फिरोज तुगलक के समय में अपने चरमोत्कर्ष पर था। फिरोज तुगलक के वजीर ख्वाजा हिसामुद्दीन ने विभिन्न सूबों का दौरा करने के पश्चात् समस्त खलसा भूमि का राजस्व छः करोड़ पचासी लाख टंका निश्चित किया। लोदियों के शासन काल में यह मद महत्वहीन हो गया।

2. **दीवान-ए-आरिज:** आरिज-ए-मुमालिक सैन्य विभाग का प्रमुख अधिकारी होता था। इसका महत्वपूर्ण कार्य सैनिकों की भर्ती करना, सैनिकों एवं घोड़ों का हुलिया रखना, रसद की व्यवस्था करना, सेना का निरीक्षण करना एवं सेना की साज-सज्जा की व्यवस्था करना होता था। आरिज-ए-मुमालिक के विभाग को 'दीवान-ए-अर्ज' कहा जाता था। इस विभाग की स्थापना बलबन ने की थी तथा अलाउद्दीन खिलजी के समय इसका महत्व बढ़ गया।

वकील-ए-सुल्तान: नासिरुद्दीन महमूद (तुगलक वंश का अन्तिम शासक) द्वारा स्थापित इस मंत्री का कार्य शासन व्यवस्था एवं सैनिक व्यवस्था की देख-भाल करना होता था। यह विभाग कुछ दिन बार अस्तित्वहीन हो गया।

3. **दीवान-ए-इंशा:** यह विभाग 'दीबर-ए-मुमालिक' के अन्तर्गत था। शाही पत्र व्यहवार के कार्य का भार इस इस विभाग द्वारा होता था। यह सुल्तान की घोषणाओं एवं पत्रों का मसविदा तैयार करता था। सभी राजकीय अभिलेख इसी कार्यालय में सुरक्षित रखे जाते थें दबीर व लेखक इसके सहयोगी होते थे। फिरोज तुगलक के समय में इस स्तर कस मंत्री नहीं रह गया। मिनहाज-एस-सिराज इस विभाग को ''दीवान-ए-अशरफ'' कहकर संबोधित करता था। इस विभाग का कार्य अत्यन्त गोपनीय होता था।

4. **दीवान-ए-रसालत:** इस विभाग के कार्यों के बारे में विवाद है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह विभाग विदेशों से पत्र व्यवहार तथा विदेशों को भेजे जाने वाले एवं विदेश से आने वाले राजदूतों की देख-भाल करता था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह धर्म विभाग से सम्बन्धित था। खिलजी सुल्तान स्वयं इस विभाग का कार्य देखते थे। इसके लिए किसी अमीर की नियुक्ति खिलजी काल में नहीं हुई।

उपर्युक्त मंत्रियों के अतिरिक्त भी कुछ मंत्री होते थे। ये निम्नलिखित हैं-

नायब (नायब-ए-मुमालिकत): इस पद की स्थापना इल्तुतमिश के पुत्र बहरामशाह के समय में उसके सरदारों द्वारा की गई। इस पद का महत्व अयोग्य सुल्तानों के समय में अधिक रहा, ऐसी स्थिति में यह पद सुल्तान के बाद माना जाता था। नायब के पद पर आसीन होने वाला प्रथम व्यक्ति ऐतगीन था। नायब के पद का सर्वाधिक प्रयोग बलबन ने किया।

सद्र-उस-सुदूर: यह धर्म विभाग एवं दान विभाग का प्रमुख होता था। राज्य के प्रधान काजी एवं सद्र-उस-सुदूर का पद प्राय: एक ही व्यक्ति को दिया जाता था। मुलसमानों से लिए जाने वाले कर 'जकात' पर इस अधिकारी का अधिकार होता था। यह मस्जिदों, कमतबों एवं मदरसों के निर्माण के लिए धन मुहैया कराता था।

दीवान-ए-बरीद: बरीद-ए-मुमालिक गुप्तचर विभाग का प्रधान अधिकारी होता था। इसके अधीन गुप्तचर, संदेशवाहक एवं डाक चौकियां होती थीं।

दीवान-ए-रियासत: सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने बाजार नियंत्रण के लिए एक विभाग स्थापित किया गया था।

दीवान-ए-अमीर कोही: मुहम्मद तुगलक द्वारा कृषि के विकास के लिए यह विभाग स्थापित किया गया थां

दीवान-ए-मुस्तखराज: इस विभाग की स्थापना अलाउद्दीन खिजली ने थी। इसका प्रमुख कार्य बकाया राजस्व वसूल करना था।

दीवान-ए-नजर: इसकी स्थापना मुहम्मद तुगलक द्वारा की गयी थी। इसका कार्य उपहार वितरित करना था।

राजा दरबार से सम्बन्धित पद निम्नलिखित थे-

वीलक-ए-दर: यह पद अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था। यह शाही महल एवं सुल्तान की व्यक्तिगत सेवाओं की देख-भाल करता था।

बारबक: यह दरबार की शान-शौकत एवं रस्मों की देख-रेख करता था।

अमीर-ए-हाजिब: यह सुल्तान से मिलने वालों की जांच-पड़ताल करता था।

इसके अतिरिक्त यह दरबारी शिष्टाचार के लिए भी उत्तरदायी था।

अमीर-ए-शिकार: यह सुल्तान के शिकार की व्यवस्था किया करता था।

अमीर-ए-मजलिस: यह शाही उत्सवों एवं दावतों का प्रबन्ध करता था।

सर-ए-जांदार: यह सुल्तान के अंगरक्षकों का अधिकारी होता था।

अमीर-ए-आखूर: यह अश्वशाला का अध्यक्ष होता था।

शहना-ए-पील: हस्तिशाला का अध्यक्ष।

PERFECTION IAS

दीवान-ए-इस्तिहाकः पेंशन विभाग।
दीवान-ए-खैरातः दान विभाग।
दीवान-ए-बंदगानः दास विभाग।
मुतसर्रिफः कारखानों का प्रमुख।

दीवान-ए-इस्तिहाक, दीवान-ए-खेरात व दीवान-ए-बंदगान, ये तीनों विभाग फिरोजशाह तुगलक द्वारा किये गये।

प्रान्तीय शासनः इक्ता व्यवस्था दिल्ली सल्तनत की एक मुख्य विशेषता थी। इसका मुख उद्देश्य भारत में प्रचलित प्रथा को नष्ट करना और साम्राज्य के दूरस्थ प्रदेश को केन्द्र से जोड़ना था। इसका प्रारंभ इल्तुतमिश के शासनकाल में हुआ। दिल्ली सल्तनत अनेक प्रान्तों में बंटा था जिसे 'इक्ता' कहा जाता था। यहां का शान 'नायब वली' व 'मुक्ती' द्वारा संचालित किया जाता था। उसके पास निश्चित संख्या में सेना होती थी जिसे आवश्यकता के समय सुल्तान को उपलब्ध करायी जाती थी। प्रान्त के अधिकारियों को नियुक्ति, स्थानान्तरण आदि करता था। वली या मुक्ता का पद वंशानुगत नहीं था।

वित्तीय मामलों में वली की सहायता 'ख्वाजा' नाम अधिकारी करता था। ख्वाजा नामक अधिकारियों की नियुक्ति बलबन ने इक्तादारों के भ्रष्टाचार को रोकने के लिए की थी। मुहम्मद तुगलक के काल में मुक्ता से राजस्व अधिकार लेकर एक अन्य केन्द्रीय अधिकारी वली उल खराज को प्रदान कर दिये गये। इब्नबतूता के अनुसार इस समय-इक्ता में दो अधिकारी थे एक अमीर या मुक्ता तथा दूसरा बली-उल-खराज। अमीर या मुक्ता सैनिक अधिकारी होता था तथा वली-उल-खराज इक्ता की आय एकत्रित करता था। मुक्ता और बली के सम्बन्ध सुल्तान की इच्छा पर निर्भर होता है।

स्थानीय प्रशासनः लगभग 14वीं शताब्दी में प्रशासकीय सुविधा के लिए इक्ताओं को शिकों (जिलों) में विभाजित किया गया। प्रान्त शिक में, शिक परगना तथा परगना गांवों में विभक्त थे। यहां का शासन आमील या नजीम अपने अन्य सहयोगियों के साथ करता था। एक शहर या सौ गांवों के शासन की देख-भाल 'अमीर-ए-साद' नामक अधिकारी करता था। इसकी सहयता के लिए मुतसर्रिफ, कारकून, बलाहार, मुकद्दम, चौधरी, पटवारी, पियादा आदि होते थे। शासन की सर्वाधिक छोटी इकाई गांव होता था, जहां का शासन पंचायतें करती थीं। गांवों में मुकद्दम (मुखिया), पटवारी व कारकून होते थे।

प्रान्तों के अतिरिक्त कुछ केन्द्र शासित प्रदेश थे, जिनमें शिक और शहर शामिल थे। इसके प्रभावी अधिकारी शाहना (अधीक्षक) थे। यह सुल्तान द्वारा नियुक्त होते थे। इस क्षेत्र से एकत्र किया गया राजस्व सीधे केन्द्र के खजाने में जाता था। प्रत्येक उपक्षेत्र में आमिल नाम का एक पदाधिकारी होता था जो राजस्व इकट्ठा करके राजकोष में जमा करता था।

सैन्य संगठनः तुर्की शासन व्यवस्था मुख्यतः सैन्य शक्ति पर आधारित थी। एक विशाल, संगठित, शक्तिशाली सेना की आवश्यश्कता सुल्तान को रहती थी। ऐसी सेना की आवश्यकता के कारणों में तुर्की अमीरों, सरदारों द्वारा किये गये विद्रोह को कुचलने, राजपूत राजाओं की विद्रोहात्मक प्रवृत्ति से निपटने, मंगोलों के आक्रमण को रोकने एवं सुल्तानों की साम्राज्य विस्तार की नीति को सफल बनाने आदि शामिल थे और इन कार्यों के लिए विशाल एवं संगठित स्थायी सेना की आवश्यकता रहती थी।

सल्तनतकालीन सैन्य व्यवस्था के अन्तर्गत इल्तुतमिश द्वारा स्थापित सेना को 'हश्म-ए-कल्ब' (केन्द्रीय सेना) या 'कल्ब-ए-सुल्तानी' कहा जाता था जबकि सामंतों व प्रन्तपतियों की सेना को 'हश्म-ए-अतरफ' कहा जाता था। शाही घुड़सवार सेना को सवार-ए-कल्ब कहा जाता था। सेना के लिए दीवान-ए-अर्ज की स्थापना बलबन ने की था।

सल्तनतकालीन सेना का ढांचा राष्ट्रीय नहीं था बल्कि इसमें तुर्क, अमीर, ईरानी, मंगोल, अफगान एवं भारतीय मुसलमान शामिल होते थे। सल्तनत काल में चार प्रकार के सैनिक होते थे। प्रथम, वे सैनिक होते थे जिनको स्वयं सुल्तान नियुक्त करता था। यह सुल्तान की स्थायी सेना होती थी। इसे 'खासखेल' का नाम दिया गया था। अलाउद्दीन खिलजी के समय में लगभग पौने पांच लाख स्थायी सेना थी। द्वितीय, वे सैनिक होते थे, जो प्रान्तों एवं सूबेदारों की सेना में भरती होते थे। प्रान्तीय आरिज इस सेना की देख-भाल इक्तादारां के नेतृत्व में करते थे। यह सेना वर्ष में एक बार सुल्तान के समक्ष निरीक्षण हेतु प्रस्तुत की जाती थी। सैनिक दो प्रकार के होते थे। प्रथम वजहिस जो स्थायी सैनिक थे द्वितीय गैर वजसि जो अस्थायी थे।

तृतीय, ये वैनिक होते थे जिन्हें युद्ध के समय अस्थायी रूप से भर्ती किया जाता था। इनको युद्ध काल तक ही वेतन एवं रसद प्राप्त होता था। चतुर्थ, वे सैनिक होते थे जो मुस्लिम स्वयंसेवकों के रूप में काफिरों से युद्ध करते थे, इन्हें कोई वेतन नहीं मिलता था, बल्कि लूट की सम्पत्ति में से हिस्सा मिलता था।

सल्तनतकालीन सेना मुख्यतः तीन भागों में विभक्त थी-

1. घुड़सवार सेना
2. गज (हाथी) सेना, और
3. पदाति (पैदल) सेना या 'पायक'। संख्या की दृष्टि से पैदल सेना सबसे बड़ी होती थी, परन्तु सामरिक दृष्टिकोण से सेना का महत्वपूर्ण भाग घुड़सवार सेना होती थी।

शस्त्रधारी घुड़सवारों को सवार-ए-बरगुस्तवानी कहा जाता था।

मंगोल सेना के वर्गीकरण की दशमलव प्रणाली को सल्तनकालीन सैन्य व्यवस्था का आधार बनाया गया। सल्तनत काल में सेना का गठन, पदों का विभाजन आदि दशमलव प्रणाली पर ही आधारित थे। 10 अश्वारोहियों की एक टुकड़ी को 'सर-ए-खेल', 10 सर-ए-खेलों की एक टुकड़ी के ऊपर एक 'सिपहसालार', 10 सिपहसालारों के ऊपर एक 'अमीर', 10 अमीरों के ऊपर एक 'मलिक' और 10 मलिकों के ऊपर एक 'खान' होता था।

10 अश्वारोही	= सर-ए-खेल
10 सर-एल-खेल	= सिपहसालार
10 सिपहसालार	= 1 एक अमीर

PERFECTION IAS

10 अमीर = 1 मलिक
10 मलिक = 1 खान

सल्तनत काल में बारूद की सहायता से गोला फेंकने की मशीन को 'मंगलीक' तथा 'अर्राट' कहा जाता था। सुल्तान के पास नावों को एक बेड़ा होता था। नावों के बेड़ों का संचालन 'मीर बहर' नाम अधिकारी के नेतृत्व में होता था जिसका उपयोग सैनिक सामान को ढोने में किया जाता था। 'साहिब-ए-बरीब-ए-लश्कर विभाग' युद्ध के समय की समस्त जानकारी राजधानी भेजता था। 'तले अह' एवं 'यज्की' नामक गुप्तचर शत्रु की सेना की गतिविधियों की सूचना एकत्र करता था। 'चर्ख' शिला प्रक्षेपास्त्रों), फलाखून (गुलेल), गरगज (चलायमान मंच), सबत (सुरक्षित गाड़ी) जैसे युद्ध के समय प्रयुक्त होने वाले साधनों का उल्लेख मिलता है।

खुसरों खां ने अपने शासन काल के दौरान सैनिकों को अत्याधिक धन वितरित किया। सैनिक सुधार की दृष्टि से अलाउद्दीन का काल सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। अलाउद्दीन अपने सैनिकों को नकद वेतन देने के साथ ही 6 महीने का वेतन इनाम के रूप में देता था। अलाउद्दीन ने घोड़ों को दगाने की और सैनिकों का हुलिया रखने की प्रथा चलायी। सिकन्दर लोदी सैनिकों के हुलिया के स्थान पर चेहरा शब्द का प्रयोग किया। बलबन सेना को चुस्त रखने के लिए उसे शिकार पर ले जाते थे। अलाउद्दीन खिलजी के बाद मुक्ता लोक अपने सैनिकों के वेतन से कुछ कमीशन काट लेते थे। गयासुद्दीन ने इस प्रथा को समाप्त किया और वेतन रजिस्टर (वसीयत-ए-हश्म(की स्वयं जांच करने वाला। अलाउद्दीन ने इक्ता प्रथा को समाप्त कर दिया था परन्तु फिरोजशाह तुगलक के समय में सैनिकों को नकद वेतन के स्थान पर इक्ता देने की प्रथा पुनः प्रारम्भ कर दी गई, कालान्तर में सैनिकों का पद आनुवंशिक हो गया। फिरोज तुगलक ने सेना में दासों को भार्ती करना शुरु किया। पिता की मृत्यु के बाद इक्ता का हकदार उसका पुत्र, पुत्र के न होने की स्थिति में दामाद, दामाद के न होने पर दास और दास भी नहीं है तो निकट का सम्बन्धी होता था। इस व्यवस्था दुष्परिणाम फिरोज तुगलक के शासन काल में देखने को मिला। अलाउद्दीन की सैन्य व्यवस्था खुसरवशाह के समय टूटकर बिखर गयी। इसने किराए पर सैनिकों को भर्ती किया।

सल्तनत काल में अच्छी नस्ल के घोड़े तुर्की, अरब एवं रूस से मंगाये जाते थे। हाथी मुख्यतः बंगाल से प्राप्त होते थे।

न्याय एवं दण्ड व्यवस्थाः सल्तनत काल में सुल्तान राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। इस समय न्याय इस्लामी कानून शरीयत, कुरान एवं हदीस पर आधारित था। मुस्लिम कानून के चार महत्वपूर्ण स्त्रोत थे- कुरान, हदीस, इजमा एवं कयास।

कुरानः मुसलमानों का पवित्र ग्रंथ एवं मुस्लिम कानून का मुख्य स्त्रोत।

हदीसः पैगम्बर के कार्यों एवं कथनों का उल्लेख, कुरान द्वारा समस्या का समाधान न होने पर 'हदीस' का सहारा लिया जाता था।

इजामः 'मुजतहिद' व मुस्लिम विधिशास्त्रीयों को मुस्लिम कानून की व्याख्या का अधिकार प्राप्त था। इसके द्वारा व्याख्यायित कानून, जो अल्लाह की इच्छा माना जाता था, को 'इजमा' कहा जाता था।

कयासः तर्क के आधार पर विश्लेषित कानून को 'कयास' कहा जाता था। सुल्तान सद्र-उस-सुदूर, काजी-उल-कुजात आदि न्याय से संबंधित सर्वोच्च अधिकारी होता था। सुल्तान दीवान-ए-कजा तथा दीवान-ए-मजलिस के द्वारा भी न्याय कार्य पूरा करता था। धार्मिक मुकदमों के निर्णय के समय सुल्तान काजी या 'साहिब-ए-दीवान' करते थे। धार्मिक मुकदमों के निर्णय के समय सुल्तान मुख्य सुद्र एवं मुफ्ती की सहायता लेता था जबकि अन्य मुकदमों के निर्णय के समय काजी की सहायता लिया करता था।

कस्बों एवं गांवों की सहायता के माध्यम से स्थानीय पंच लोग झगड़ों का निपटारा करते थे। सल्तनत काल में दण्ड व्यवस्था कठोर थी। अपराध की गंभीरता को देखते हुए क्रमशः मृत्युदण्ड, अंग-भंग एवं सम्पत्ति को हड़पने का दण्ड दिया जाता था। सल्तनत काल में मुख्यतः 4 प्रकार के कानून का प्रचलन था-

1. **सामान्य कानूनः** व्यापार आदि से सम्बन्धित ये कानून मुस्लिम एवं गैर मुस्लिम दोनों पर लागू होते थे। परन्तु सामान्यतः यह कानून केवल मुसलमानों पर लागू होता था।
2. **देश का कानूनः** मुस्लिम शासकों द्वार शासित देश में प्रचलित स्थानीय नियम कानून।
3. **फौजदारी कानूनः** यह कानून मुस्लिम एवं गैर मुस्लिम दोनों पर समान रूप से लागू होता था।

गैर मुस्लिमों का धार्मिक एवं व्यक्तिगत कानूनः हिन्दुओं के सामाजिक मामलों में दिल्ली सल्तनत का अति सूक्ष्म हस्तक्षेप होता था। उनके मुकदमों की सुनवाई पंचायतों में विद्वान, पण्डित एवं ब्राह्मण किया करते थे।

मुस्लिम दण्ड विधि को 'फिकह' (इस्लामी धर्मशास्त्र) में बताये गये नियमों के अनुसार कठोरता से लागू किया जाता था। कुरान के नियमों के अनुसार मुस्लिम शासक का सबसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है- मूर्ति पूजकों को नष्ट करना, जिहाद (धर्मयुद्ध) लड़ना एवं 'दारुल-हर्ब' (काफिरों के देश) को 'दारुल इस्लाम' (इस्लाम का देश) में बदलना।

वित्त विभागः सल्तनतकालीन वित्त व्यवस्था सुन्नी विधि -विषेशज्ञों की हनीफी शाखा के वित्त सिद्धांतों पर आधारित थी। दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों ने गजनी के पूर्वाधिकरियों से यह परम्परा ग्रहण की थी। सल्तनत काल में भूमि चार भागों में विभक्त थी।

(i) **मदद-ए-माशः** दान में दी गयी भूमि। इससे कोई राजस्व नहीं लिया जाता था।
(ii) **मुक्तियों या इक्तादारों को दी गयी भूमिः** इसमें प्रत्येक इक्तादार अपना खर्च निकालकर अधिशेष शाही खजाने में भेज देता था।
(iii) **अधीनस्थ हिन्दू राजाओं के अधीन भूमिः** यहां से एक निश्चित धनराशि केन्द्र को भेजी जाती थी।
(iv) **खालसा भूमिः** इसकी समस्त आय शाही कोष में सीधे जाती थी। मुस्लिम विधिविज्ञों ने सल्तनत काल में वसूले जाने वाले करों को

PERFECTION IAS

धार्मिक एवं धर्मनिरपेक्ष भागों में विभक्त किया। धार्मिक कर में जकात एवं धर्मनिरपेक्ष कर में जजिया, खराज एवं खुम्स आदि आते थे।

जकात: मुसलमानों से लिया जाने वाला यह धार्मिक कर केवल सम्पन्न वर्ग के मुसलमानों से लिया जाता था। इस कर की वसूली में बल प्रयोग पूर्णत: वर्जित था। जकात कर आय का 2.5% लिया जाता था। इस कर का सम्पूर्ण भाग मुसलमानों के कल्याण पर खर्च किया जाता था। एक अन्य धार्मिक कर 'सदका' का भी उल्लेख मिलता है, जिसे कभी-कभी जकात ही मान लिया जाता था।

उश्र: केवल मुसलमानों से लिया जाने वाला यह कर भूमि की उपज पर लिया जाता था। इस कर से वक्फ, नाबालिग एवं दास भी मुक्त नहीं थे। इस कर की वसूली में बल प्रयोग किया जा सकता था। यह कर प्राकृति साधनों से सिंचित भूमि की उपज का 1/10 भाग तथा मनुष्यकृत साधनों से सिंचित भूमि की उपज का 1/5 भाग लिया जाता था।

जजिया: गैर मुसलमानों से वसूले जाने वाले इस कर पर काफी विवाद है। कुछ मुसलमान इसे धार्मिक कर मानते हैं क्योंकि यह गैर मुसलमानों को उनकी सम्पत्ति, सम्मान की सुरक्षा एवं सैनिक सेवा से मुक्त रहने के लिए देना होता था। परन्तु आधुनिक इतिहासकारों ने इस धर्मनिरपेक्ष कर मानते हुए कहा है कि यह कर गैर मुस्लिमों को इसलिए देना होता था क्योकि वे सैनिक सेवा से मुक्त थे। इस कर से स्त्रियां, बच्चे भिखारी एवं लंगड़े मुक्त थे। फिरोज तुगलक ने इस कर को ब्राह्मणों पर लगाया। यह कर सम्पन्न वर्ग से 40 टंका, मध्यम वर्ग से 20 टंका एवं सामान्य वर्ग से 10 टंका प्रतिवर्ष लिया जाता था।

खराज: यह गैर मुसलमानों से लिया जाने वाला भूमि कर था। इस कर के रूप में उपज का 1/3 से 1/2 भाग तक वूसल किया जाता था। अलाउद्दीन खलजी अनिवार्य रूप से 1/2 भाग वसूल करता था, जबकि पूरे सल्तनत काल किसानों से उनकी पैदावार का 1/3 भाग लिया जाता था।

खुम्स: खुम्स लूट का धन होता था। इस धन का 1/5 भाग राजकोष में तथा 4/5 भाग सैनिकों में बांट दिया जाता था। परन्तु अलाउद्दीन एवं मुहम्मद तुगलक लूट के धन का 4/5 भाग राजकोष में जमा करवाते थे तथा शेष 1/5 भाग सैनिकों में वितरित कर दिया जाता था।

उपर्युक्त करों के अतिरिक्त व्यापारिक कर के रूप में मुसलमानों से 2.5% एवं गैर मुस्लिमों से 5% लिया जाता था। घोड़ों के व्यापार पर 5% कर लगता था। अलाउद्दीन खिलजी ने मकान एवं चारागाह पर तथा फिरोजशाह ने सिंचाई के साधनों पर कर लगाया जो पैदावार का 10% था।

4. **लगान व्यवस्था :**

बंटाई: बंटाई लगान निर्धारित करने की एक प्रणाली थी, जिसमें राज्य की ओर से प्रत्यक्ष रूप में जमीन की पैदावार से हिस्सा लिया जाता था। इसकी दो विधियां थीं- एक फसल तैयार होने के समय सरकारी अधिकारी कुल पैदावार का मूल्य निर्धारित करके करों को तय करते थे और दूसरा तैयार फसलों की माप तौल के आधार पर कर का निर्धारण किया जाता था। दूसरी विधि को बंटाई किस्मत-ए-गल्ला, बख्शी व हासिल कहा गया है। सल्तनत काल में निम्न तीन प्रकार की बंटाई विधि प्रचलन में थी-

1. **खेत बंटाई:** खड़ी फसल या बुवाई के बाद ही खेत बांटकर कर का निर्धारण करना।
2. **लंक बंटाई:** खेत काटने के बाद खलिहान में लाये गये अनाज से भूसा निकाले बिना ही कृषक एवं सरकार के बीच बंटवारा हो जाता था।
3. **रास बंटाई:** खलिहान में अनाज से भूसा अलग करने के बाद सरकारी हिस्से को निर्धारित किया जाता था।
   बंटाई व हासिल प्रणाली सल्तनत के प्रत्यक्ष शासन क्षेत्र में अपनाई गई थी। कहा जाता था।
   अलाउद्दीन को बाजार नियंत्रण के लिए अनाज की आवश्यकता थी, इसलिए व लगान के रूप में अनाज लेता था।

मसाहत: भूमि की नाप-जोख करने के उपरान्त उसके क्षेत्रफल के आधार पर उपज का लगान निश्चित किया जाता था। इस प्रणाली की शुरुआत अलाउद्दीन खिलजी ने की। गयासुद्दीन तुगलक के काल में खेतों के माप द्वारा कर निर्धारण करने की व्यवस्था को छोड़कर 'हुक्म-ए-हासिल' को अपनाया गया। दिल्ली सुल्तानों में सर्वप्रथम गयासुद्दीन तुगलक ने कृषि को प्रोत्साहन देने के विचार से नहरें बनवायीं तथा कई बाग लगवाये। मुहम्मद बिन तुगलक ने पुन: भूमि पैमाइश को लगान का आधार बनाया फिरोज तुगलक द्वारा बनवायी गयी सबसे महत्वपूर्ण नहरों 'राजवाही' और 'उलूगखनी' प्रमुख थीं। सल्तनत काल में राज्य की समस्त भूमि 4 वर्गों में विभक्त थी-

1. **खालसा भूमि:** इस प्रकार की भूमि पूर्णत: केन्द्र के नियंत्रण में रहती थी इस भूमि से कर वसूल करने के लिए राजस्व विभाग के पदाधिकारी चौधरी एवं मुकद्दम होते थे। प्रत्येक शिक में एक 'आमिल' नाम का अधिकारी होता था जो कर वसूल कर सुल्तान को भेजा करता था। अलाउद्दीन के समय में खालसा भूमि में पर्याप्त वृद्धि हुई।
2. **इक्ता की भूमि:** इक्ता की भूमि की देख-भाल 'मुफ्ती' करते थे। इस भूमि से 'मुफ्ती' व 'वती' लगान वसूलते थे। लगान वसूल करने के बाद मुफ्ती अपना खर्च अलग कर शेष धन को सरकारी खजाने में जमा कर देता था। छोटी इक्ता के प्रमुख को इक्तादार तथा बड़ी इक्ताओं के प्रमुख को मुक्ता या वली कहते थे। मुहम्मद तुगलक ने इक्ता व्यवस्था में सुधार करते हुए मुक्ता या वली से अधिकार लेकर वली-उल-खराज नामक अधिकारी को दे दिया। फिरोज तुगलक के समय में सर्वाधिक इक्ताएं दान में दी गयी। भारत में इक्ता प्रणाली की शुरुआत मुहम्मद गोरी ने की थी। फिरोज तुगलक के समय इक्ता प्रथा आनुवंशिक हो गई थी। बलबन ने इक्ता धारकों की देखरेख के लिए एक अन्य कदम उठाया। उसने महत्वपूर्ण प्रान्तों पर अपने पुत्रों को गर्वनर के रूप में नियुक्त किया और ख्याजा के पद का सृजन किया। इस प्रकार बलबन ने प्रान्तों में सीमित रूप से द्वैध शासन की स्थापना की।

PERFECTION IAS

3. **सामन्तों की भूमिः** यह भूमि अधीनस्थ हिन्दू सामन्तों व राजाओं की भूमि थी जो प्रतिवर्ष एक निश्चित मात्रा में धन सरकारी कोष में जमा करते थे।
4. **इनाम व वक्फः** यह कर मुक्त भूमि होती थी जो विशेष लोगों को दान में दी जाती थी। भूमि को प्राप्त करने वाले का भूमि पर वंशानुगत अधिकार होता था।

सल्तनत काल में किसानों का उपज का 1/3 से लेकर 1/2 भाग तक राज्य को कर के रूप में देना होता था। अलाउद्दीन के समय भूमि कर को 50% कर दिया गया था। अलाउद्दीन एवं मुहम्मद तुगलक ने भूमि, की पैमाइश के आधार पर लगान को निर्धारित किया। अलाउद्दीन ने दान के रूप में दी गई अधिकांश भूमि को छीन कर खालसा भूमि में परिवर्तित कर दिया। उसने लगान को दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों एवं दोआब से अनाज के रूप में वसूल किया। फिरोज तुगलक ने नवीन कर-सिंचाई कर लगाया।

आर्थिक विकासः सल्तनत काल में भारत आर्थिक दृष्टि से विकसित था। विदेशों से वस्तुएं मंगाई एवं भेजी जाती थीं। व्यापार जल एवं थल दोनों मार्गों से होता था। इस समय भारत से विदेशों में भेजी जाने वाली महत्वपूर्ण वस्तुएं लोहा, हथियार, अनाज, सूतीवस्त्र, जड़ी-बूटी, मसाले, फल, शक्कर एवं नील आदि थीं। बाहर से आयात की जाने वाली महत्वपूर्ण वस्तुओं में घोड़ें (अरब, तुर्किस्तान, रूस, ईरानी), अस्त्र-शस्त्र, दास मेवे, फल आदि शामिल थे।

सलतनत काल के महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र के रूप में दिल्ली थट्टा, देवल, सरसुती, अन्हिलवाडद्व सतगांव, सोनार गांव, आगरा, वाराणसी, लाहौर आदि प्रसिद्ध थे। देवल सल्तनत काल में अन्तर्राष्ट्रीय बन्दरगाह के रूप में प्रसिद्ध था। सरसुी अच्छे किस्म के चावल के लिए, अन्हिलवाड़ व्यापारियों के तीर्थस्थल के रूप में, सतगांव रेशमी रजाइयों के लिए, आगरा नील उत्पादन के लिए एवं बनारस सोने, चांदी एवं जारी के काम के लिए प्रसिद्ध था। आवागमन के साधन के रूप में बैलगाड़ी, खच्चर, ऊंट, रथ तथा नौकाओं का प्रयोग किया जाता था।

सल्तनतकालीन प्रमुख ऐतिहासिक कृतियां

चचनामाः अली अहमद द्वारा अरबी भाषा में लिखित इस ग्रन्थ में अरबों द्वारा सिन्ध विजय का वर्णन किया गया है।

तारीखे सिन्ध या तारिखे मासूमीः भक्खर के मीर मुहम्मद मासूल द्वारा रचित इस कृति में अरबों की विजय से लेकर अकबर के शासनकाल तक का इतिहास मिलता है।

किताबुल यामिनीः अबू अस्त्र बिन मुहम्मद अल जबरूल उतबी द्वारा रचित इस पुस्तक में सुबुक्तगीन एवं महमूद गजनवी के शासन काल का वर्णन है।

जैन-एल-अखबारः अबू सईद द्वारा रचित इस ग्रन्थ में ईरान के इतिहास एवं महमूद गजनवी के जीवन के विषय में जानकारी मिलती है।

तारीख-ए-मसूदीः अबुल फजल मुहम्मद बिन हुसैन अल बहरी द्वारा रचित इस पुस्तक में महमूद गजनवी तथा मंसूद के इतिहास के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है।

तारीख उल हिन्दः किताबुल हिन्द- महमूद गजनवी के साथ भारत आए अलबरूनी की इस महत्वपूर्ण कृति में 11वीं सदी के भारत की रजनैतिक एवं सामाजिक दशा का उल्लेख मिलता हैं उसकी यह पुस्तक अरबी भाषा में लिखी गई है।

कमीलुत तवारीखः शेख अब्दुल हसन (इब्नुल असार) द्वारा यह ग्रन्थ 1230 ई. में लिखा गया। इस ग्रंथ में मध्य एशिया के गोर शंसबनी राजवंश के इतिहास के विषय में जानकारी मिलती है।

ताजुल मासिरः हसन निजामी द्वारा रचित इस पुस्तक में मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमण के समय की घटनाओं का वर्णन मिलता है।

तबकाते नासिरीः मिनहाज-उस-सिराज (मिनहाजुद्दीन अबू-उमर बिन सिराजुद्दीन अल जुजियानी) द्वारा रचित इस पुस्तक में मुहम्मद के भारत विजय तथा तुर्की सल्तनत का आरम्भिक इतिहास लगभग 1260 ई. तक की जानकारी मिलती है। मिनहाज ने अपनी इस कृति को गुलाम वंश के शासक नासिरुद्दीन महमूद को समर्पित की थी। उस समय मिनहाज दिल्ली का मुख्य काजी था।

तारिखे फिरोजशाहीः जियाउद्दीन बरनी द्वारा रचित इस ग्रन्थ में बलबन के राज्याभिषेक से लेकर फिरोज तुगलक के शासन के छठें वर्ष तक की जानकारी मिलती है।

फतवा-ए-जहांदारीः जियाउद्दीन बरनी द्वारा लिखी गई कृति है। इसके अतिरिक्त जियाउद्दीन बरनी की कुछ अन्य कृतियां सुना-ढ-मुहमदी, सलाते कबीर, इनायतनामा-ए-इलाही, मासीर सादात, हसरतानामा, तारीखे बमलियान आदि हैं।

अमीर खुसरो की कुछ महत्वपूर्ण कृतियांः खजाइन-उल-फुतूह, किरान-उस-सादेन, मिफता-उस-फुतूह, आशिका-उल-अनवर, शीरी व फरहाद, लैला व मजनूं आइने सिकन्दरी, हश्तबहिश्त, देवलरानी व खिज्र खां, रसै इजाज अफजल, उल-फरायद, तारीखे दिल्ली आदि है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियों का उल्लेख निम्नलिखित हैं-

खजाइन-एल-फुतूहः इसे 'तारीखे अलाई' के नाम से भी जाना जाता है। अमीर खुसरो द्वारा रचित इस कृति से अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल के पूर्व के 15 वर्षों की घटनाओं का वर्णन मिलता है।

किरान-उस-सादेनः अमीर खुसरो द्वारा 1289 ई. में रचित इस पुस्तक में बुगरा खां और उसके बेटे कैकुबाद के मिलन का वर्णन मिलता है।

मिफता-उल-फुतूहः 1291 ई. में रचित अमीर खुसरो की इस कृति में जलालुद्दीन खिलजी के सैन्य अभियानों, मलित छज्जू का विद्रोह एवं उसका दमन, रणथम्भौर पर सुल्तान की चढ़ाई और झाइन की विजयों का वर्णन है।

आशिकाः खुसरों की इस कृति में गुजरात के राजा करन की पुत्री देवलरानी और अलाउद्दीन के पुत्र खिज्र खां के बीच प्रेम का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त यह पुस्तक अलाउद्दीन की गुजरात तथा मालवा पर विजय, तथा मंगोलों द्वारा स्वयं को कैद किए जाने की जानकारी भी देती है।

नूह-सिपेहरः अमीर खुसरो की इस कृति में मुबारक खिलजी के समय की सामाजिक स्थिति के विषय में जानकारी मिलती है।

तुगलकनामाः अमीर खुसरो की इस अंतिम एवं ऐतिहासिक कृति में खुसरो शाह के विरुद्ध गयासुद्दीन तुगलक की विजय का उल्लेख है।

PERFECTION IAS

फुतूह-उस-सलातीनः ख्वाजा अबूबग्र इसामी द्वारा रचित इस पुस्तक में गजनवी वंश के समय से लेकर मुहम्मद बिन तुगलक के समय तक का काव्यात्मक इतिहास मिलता है। यह पुस्तक बहमनी वंश के प्रथम शासक अलाउद्दीन बहमनशाह को समर्पित है।

किताब-उल-रेहलाः यह मोरक्कोवासी यात्री इब्नबतूता, जो 1333 ई. (मुहम्मद तुगलक) में भारत आया था, का यात्रा वृतांत है। इस पुस्तक में 1333 से 1342 तक के भारत की राजनीतिक गतिविधियों एवं सामाजिक हालातों का वर्णन है। इसे मुहम्मद तुगलक ने दिल्ली का काजी नियुक्त किया था। कालान्तर में इसे दूत बनाकर चीन भेजा गया था।

तारीख-ए-फिरोजशाहीः शम्स-ए-सिराज अफीक द्वारा लिखे गये इस ग्रंथ में फिरोज तुगलक के शासन काल एवं तुगलक वंश के पतन के बार में जानकारी मिलती है। इसकी अन्य कृतियां 'मन की बें अलाई', 'मना की बे सुल्तान मुहम्मद' एवं 'जिक्रे खराबीये देहली' है।

सीराते फिरोजशाहीः किसी आत लेखक द्वारा लिखी इस कृति से फिरोज तुगलक के शासन काल के बारे में जानकारी मिलती है।

फुतूहाते फिरोजशाहीः इस किताब में फिरोज तुगलक के अध्यादेशों का संग्रह एवं उसकी आत्मकथा है।

तारीख-ए-मुबारक शाहीः याहिया बिन अहमद सरहिन्दी द्वारा लिखे गये इस ग्रंथ से तुगलक काल के बाद सैयद वंश के विषय में जानकारी मिलती है। इस काल के इतिहास को जानने का यह एकमात्र स्त्रोत है।

गुलरुखीः लोदी सुल्तान सिकन्दर लोदी ने गुलरुखी शीर्षक से फारसी में कविताएं लिखी।

सल्तनल काल में संस्कृत की कुछ पुस्तकों का फारसी में अनुवाद किया गया जो निम्नलिखित हैं-

दलयाले फिरोजशाहीः ऐजुद्दीन खालिद किरमानी द्वारा संस्कृत से फारसी में अनूदित यह पुस्तक नक्षत्र-शास्त्र से सम्बन्धित है।

याद अनुसशाफियाये सिकन्दरी या तिब्बे सिकन्दरीः सिकन्दर लोदी के वजीर मियॉ भुआ द्वारा संस्कृत से फारसी में अनुदित यह पुस्तक चिकित्साशास्त्र से सम्बन्धित है।

ताज-उल-मासिरः इस ग्रन्थ की रचना हसन निजामी ने की है। इसमें 1192 ई. से लेकर 1228 ई. तक के काल की घटनाओं का वर्णन मिलता है। हसन निजामी ने अपनी इस पुस्तक में कुतुबुद्दीन ऐबक के जीवन व शासन और इल्तुमिश के राज्य के प्रारम्भिक वर्षों का वर्णन किया है।

कामिल-उत-तारीखः इसकी रचना 1230 ई. में शेख अब्दुल हसन (उपनाम इब्नुल आसीर) ने की। इसमें मुहम्मद गौरी के विजयों का वृत्तान्त मिलता है।

तारीख-ए-सिन्ध या तारीख-ए-मासूमीः यह ग्रन्थ चचनामा पर आधारित है। इसकी रचना 1600 ई. में मीर मुहम्मद मासूम द्वारा की गई। इसमें अरबों की विजय से लेकर मुगल सम्राट अकबर महान तक के राज्य में सिंध का इतिहास वर्णित है।

किताब-उल-यामिनीः इस ग्रन्थ का रचयिता उतबी है। सुबुक्तगीन और महमूद गजनवी का 1020 ई. तक का इतिहास इस पुस्तक का विषय है।

तारीख-ए-मसूदीः अबुल फजल मुहम्मद बिन हुसैन-अल-बैहाकी द्वारा लिखित इस ग्रन्थ में महमूद गजनवी के इतिहास, दरबार के जीवन की झलक और कर्मचारियों के षडयंत्रों का विवरण मिलता है।

हिन्दी में मसनवी लिखने की परम्परा की शुरुआती तुगलक काल में हुई।

फारसी विद्वान

सल्तनत काल की राजकीय भाषा फारसी थी। सल्तनत काल के सुल्तानों के दरबार में सरंक्षण-प्राप्त किये हुए फारसी विद्वान निम्नलिखित हैं-

कुतुबुद्दीन ऐबकः ताज-उल-मासिर के लेखक ख्वाजा सद्र हसन निजामी।

इल्तुतमिशः ख्वाजा अबूनस्त्र, अबूबक्र, बिन मुहम्मद सहानी ताजद्दीन दबीर एवं नुरुद्दीन मुहम्मद ऊफी। नुरूद्दीन नुनाकी (आदिम), इतिहासकार मिनहाजुद्दीन सिराज।

गयासुद्दीन बलबनः इसने मध्य एशिया से आये कई विद्वानों को सरंक्षण प्रदान किया। इसके पुत्र मुहम्मद ने तत्कालीन दो प्रसिद्ध/लेखक अमीर खुसरो तथा मीर हसन देहलवी को संरक्षण प्रदान किया।

अमीर खुसरोः अमीर खुसरो फारसी भाषा का सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि था। उसका जन्म एटा (उत्तर प्रदेश) के पटियाली गांव में 1253 ई. में हुआ। इसके पिता सैफुद्दीन महमूद नासिरूद्दीन महमूद के समय में भारत आये थे। अमीर खुसरे के बचपन का नाम अबुल हसन था। यह निजामुद्दीन औलिया का शिष्य था। इसे बलबन से लेकर गयासुद्दीन तुगलक के समय तक के सुल्तानों का संरक्षण प्राप्त था। खुसरो ने कविता, कथा कहानी, मसनवी एवं इतिहास के ढेर सारे ग्रंथ लिखे। अमीर खुसरो की कृतियों में किरान-उस-सादेन, मिफता-उल-सादेन, मिफता-उल-फुतूह, खजाइन-उल-फुतूह (तारीख अलाई), तुगलकानाम, आशिका तथा नूह सिपिहर प्रमुख हैं। नूर सिपिहर में अपने देश भारत की प्रशंसा की है। अमीर खुसरो प्रथम ऐसा भारतीय लेखक था जिसने हिन्दी शब्दों एवं मुहावरों का प्रयोग किया। संगीत के क्षेत्र में उसने सितार का आविष्कार ईरानी तम्बूरा एवं भारतीय 'वीणा' को मिलाकर किया था।

अमीर खुसरो को मंगोलों ने बंदी बना लिया था परन्तु वह उनके कैद से निकलकर भाग गया था। उसने अपने जीवन के महत्वपूर्ण क्षण मुहम्मद, कैकुबाद जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, मुबारकशाह खिलजी एवं गयासुद्दीन तुगलक के दरबार में बिताया। 1325 ई. में खुसरो की मृत्यु हो गई।

जियाउद्दीन बरनीः बरनी का जन्म 1284-85 ई. में सैयद परिवार में हुआ था उसका बचपन अपने चाचा अला-उल-मुल्क के साथ व्यतीत हुआ जो अलाउद्दीन खिलजी के सलाहाकार थे। सीवतः बरनी ने 45 विद्वानों से शिक्षा ग्रहण की थी। यह मुहम्मद तुगलक के बरबार में नदीम (जिंदादिल साथी) के पद पर रहा। बरनी को मुहम्मद तुगलक के शासन काल में 17 वर्ष तक संरक्षण में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फिरोजशाह तुगलक के शासन काल में उसे कुछ समय तक जेल में भी रहना पड़ा। सम्भवतः इसके जीवन का अंतिम पड़ाव बड़ा ही कष्टप्रद था। उसकी सम्पत्ति को जब्त कर उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया था। सम्भंवतः अपने अंतिम समय में कष्टप्रद जीवन से मुक्ति प्राप्त कर पुनः मान्यता प्राप्त करने के लिए बरनी ने सुल्तान फिरोज की प्रशंसा में तारीख-ए-फिरोजशाही एवं फतवा-ए-जहॉदारी की रचना की। बरनी ने अपनी रचना अमीर एवं कुलीन वर्ग के लोगों को समर्पित की।

PERFECTION IAS

जियाउद्दीन बरनी ने चार विद्वानों 'ताजुल मासिर के लेखक ख्वाजा सद्र निजामी, 'जवामे उल हिकायत' के लेखक मौलाना सद्रद्दीन औफी, 'तबकाते नासिरी' के लेखक मिनहाजुद्दीन सिराज एवं 'फाथनामा' के लेखक कबीरुद्दीन इराकी को सच्चा इतिहासकार माना है।

सल्तनत काल में रामानुज ने ब्रह्मसूत्र पर टीकाएं लिखी और पार्थसारथि ने कर्म मीमांसा पर अनेक ग्रन्थों की रचना की। जयदेव ने 'गीतगोविन्द' की रचना की। लगभग 1200 ई. में जयदेव ने 'हरिकेलि नाटक', 'ललित विग्रहराज' और 'प्रसन्न राघव' का प्रणयन किया। 1219-29 ई. में जयसिंह सूरी ने 'हमीर मदमर्दन' की रचना की। इसी प्रकार रविवर्मन के 'प्रद्युम्नाभ्युदय' की तथा विद्यानाथ ने 'प्रतापरूद्र कल्याण' की तथा वामनभट्ट ने 'पार्वती-परिणय' की रचना की गंगाध र ने 'गंगदास प्रताप विलास' की तथा गोस्वामी ने 'विदेह माधव' तथा 'ललित माधव' की रचना की।

हिन्दुओं के प्रसिद्ध कानून ग्रन्थ मिताक्षरा तथा दायभाग की रचना इसी समय में हुई। विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य स्मृति पर मिताक्षरा नाम टीका लिखा। जीमूतवाहन ने 'दायभाग' की रचना की। कल्हण ने 12वीं शताब्दी में ऐतिहासिक ग्रन्थ' 'राजतरंगिणी' की रचना की।

सल्तनत काल में हिन्दी भाषा का विकास हुआ। पृथ्वीराज चौहान के दरबार कवि चंद्रवरदायी ने 'पृथ्वीराजरासों' की रचना की। सारंगधर ने 'हम्मीर काव्य' तथा 'हम्मीर रासो' नाम काव्य ग्रन्थ की रचना की। जगनिक ने 'आल्हाखण्ड' की रचना की। इसमें महोबा के चंदेल शासक परमर्दिदेव के आल्हा तथा ऊदल नामक दो योद्धाओं के वीरतापूर्ण कार्य का वर्णन है।

PERFECTION IAS

4. मध्यकालीन भारत में आन्दोलन

मध्य काल के दौरान दो परस्पर विरोधी आस्थाओं एवं विश्वासों के खिलाफ धार्मिक सुधार अति आवश्यक हो गया था। इस समय समाज में ऐसे सुधार की सख्त आवश्यकता थी जिसके द्वार हिन्दू धर्म के कर्मकाण्ड एवं इस्लाम में कट्टर पंथियों के प्रभाव को कम किया जा सके। दसवीं शताब्दी के बाद इन परम्परागत रूढ़िवादी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के लिए इस्लाम एवं हिन्दू धर्म में दो महत्वपूर्ण रहस्यावादी आंदोलनों-सूफी एवं भक्ति आन्दोलन का शुभारंभ हुआ। इन आंदोलन ने व्यापक आध्यात्मिकता एवं अद्वैतवाद पर बल दिया, साथ ही निरर्थक कर्मकाण्ड, आडम्बर एवं कट्टरपंथ के स्थान पर प्रेम, उदारतावाद एवं गहन भक्ति को अपना आदर्श बनाया।

अबू नस्त्र अल सिराज की पुस्तक 'किताब-उल-लुमा' में किये गये उल्लेख के आधार पर माना जाता है कि सूफी शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द 'सूफ' (ऊन) से हुई जो एक प्रकार से ऊनी का सूचक है, जिसे प्रारम्भिक सूफी लोक पहना करते थे। 'सफा' से भी सूफी की उत्पत्ति मानी जाती है। सफा का अर्थ पवित्रता या विशुद्धता से है। इस प्रकार आचार-व्यवहार से पवित्र लोग सूफी कहे जाते अन्य मत के अनुसार हजरत मुहम्मद साहब द्वारा मदीना में निर्मित मस्जिद के बाहर सफा अर्थात् मक्का की एक पहाड़ी पर कुछ लोगों ने शरण लेकर आपने को खुदा की आराधना में लीन कर लिया, इसलिए वे सूफी कहलाये। सूफी चिन्तक इस्लाम का अनुसरण करते थे, परन्तु वे कर्मकाण्ड का विरोध करते थे। इनके प्रादुर्भाव का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि उस मसय (सल्तनत काल) उलेमा (धर्मवेत्ता) वर्ग में लोगों के कट्टरंपथी दृष्टिकोण की प्रधानता थी। सल्तनतकालीन सुल्तान सुन्नी मुसलमान होने के कारण सुन्नी धर्मवेत्ताओं के आदेशों का पालन करते थे और साथ ही सिया सम्प्रदाय के लोगों के महत्व नहीं देते थे। सूफी ने इनकी प्रधानता को चुनौती दी तथा उलेमाओं के महत्व को नकारा।

प्रारम्भिक सूफियों में 'रबिया' (8वीं सदी) एवं मंसूर हल्लाज (10वीं सदी) का नाम महत्वपूर्ण हैं। मंसूर हल्लाज ऐसे पहले सूफी साध क थे जो स्वयं को 'अनलहक' घोषित कर सूफी विचारधारा के प्रतीक बने। सूफी संसार में सबसे पहले इब्नुल अरबी द्वार दिये गये सिद्धान्त वहदत-उल-वुदूज का उलेमाओं ने जमकर विरोध किया। वहदत-उल-वुदूद का अर्थ है- ईश्वर एक है और वह संसार की सभी वस्तुओं का निर्माता है। इस प्रकार वहदत-उल-वुद एकेश्वरवाद का समनार्थी है। उलेमा वर्ग के लोगों ने ब्रह्म तथा जीव के मध्य मालिक एवं गुलाम के रिश्ते की कल्पना की, दूसरी ओर सूफियों ने ईश्वर को 'प्रियतमा' एवं स्वयं को 'प्रियतम' मानते थे। उनका विश्वास था कि ईश्वर की प्राप्ति प्रेम-संगीत से की जा सकती है। अत: सूफियों ने सौन्दर्श एवं संगीत को अधिक महत्व दिया। सूफी गुरु को अधिक महत्व देते थे क्योंकि वे गुरु ईश्वर प्राप्ति के मार्ग का पथ प्रदर्शक मानते थे। सूफी सन्त भौतिक एवं भोग विलास से युक्त जीवन से दूर सरल, सादे, संयमपूर्ण जीवन में आस्था रखते थे। प्रारम्भ में सूफी आन्दोलन खुरासान प्रांत के आस-पास विशेषकर बल्ख शहर एवं इराक तथा मिस्त्र में केन्द्रित रहा। भारत में इस आंदोलन का आरम्भ दिल्ली सल्तनत से पूर्व ही हो चुका था। ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी में लाहौर एवं मुल्तान में कई सूफी संतों का जमघट हुआ। मुस्लिम स्त्रोत के आधार पर करीब 125 सूफी धर्म संघों के अस्तित्व की बात कही जाती है। अबुल फजल ने आइने-अकबरी में करीब 14 सूफी सिलसिलों के बारे में उल्लेख किया है। इनमें से केवल दो सिलसिलों का ही गहरा प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर पड़ा। वे लोग जो सूफी संतों से शिष्यता ग्रहण करते थे उन्हें 'शुरीद' कहा जाता था। सूफी जिन आश्रमों में निवास करते थे, उन्हें 'खनकाह' व 'मठ' कहा जाता था। शेख मूसा नामक प्रसिद्ध सूफी सदैव स्त्री वेश में रहते थे।

एक सूफी को परमपद प्राप्त करने से पूर्व दस अवस्थाओं- तौबा (पश्चाताप), बजा (संयम), तबाकुल (प्रतिज्ञा), जुहद् (भक्ति), फग्र (निर्धनता), सब्र (संतोष), रिजा (आत्म समर्पण), शुक्र (आभार), खौफ (डर), रजा (उम्मीद) आदि से गुजरना पड़ता था। सूफी सन्तों ने अपनी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार जन साधारण की भाषा में किया। इनके प्रयत्नों से हिन्दी, उर्दू के साथ अन्य प्रान्तीय भाषाओं का भी विकास हुआ। सूफियों के धर्मसंघ 'बा-शरा' (इस्लामी सिद्धान्त के समर्थक) और 'बे-शरा' (इस्लामी सिद्धान्त से बंधे नहीं) में विभाजित थे। भारत में दोनों मत के लोग थे। भारत में चिश्ती एवं सुहरावर्दी सिलसिले की जड़ें काफी गहरी थीं।

चिश्ती धर्म संघ या सिलसिला

12वीं शताब्दीं में अनेक सूफी सन्त भारत आये। चिश्ती सिलसिले की स्थापना ख्वाजा अब्दुल चिश्ती ने हेरात में की थी। 1192 ई. में मुहम्मद गोरी के साथ ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती भारत आयें। उन्हेंने यहां 'चिश्तिया परम्परा' की स्थापना की। उनकी गतिविधियों का मुख्य केन्द्र अजमेर था। इन्हे गरीब-ए-नवाज कहा जाता है। साथ ही अन्य केन्द्र नारनौल, हांसी, सरबर, बदायूं तथ नागौर थे। कुछ अन्य सूफी सन्तों मे बाबा फरीद, बख्तियार काकी एवं शेख बुरहानुद्दीन गरीब थे। ख्वाजा बख्तियार काकी इल्तुतमिश के समकालीन थे। उन्हेंने फरीद को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। 'बाबा फरीद' का निम्न वर्ग के लोगों से अधि क लगाव था। उनकी अनेक रचनायें गुरुग्रंथ साहिब में शामिल हैं। बाबा फरीद को गयासुद्दीन बलबन का दामाद माना जाता है। बाबा फरीद के दो महत्वपूर्ण शिष्य 'हजरत निजामुद्दीन औलिया को महबूब-ए-इलाही और सुल्तान-उल-औलिया का उपाधि दी गयी। निजामुद्दीन औलिया के प्रमुख शिष्य शेख सलीम चिश्ती थे। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने हमीदुद्दीन नागौरी को सुल्तान-ए-तारिकीन (संयासियों के सुल्तान) की उपाधि प्रदान की थी।

निजामुद्दीन औलिया के सबसे प्रिय शिष्य अमीर खुसरो थे। खुसरो ने औलिया की मृत्यु का समाचार के दूसरे दिन ही प्राण त्याग दिये। शेख निजामुद्दीन औलिया ने अमीर खुसरो को ''तुर्कुल्लाह'' कहकर संबोधि त किया।

औलिया ने योग की प्राणायाम पद्धति को इस हद तक अपनाया कि उसे 'योगी सिद्ध' कहा जाने लगा। ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया को संगीत से विशेष लगाव था। बंगाल में चिश्तिया मत का प्रचार शेख सिराजुद्दीन उस्मानी ने किया। इन्हें 'आखिरी सिराज' कहा गया।

PERFECTION IAS

शेख बुराहानुद्दीन गरीब ने 1340 ई. मे दक्षिणी भारत के क्षेत्रों में चिश्ती सम्प्रदाय की शुरुआत की और दौलताबाद को अपना मुख्य केन्द्र बनाया। चिश्तियों ने हिन्दू-मुस्लिम के मध्य किसी भी प्रकार के भेदभाव का कड़ा विरोध किया। उन्होंने संयमपूर्ण, साधारण जीवन व्यतीत करते हुए लोगों से उन्हीं की भाषा में विचार-विनिमय किया। इस सम्प्रदाय के सूफी संत हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों समुदायों में समान भाव से पूजनीय थे। बुरहानपुर के एक प्रमुख सूफी संत सैयद मुहम्मद गेसूदराज को बन्दा नवाज कहा जाता हैं

सुहारवर्दी धर्म संघ व सिलसिला

इस संघ की स्थापना शेख शिहाबुद्दीन उमर सुहारवर्दी ने कि किन्तु 1262 ई. में इसके सुदृढ़ संचालन का श्रेय शेख बदरुद्दीन जकारिया को हे, जिन्होंने मुल्तान में एक शानदार मठ की स्थापना की तथा सिंध एवं मुल्तान को मुख्य केन्द्र बनाया। शेख बहाउद्दीन जकारिया के बाबा फरीद गंज-ए-शकर से घनिष्ठ सम्बन्ध थे। इस सम्प्रदाय के अन्य प्रमुख संत थे- जलालुद्दीन तबरीजी, सैयद सुर्ख जोश, बुरहान आदि। सिंध, गुजरात, बंगाल, हैदराबाद एवं बीजापुर के क्षेत्रों में इस सिलसिले का प्रचार-प्रसार हुआ। इस सम्प्रदाय ने चिश्ती सम्प्रदाय के विपरीत राज्य संरक्षण को स्वीकार किया, भौतिक जीवन का पूर्ण परित्याग नहीं किया तथा जागीर एवं नकद धनराशि के रूप में राज्य से अनुदान प्राप्त किया। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य सिलसिलों जैसे 'शत्तरी' एवं 'कादिरी' की स्थापना हुई अयूबजीद-अल-विस्तामी ने शत्तारी सिलसिले की स्थापना की थी। शेख अब्दुल्ला इस सिलसिले के प्रमुख सन्त थे। इसका मुख्य केन्द्र बिहार था। सुहरावर्दिया शाखा में शेख मूसा एक महत्वपूर्ण सूफी संत हुए जो सदैव स्त्री के भेश मे रहते थे तथा नृत्य और संगीत में अपना समय व्यतीत करते थे।

कादिरी धर्म संघ या सिलसिला

इसकी स्थापना सैयद अबुल कादिर अल गिलानी ने की थी। इसको पीरान-ए-पीर (संतो को प्रधान) तथा पीर-ए-दस्तगरी (मददगार संत) आदि की उपाधियां प्राप्त थी। भारत में इस सिलसिले के प्रवर्तक मुहम्मद गौस थे। कादिरी सिलसिले के अनुयायी गाने बजाने के विरोध ी थे वे हरे रंग की पगाड़ियां पहनते थे। दाराशिकोह इस सिलसिले का अनुयायी था। दारा शिकोह मुल्लाशाह बदख्शी का शिष्य था। प्रारंभ में यह सिलसिला उच्छ (सिंध) में सीमित था परन्तु बाद में आगरा एवं अन्य स्थानों पर फैल गया।

नक्शबन्दी धर्म संघ या सिलसिला

इसकी स्थापना ख्वाजा उबेदुल्ला ने की। भारत में इस सिलसिले का प्रचार ख्वाजा बाकी विल्लाह के शिष्य एवं अकबर के समकालीन शेख अहमद सरहिन्दी ने किया। शेख अहमद सरहिन्दी 'मुजाहिद' अर्थात् इस्लाम के नवजीवनदाता या सुधारक के रूप में प्रसिद्ध थे। ख्वाजा मीर दर्द नक्शबंदी सम्प्रदाय के अन्तिम विख्यात सन्त थे। उन्होंने एक अलग मत 'दल्मे इलाही मुहम्मदी' चलाया। इस सम्प्रदाय के लोगों को नक्शबन्दी इसलिए कहा गया कि ये लोग आध्यात्मिक तत्वों से सम्बन्धि त तरह-तरह के नक्शे बनाकर उसमें रंग भरते थे। औरंगजेब शेख अहमद सरहिन्दी के पुत्र शेख मासूम का शिष्य था। ख्वाजा मीर दर्द ने इल्मे इलाही मुहम्मदी नामक नये सिद्धान्त का प्रचार किया।

फिरदौसी सिलसिला

इसके संस्थापक मध्य एशिया के सैफुद्दीन बखरजी थे। यह सिलसिला सुहरावर्दी सिलसिले की एक शाखा थी तथा भारत में इसका कार्य क्षेत्र बिहार में था बदरुद्दीन समरगंजी, अहमद याहया मनैरी आदि इस सिलसिले के प्रमुख सन्त थे।

सूफी सन्त एवं उनकी उपाधियां

सूफी संत	उपाधि
शेख निजामुद्दीन औलिया	महबूबे इलाही
शेख नासिरुद्दीन महमूद	चिराग-ए-दिल्ली
सैयद मुहम्मद गेसूदराज	बन्दा नवाज
शेख अहमद सरहिन्दी	मुजद्दिह आलिफसानी

सूफी सिद्धान्तों एवं पद्धाति ने हिन्दू दर्शन और भक्ति के विभिन्न तत्वों को आत्मसात् किया। सूफियों के मठवासीय संगठनों एवं उनकी कुछ पद्धतियों जैसे प्रायश्चित, उपवास एवं प्राणायाम में बौद्ध एवं हिन्दू योगियों का प्रभाव झलकता है। सूफीयों ने अपने खनकाहों का निर्माण बौद्ध बिहारों एवं हिन्दू मठों की तरह करवाया। भारतीय योग सिद्धान्त के अन्तर्गत सूफी हठयोग की अमृतकुंड अवधारणा से काफी प्रभावित हुए। यह सब कारण थे, जो भारतीय सूफियों को अन्य मुस्लिम देशों के सूफियों से अलग करते हैं। इस तरह भारत में सूफी आन्दोलन ने इस्लाम के उस पुराने स्वरूप को काफी बदल दिया जो सुन्नी धर्मवेत्ताओं द्वारा प्रस्तुत किया गया था। सूफी इस्लाम के प्रचारक ही नहीं बल्कि पूर्ण आध्यात्मिक विकास के अग्रदूत थे, जिन्होंने मानवता की सेवा की। सूफी विचारधारा विश्व में आज भी जीवित है।

मध्य काल में भक्ति आन्दोलन के सूत्रपात एवं प्रचार-प्रसार के महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित थे-

1. मुस्लिम शासकों के बर्बर शासन से कुंठित एवं उनके अत्याचारों से त्रस्त हिन्दू जनता ने ईश्वर की शरण में अपने को अधिक सुरक्षित महसूस कर भक्ति मार्ग का सहारा लिया।
2. हिन्दू एवं मुस्लिम जनता के आपस में सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्पर्क से दोनों के मध्य सद्भाव सहानुभूति एवं सहयोग की भावना का विकास हुआ। इस कारण से भी भक्ति आन्दोलन के विकास में सहयोग मिला।
3. सूफी-सन्तों की उदार एवं सहिष्णुता की भावना तथा एकेश्वरवाद में उनकी प्रबल निष्ठा ने हिन्दुओं को प्रभावित किया जिस कारण से हिन्दू इस्लाम के सिद्धान्तों के निकट सम्पर्क में आये। इन सबका प्रभाव भक्ति आन्दोलन पर गहरा पड़ा।
4. हिन्दुओं ने सूफियों की तरह एकेश्वरवाद में विश्वास करते हुए ऊंच-नीच एवं जाति-पात का घोर विरोध किया।
5. शंकराचार्य का ज्ञान मार्ग व अद्वैतवाद अब साधारण जनता के लिए बोधगम्य नहीं रह गया।
6. मुस्लिम शासकों द्वारा आये दिन मूर्तियों एवं मंदिरों को नष्ट एवं अपवित्र कर देने के कारण बिना मूर्ति एवं मंदिर के ईश्वर की आराधना के प्रति लोगों का झुकाव बढ़ा जिसके लिए उन्हें भक्ति मार्ग का सहारा लेना पड़ा।

मध्य काल में भक्ति आंदोलन की शुरुआत सर्वप्रथम दक्षिण के अलवार भक्तों द्वार की गई। दक्षिण भारत से उत्तर भारत में बाहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रामानन्द द्वार यह आन्दोलन

PERFECTION IAS

चलाया गया। भक्ति आंदोलन का महत्वपूर्ण उद्देश्य था- हिन्दू धर्म एवं समाज में सुधार तथा इस्लाम एवं हिन्दू धर्म में समन्वय स्थापित करना। अपने उद्देश्यों में यह आन्दोलन काफी सफल रहा। शंकाराचार्य के 'अद्वैतदर्शन' के विरोध में दक्षिण में वैष्णव संतों द्वारा 4 मतों की स्थापना की गई थी जो निम्नलिखित हैं-

1. विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना 12वीं सदी में रामानुजाचार्य ने किया।
2. 'द्वैतवाद' की स्थापना 13वीं सदी में मध्वाचार्य ने किया।
3. 'शुद्धाद्वैतवाद' की स्थापना 13वीं सदी में निम्बर्काचार्य ने की।

इन सन्तों ने भक्ति मार्ग को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानते हुए ज्ञान और भक्ति में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। इन सन्तों की प्रवृत्ति सगुण भक्ति की थी। इन्होंने राम, कृष्ण, शिव, हरि आदि के रूप में आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की।

14वीं एवं 15वीं शताब्दी में भक्ति आन्दोलन का नेतृत्व कबीरदास के हाथों में था। इस समय रामानन्द, नामदेव, कबीर, नानक, दादू, रविदास, तुलसीदास एवं चैतन्य महाप्रभु जैसे लोगों के हाथ में इस आन्दोलन की बागडोर थी।

- **रामानन्द:** भक्ति आन्दोलन को दक्षिण से उत्तर में लाने का श्रेय रामानन्द को ही दिया जाता है। वे रामानुज पीढ़ी के प्रथम संत थे। उन्होंने सभी जाति एवं धर्म के लोगों को अपना शिष्य बनाकर एक तरह से जातिवाद पर कड़ा प्रहार किया। उनके शिष्यों में कबीर (जुलाहा), सेना (नाई), सैदास (चमार) आदि थे उन्होंने एकेश्वरवाद पर बल देते हुए राम की उपासना की बात कहीं। सम्भवत: हिन्दी में उपदेश देने वाले प्रथम वैष्णव संत रामानंद ही थे।
- **कबीर:** कबीरदास का जन्म 1440 ई. में वाराणसी में हुआ था। ये सुल्तान सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। सूरत गोपाल इनका प्रमुख शिष्य था। मध्यकालीन संतों में कबीरदास का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक योगदान नि:सन्देह अविस्मरणीय है। एक महान समाज सुधारक के रूप में उन्होंने समाज में व्याप्त हर तरह की बुराइयों के खिलाफ संघर्ष किया जिनमें उन्हें काफी हद तक सफलता भी मिली कबीर ने राम, रहीम, हजरत, अल्लाह आदि को एक ही ईश्वर के अनेक रूप माना। उन्होंने जाति प्रथा, धार्मिक कर्मकाण्ड, वाह्य आडम्बर, मूर्तिपूजा, जप-तप, अवतारवाद आदि का घोर विरोध करते हुए एकेश्वरवाद में आस्था एवं निराकार ब्रह्म की उपासना को महत्व दिया। कबीर ने ईश्वर प्राप्ति हेतु शुद्ध प्रेम, पवित्रता एवं निर्मल हृदय की आवश्यकता बताई। कबीर ने कहा था कि ''हे माधव ! अपनी कंठी माला ले लो क्योंकि भूखे पेट मैं तुम्हारा भजन नहीं कर सकता।'' निर्गुण भक्ति धारा से जुड़े कबीर ऐसे प्रथम भक्त थे जिन्होंने सन्त होने के बाद भी पूर्णत: गृहस्थ जीवन का निर्वाह किया। कबीरदास ने भारतीय संस्कृति में एकता एवं सहिष्णुता की भावना को बनाये रखते हुए धर्म को अकर्मण्यता की भूमि से हटाकर कर्मयोगी की भूमि पर लाकर खड़ा किया। कबीर ने अपना सन्देश अपने दोहों के माध्यम से जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया। इनके अनुयायी कबीरपंथी कहलाये। इसमें हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के लोग शामिल थे। कबीर की प्रमुख रचनाओं में-साखी, सबद, रमैनी, दोहा, होली, रेखताल आदि प्रमुख है। कबीर की मृत्यु 1510 ई. में मगहर में हुई। ये रामानन्द के शिष्य तथा सिकन्दर लोदी के समकालीन थे।

भक्तिकाल के प्रमुख संत, उनके संप्रदाय एवं मत

प्रवर्तक	**सम्प्रदाय**
मत	**काल**
शंकराचार्य	स्मृति सम्प्रदाय
अद्वैतवाद	788-820 ई.
रामानुजाचार्य	श्री सम्प्रदाय
विशिष्टाद्वैतवाद	1017-1133 ई.
निम्बार्क	सनक सम्प्रदाय
द्वैताद्वैतवाद	1165 ई. (जन्म)
माधवाचार्य	ब्रह्म सम्प्रदाय
द्वैतवाद	1199-1278 ई.
कबीरदास	कबीर पंथ
विशुद्ध द्वैतवाद	1440-1510 ई.
नानक	सिख सम्प्रदाय
	1469-1538 ई.
बल्लभाचार्य	रुद्र सम्प्रदाय
शुद्धाद्वैतवाद	1479-1531 ई.
चैतन्य प्रभु	मध्य गौडीय सम्प्रदाय
अचिंत्य भेदाभेदवाद	1486-1533 ई.
दादू दयाल	दादूपंथ/निपख सम्प्रदाय
—	1544-1603 ई.
तुकाराम	वारकरी सम्प्रदाय
—	1598-1650 ई.

- **गुरुनानक (14698-1539 ई.):** गुरुनानक का जन्म 1569 में तलवन्दी नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम कालू तथा माता का नाम तृप्ता था। कबीर के बाद तत्कालीन समाज को प्रभावित करने वालों में नानक का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने बिना किसी वर्ग पर आघात किये ही उसके अन्दर छिपे कुसंस्कारों को नष्ट करने का प्रयास किया। उन्होंने धर्म के वाह्य आडम्बर, जात-पात, छुआछूत, ऊंच-नीच, उपवास, मूर्तिपूजा, अन्धविश्वास, बहुदेववाद आदि की आलोचना की। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता, सच्ची ईश्वर भक्ति एवं सच्चरित्रता पर विशेष बल दिया। निरंकार ईश्वर को इन्होंने अकाल पुरुष की संज्ञा दी। उनका दृष्टिकोण विशाल मानवतावादी था। उनके उपदेशों को सिक्ख पंथ के पवित्र ग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहिब' में संकलित किया गया है।
- **चैतन्य (1486 से 1533 ई.):** बंगाल में भक्ति आंदोलन को प्रवर्तक चैतन्य ने सगुण भक्ति मार्ग का अनुसरण करते हुए कृष्ण भक्ति पर विशेष बल दिया। अन्य सन्तों की तरह चैतन्य ने भी जात-पात एवं अनावश्यक धार्मिक कुरीतियों का विरोध किया। चैतन्य ने मूर्तिपूजा, अवतारवाद, कीर्तन, उपासना आदि को महत्व दिया। चैतन्य के अनुसार प्रेम तथा भक्ति, नृत्य एवं संगीत, लीला एवं कीर्तन से सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। चैतन्य महाप्रभु ने 'गोसाई संघ' की स्थापना की और साथ ही 'संकीर्तन प्रथा' को जन्म दिया। उनके दार्शनिक सिद्धान्त को 'अचिंत्य भेदाभेदवाद' के नाम से जाना जाता है। चैतन्य के

PERFECTION IAS

अनुयायी उन्हें कृष्ण या विष्णु का अवतार मानते हैं तथा गौरांगमहाप्रभु के नाम से पूजते हैं। चैतन्य का प्रभाव बंगाल के अतिरिक्त बिहार एवं उड़ीसा में भी था। सगुणोपासना को चैतन्य के अतिरिक्त बल्लभ, तुलसी, सूर एवं मीरा ने भी अपनाया।

- **रैदासः** रैदास चमार जाति के थे। वे रामानंद के बारह शिष्यों में से एक थे। ये बनारस में मोची का काम करते थे। निर्गुण ब्रह्म के उपासक रैदास ने हिन्दू और मुसलमानों में कोई भी भेद नहीं माना। वे ईश्वर की एकता में विश्वास करते थे किन्तु उन्होंने अवतारवाद का खण्डन किया। उन्होंने 'रायदासी सम्प्रदाय' की स्थापना की।
- **दादू दयालः** अन्य सन्तों की तरह अन्ध विश्वास मूर्तिपूजा, जाति-पाति, तीर्थयात्रा आदि के विरोधी दादू ने आचरण एवं चरित्र की शुद्धता पर बल दिया। दादू द्वारा स्थापित 'दादूपंथी' एक भेदभाव मुक्त पंथ है। उनके समय में 'निपख' नाम आन्दोलन की शुरुआत की गई।
- **सुन्दरदासः** सुन्दरदास दादूदयालू के शिष्य, एक कवि और सन्त थे। उनका जन्म राजस्थान में बनिया परिवार में हुआ था। उनके विचार 'सुन्दर विलास' नामक पुस्तक में मिलते हैं।
- **वीरभानः** इनका जन्म पंजाब के नारनौल के समीप हुआ। उन्होंने सतनामियों के सम्प्रदाय की स्थापना की। सतनामियों की ध र्मपुस्तक का नाम 'पोथी' है। उन्होंने जातिवाद एवं मूर्तिपूजा का खण्डन किया।
- **बहिनाबाईः** बहिनाबाई महाराष्ट्र की एक महिला संत थी। वह तुकाराम को अपना गुरु मातनी थीं।

धार्मिक आन्दोलनों के मुख्य प्रणेता

- **रामानुज (11वीं शताब्दी):** विशिष्ट अद्वैतावाद के संस्थापक।
- **माधव (1199 से 1278 ई.):** एकेश्वरवाद में विश्वास।
- **रामानन्दः** रामानुजपंथ के अनुयायी।
- **दादू (1544 से 1603 ई.):** कबीर के शिष्य निर्गुण पंथ के सदस्य। दादूपंथी एवं निपख सम्प्रदाय के संस्थापक।
- **गुरु नाक (1469 से 1539 ई.):** सिख धर्म के संस्थापक।
- **चैतन्य (1486-1533 ई.):** गोंसाई संघ की स्थापना, संकीर्तन प्रथा का जन्म, अचिंत्य भेदाभेदवाद नाम दार्शनिक सिद्धान्त के प्रतिपादक।
- **बल्लभाचार्यः** बल्लभाचार्य ने कृष्णदेव राय के समय विजय नगर में वैष्णव सम्प्रदाय की नीव रखी। वे द्वैतवाद में विश्वास करते थे और श्रीनाथजी के रूप में उन्होंने कृष्ण भक्ति पर बल दिया। उनके महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थों में सुबोधिनी और सिद्धान्त रहस्य शामिल हैं। उनका अधिकतर समय काशी और वृंदावन में व्यतीत हुआ। इलाहाबाद में उन्होंने चैतन्य से भेंट की थी। भक्ति और प्रेम के प्रति उनका अत्यधिक झुकाव था इसी कारण उन्होंने रास-लीलाओं को अपना समर्थन दिया। इनका जन्म 1479 ई. में वाराणसी में हुआ। विष्णु स्वमी के रूद्र सम्प्रदाय का इनके व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन्होंने शुद्धाद्वैतवाद दर्शन दिया बल्लभाचार्य के अनुयायी अवटछाप नाम से विख्यात हुए।
- **रामानुजः** रामानुज का जन्म 1017 ई. में तिरुपति नामक स्थान पर हुआ था। माता का नाम कान्ति देवी तथा पिता का नाम असुरि केशव सोमथजी था। इनका बचपन का नाम लक्ष्मण था। इनका दार्शनिक मत विशिष्टाद्वैतवाद तथा सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय था। चोल शासक कुलोतुंग II से मतभेद के कारण रामानुज होयलस शासक विष्णुवर्धन के दरबार में चले गए और उसे वैष्णव सम्प्रदाय का अनुयायी बनाया।
- **रामानन्दः** रामानन्द का जन्म 1299 ई. में इलाहाबाद में हुआ था। ये रामघावानन्द के शिष्य थे। कृष्ण और राधा की भक्ति के स्थान पर इन्होंने राम और सीता की भक्ति को आरम्भ किया। रामानन्द को दक्षिण और उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन के बीच का सेतु कहा गया है। उनके शिष्यों में धन्ना (जाट), सेना (नाई), रैदास (चर्मकार), कबीर (जुलाहा), पीपा (राजपूत) आदि प्रमुख थे।
- **मीराबाईः** मीराबाई का जन्म 1498 ई. में मेड़ा (मेवाड़) जिले के कुदकी नामक ग्राम में हुआ था। वे सिसोदिया वंश की थी। इनका विवाह सिसोदिया वंश के राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ था। मीराबाई के ईष्टदेव श्रीकृष्ण थे।
- **सूरदासः** सूरदास का जन्म 1478 ई. में रूनकता नामक ग्राम में हुआ था। वे वल्लभाचार्य के शिष्य थे। सूरदास को पुष्टिमार्ग का जहज कहा जाता है। वे अष्टछाप के कवि थे। उन्होंने बृजभाषा में तीन ग्रन्थों की रचना की जो सूरसागर, सूरावली तथा साहित्य लहरी के नाम से जानी जाती हैं।
- **तुलसीदासः** तुलसीदास का जन्म 1523 ई. में बांदा जिले के राजापुर नामक ग्राम में हुआ था। वे मुगल शासक अकबर के समकालीन थे। उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप से स्वीकार करते हुए राम को ईश्वर का अवतार मानकर उनकी भक्ति पर विशेष बल दिया। तुलसीदास से अवधी भाषा में रामचरित उनकी भक्ति पर विशेष बल दिया। तुलसीदास ने अवधी भाषा में रामचरित मानस की रचना की। इसके अतिरिक्त उनके अन्य ग्रन्थों में-वैराग्य संदीपनी, पार्वतीमंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञाप्रश्न, दोहावली, कवितावली, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली तथा विनयपत्रिका आदि प्रमुख हैं।
- **ज्ञानेश्वर या ज्ञानदेव (1271-1296 ई.):** महाराष्ट्र के भक्ति आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में ज्ञानेश्वर का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने मराठी भाषा में भगवत गीता पर ज्ञानेश्वरी नामक टीका लिखी।
- **नामदेव (1270-1305 ई.):** नामदेव संत ज्ञानेश्वर के समकालीन थे। इनका जन्म एक दर्जी के परिवार में हुआ था। प्रारम्भ में ये डाकू थे। ये क्रान्तिकारी स्वभाव के थे। उनका मार्ग निर्गुण भक्ति का था। उन्होंने जाति व्यवस्था तथा छुआछूत का जोरदार खण्डन किया और ईश्वर की एकता पर बल दिया। उन्होंने मराठी भाषा के माध्यम से केवल महाराष्ट्र के सन्तों के लिए ही नहीं, बल्कि मराठों के राजनीतिक उन्नयन के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य किया। नामदेव ने दूर-दूर तक यात्रा की तथा दिल्ली में सूफी सन्तों से वाद-विवाद भी किया। नामदेव ने कहा था कि- ''एक पत्थर की पूजा होती है, तो दूसरे को पैरों तले रौंदा जाता है। यदि एक भगवान है, तो दूसरा भी भगवान है।''
- **एकनाथ (1533-99 ई.):** इनका जन्म पैठन (औरंगाबाद) में हुआ था। इन्होंने पहली बार ज्ञानेश्वरी का विश्वसनीय संस्करण

PERFECTION IAS

प्रकाशित करवाया। इन्होंने मराठी भाषा में 'भावार्थ रामायण' की रचना की।

- **तुकाराम (1598-1650 ई.):** तुकाराम शिवाजी के समकालीन थे। इनका जन्म 1608 ई. में पूना के निकट देही नामक परिवार में हुआ था। इन्होंने कभी दरबारी जीवन को स्वीकार नहीं किया। शिवाजी द्वारा दिए गए विपुल उपहारों की भेंट को इन्होंने लेने से इन्कार कर दिया। तुकाराम ने निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार किया तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया। इन्होंने बारकरी पंथ की स्थापना की।
- **रामदास (1608-1681 ई.):** इनका जन्म 1608 में हुआ था। इन्होंने 12 वर्षों तक पूरे भारत का भ्रमण किया तथा अन्त में कृष्णा नदी के तट पर चफाल के पास बस गए तथा वहीं पर इन्होंने एक मंदिर की स्थापना की। ये शिवाजी के आध्यात्मिक गुरु थे। इनकी महत्वपूर्ण रचना दासबोध है जिसमें इन्होंने समन्वयवादी सिद्धान्त के साथ-साथ विविध विज्ञानों एवं कलाओं के अपने विस्तृत ज्ञान को संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त हेमाद्रि, चक्रधर और रामनाथ आदि की गणना भी महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्तों में की जाती है।

अन्य प्रमुख सन्त

शंकरदेव (1449-1568 ई.): ये मध्यकालीन असम के महानतम धार्मिक सुधारक थे। इनका संदेश विष्णु या उनके अवतार कृष्ण के प्रति पूर्ण भक्ति पर केन्द्रित था। ऐकेश्वरवाद इनकी शिक्षा का केन्द्र था। इनके द्वारा स्थापित सम्प्रदाय एक शरण सम्प्रदाय के रूप में प्रसिद्ध है। शंकरदेव द्वारा स्थापित एकशरण सम्प्रदाय में भगवतपुराण या श्रीमद्भगवत को मंदिरों पर श्रद्धापूर्वक रखा जाता है। शंकरदेव एक मात्र ऐसे सन्त थे जो मूर्ति के रूप में कृष्ण की पूजा के विरोधी थे। इनके धर्म को सामान्यत: महापुरुषीय धर्म के रूप में जाना जाता है।

नरसी (नरसिंह) मेहता: नरसी मेहता 15वीं सदी के गुजरात के एक प्रसिद्ध सन्त थे। इन्होंने राधा और कृष्ण के प्रेम का चित्रण करने हेतु गुजराती में गीतों की रचना की। महात्मा गांधी के प्रिय भजन 'वैष्णन जन तो तेनों कहिए' के रचयिता नरसी मेहता थे।

PERFECTION IAS

5. स्वतन्त्र प्रान्तीय राज्य

जौनपुर

बनारस के उत्तर पश्चिम में स्थित जौनपुर राज्य की नींव फिरोजशाह तुगलक ने डाली थी। सम्भवत: इस राज्य को फिरोज ने अपने भाई जौना खां की स्मृति में बसाया था। यह नगर गोमती नदी के किनारे स्थापित किया गया था।

134 ई. में फिरोज तुगलक के पुत्र सुल्तान महमूद ने अपने वजीर ख्वाजा जहान को 'मलि-एस-शर्क' (पूर्व का स्वामी) की उपाधि प्रदान की। उसने दिल्ली पर हुए तैमूर के आक्रमण के कारण व्याप्त अस्थिरता का लाभ उठाकर स्वतन्त्र शर्की राजवंश की नींव डाली। इसने कभी उपाधिकारण नहीं की।

1399 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसके राज्य की सीमाएं कोल, सम्भल तथा रापरी तक फैली हुई थीं। उसने तिरहुत तथा दोआब के साथ-साथ बिहार पर भी प्रभुत्व स्थापित किया।

मलिक करनफूल मुबारकशाह (1399-1402 ई.) : ख्वाजा जहान के बाद उसका पुत्र (दत्तत) मुबारक शाह सुल्तान की उपाधि के साथ जौनपुर के राजसिंहासन पर बैठा। उसने अपने नाम से खुतबे भी पढ़वाये। उसके शासन काल में सुल्तान महमूद तुगलक के वजीर मल्लू-इकबाल खां ने जौनपुर पर आक्रमण किया, परन्तु इसका प्रयास असफल रहा। 1402 ई. में मुबारक शाह की मृत्यु हो गई।

इब्राहिमशाह शर्की (1402-1440 ई.): मुबारक शाह की मृत्यु के बाद 1402 ई. में इब्राहिम 'शम्सुद्दीन इब्राहिमशाह' की उपाधि से गद्दी पर बैठा। राजनैतिक उपलब्धि के क्षेत्र में शून्य रहते हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि से उसका समय काफी महत्वपूर्ण रहा। इसके समय में जौनपुर एक महान सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में उभरा। उसे स्थापत्य कला के क्षेत्र में जौनपुर व शर्की का जन्मदाता माना जाता है। लगभग 1440 ई. में इब्राहिम शाह की मृत्यु हो गई।

इसके समय में स्थापत्य कला की एक नवीन शैली जौनपुर अथवा शर्की का उद्भव एवं विकास हुआ।

महमूदशाह (1440-1457 ई.): इब्राहिम की मृत्यु के बाद जौनपुर की गद्दी पर उसका पुत्र महमूदशाह बैठा। उसने चुनार के किले को अपने अधिकार में किया, परन्तु कालपी किले एवं दिल्ली पर किये गये आक्रमण में बुरी तरह असफल हुआ।

मुहम्मदशाह शर्की (1457-1458 ई.): मुहम्मद शर्की महमूद शाह का पुत्र था। दिल्ली पर आक्रमण के दौरान वह बहलोल से पराजित हुआ। अमीरों से संघर्ष के दौरान उसका वध कर दिया गया और उसके छोटे भाई हुसनैशाह शर्की को सिंहासन पर बैठाया गया।

हुसैनशाह शर्की (1458-1485 ई.): मुहम्मद शर्की की हत्या के बाद उसका भाई हुसैनशाह शर्की 1457 ई. में गद्दी पर बैठा। उसने सत्ता प्राप्त करने के बाद बहलोलों से संधि कर ली। यह शर्की वंश का अंतिम सुल्तान था। इसके समय में दिल्ली और जौनपुर का संघर्ष अपने चरम पर पहुंच गया था। इसके काल में अन्तत: बहलोल लोदी ने जौनपुर पर 1483-84 ई. में अधिकार कर लिया।

लगभग 75 वर्ष तक स्वतन्त्र रहने के उपरान्त जौनपुर को सिकन्दर लोदी ने पुन: दिल्ली सल्तनत में मिला लिया। शर्की शासन के अन्तर्गत, विशेष कर इब्राहिमशाह के समय में जौनपुर में साहित्य एवं स्थापत्य कला के क्षेत्र में हुए विकास के कारण जौनपुर को 'भारत का सीराज' के नाम से जाना जाता था।

कश्मीर

सुहादेव नाम एक हिन्दू ने 1301 ई. में कश्मीर में हिन्दू राज्य की स्थापना की। सुहादेव के शासन काल में 1320 ई. में मंगोल नेता ने कश्मीर पर आक्रमण कर लूट-पाट की। 1320 ई. में ही तिब्बती सरदार रिनचन ने सुहादेव से कश्मीर को छीन लिया।

रिनचन ने शाहमीर नाम एक मुसलमान को अपने पुत्र एवं पत्नी की शिक्षा के लिए नियुक्त किया। रिनचन के बाद 1323 ई. में उदयनदेव सिंहासन पर बैठा, परन्तु 1338 ई. में उदयनदेव के मरने के बाद उसकी विधवा पत्नी कोटा ने शासन सत्ता अपने कब्जे में कर लिया। उचित अवसर प्राप्त कर शाहमीर ने कोटा को उसके अल्पायु बच्चों के साथ कैद कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया तथा 1339 ई. में शम्सुद्दीन शाह की उपाधि धारण कर कश्मीर का प्रथम मुस्लिम शासक बना। कालान्तर में शम्सुद्दीन शाह ने कोटा से विवाह कर इन्द्रकोट में शाहमीर राज्य की स्थापना की।

1342 ई. में शम्सुद्दीन की मृत्यु के उपरान्त उसका बड़ा पुत्र जमशेद सिंहासनारूढ़ हुआ जिसकी हत्या उसके भाई अलाउद्दीन ने करके सत्ता अपने कब्जे में कर ली। उसने लगभग 12 वर्ष तक शासन किया। उसने अपने शासन काल में राजधानी को इन्द्रकोट से हटाकर 'आलउद्दीनपुर' (श्रीनगर) में स्थापित किया। अलाउद्दीन के बाद उसका भाई शिहाबुद्दीन गद्दी पर बैठा, उसने लगभग 19 वर्ष तक शासन किया। यह शाहमीर वंश को वास्तविक संस्थापक माना जाता है। उसकी मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन सिंहासन पर बैठा। 1389 ई. में कुतुबुद्दीन की मृत्यु के बाद उसका लड़का गद्दी पर बैठा।

सुल्तान सिकन्दर: सिकन्दर के शासन काल 1398 ई. में तैमूर का आक्रमण भारत पर हुआ। सिकन्दर ने तैमूर के कश्मीर आक्रमण को असफल किया। धार्मिक दृष्टि से सिकन्दर असहिष्णु था। उसने अपने शासन काल में हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किया और सर्वाधिक ब्राह्मणों को सताया। उसने 'जजिया' कर लगाया। हिन्दू मंदिर एवं मूर्तियों को तोड़ने के कारण उसे 'बुतशिकन' भी कहा गया है। इतिहासकार जोन राज ने लिखा है कि ''सुल्तान अपने सुल्तान के कर्तव्यों को भूल गया और दिन-रात उसे मूर्तियों को नष्ट करने में आनन्द आने लगा। उसने मार्तण्ड, विश्य, इसाना, चक्रव्रत एवं त्रिपुरेश्वर की मूर्तियों को तोड़ दिया। ऐसा कोई शहर, नहर, गांव या जंगल शेष न रहा जहां 'तुरुष्क सूहा' (सिकन्दर) ने ईश्वर के मंदिर को न तोड़ा हो।'' 1413 ई. में सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त अलीशाह सिंहासन पर बैठा। उसके वजीर साहूभट्ट ने सिकन्दर की धार्मिक कट्टरता को आगे बढ़ाया।

जैनुल अबादीन: 1420 ई. में अलीशाह का भाई शाही खां जैन-उल-अबादीन' सिंहासन पर बैठा। उसे 'बुदशाह' व महान सुल्तान भी कहा जाता था। धार्मिक रूप से अबदीन सिकन्दर के विपरीत सहिष्णु था। इसी धार्मिक सहिष्णुता के कारण ही इसे 'कश्मीर का अकबर' कहा

गया। अपने शासन के दौरान इसने हिन्दुओं को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करते हुए टूटे हुए मंदिरों का पुनर्निर्माण, गायों की सुरक्षा, सती होने पर लगे प्रतिबन्ध को हटाने, शवदाह कर एवं जजिया कर हटाने के आदेश दिया। उसने मुसलमान बने हिन्दुओं को पुन: हिन्दू बनने एवं कश्मीर छोड़कर बाहर गये हिन्दुओं को पुन: कश्मीर में बसने का अधिकार दिया।

अबादीन फारसी, कश्मीरी, संस्कृत, तिब्बती आदि भाषाओं का ज्ञाता था उसने 'महाभारत' और 'राजतरंगिणी' कृतियों का फारसी भाषा में अनुवाद करवाया। अनेक विद्वान उसके दरबार में रहते थे। आबदीन ने वूलर झील में जैनालंका नामक एक कृत्रिम द्वीप का निर्माण करवाया। उसने समरकन्द में कागज बनाने का कार्य प्रारम्भ करवाया।

अबादीन ने अपने काल में अनेक जनप्रिय कार्य किया। अत: उसे कश्मीर का अकबर कहा जाता है। मूल्य नियंत्रण के कारण उसे कश्मीर का अलाउद्दीन खिलजी कहा जाता है।

1470 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। वह कश्मीरी, फारसी, अरबी, संस्कृति भाषाओं का विद्वान था। वह कुतुब उपनाम से फारसी में कविताएं लिखता था।

अबादीन के बाद हाजीखां 'हैदरशाह' की उपाधि से सिंहासन पर बैठा, पर उसके समय में कश्मीर में इस वंश का पतन हो गया।

1540 ई. में बाबर का रिश्तेदार मिर्जा हैदर दोगलत गद्दी पर बैठा। उसने नाजुकशाह की उपाधि धारण की।

1561 में कश्मीर में चक्कों का शासन हो गया, जिसका अन्त 1588 ई. में अकबर ने किया। इसके बाद कश्मीर मुगल साम्राज्य का अंग बन बया।

बंगाल

12वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में इख्तियारुद्दीन मुहम्मद बिन बख्तियार खलजी ने बंगाल को दिल्ली सल्तनत में मिलाया। बीच में बांगल के स्वतंत्र होने पर बलबन ने इसे पुन: सल्तनत के अधीन किया।

बलबन के उपरान्त उसके पुत्र बुगरा खां ने बंगाल को स्वतंत्र घोषित कर लिया। गयासुद्दीन तुगलक ने बंगाल को तीन भागों- 'लखनौती' (उत्तरी बंगाल), 'सोनारगांव' (पूर्वी बंगाल) तथा 'सतगांव' (दक्षिण बंगाल) में विभाजित किया।

मुहम्मद तुगलक के अन्तिम दिनों में फखरुद्दीन के विद्रोह के कारण बंगाल एक बार पुन: स्वतंत्र हो गया। 1345 ई. में हाजी इलियास बंगाल के विभाजन को समाप्त कर शम्सुद्दीन इलियास शाह के नाम से बंगाल का शासक बना।

इलियासशाह (1342-1357 ई.): अपने शासनकाल में इसने तिरहुत तथा उड़ीसा पर आक्रमण कर उसे बंगाल में मिला लिया। फिरोज तुगलक ने इलियासशाह के विरुद्ध अभियान किया किन्तु असफल रहा।

उसने सोनारगांव तथा लखनौती पर भी आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। 1357 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। इसकी मृत्यु के बाद सिकन्दरशाह शासक बना।

सिकन्दर शाह (1357-1398 ई.): इसके शासन काल में फिरोज तुगलक ने बंगाल पर आक्रमण किया किन्तु असफल रहा। उसने पांडुआ में 'अदीना मस्जिद' का निर्माण करवाया।

गयासुद्दीन आजमशाह (1389-1409 ई.): सिकन्दर शाह के बाद अगले शासक के रूप में गायासुद्दीन आजमशाह बंगाल का शासक बना। वह अपनी न्याय प्रियता के लिए प्रसिद्ध था। प्रसिद्ध फारसी कवि 'हाफिज शीराजी' एवं अनेक विद्वानों से उसका सम्पर्क था। उसने अपने समकालीन चीन के 'मिगवंश' के सुल्तान गयासुद्दीन से बौद्ध भिक्षुओं को चीन भेजने की प्रार्थना की थी। 1410 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

1410 ई. में गयासुद्दीन की हत्या के बाद उसके कमजोर उत्तराधिकारियों को उठाकर एक हिन्दू जमींदार रजा गणेश ने 1415 ई. में बंगाल की गद्दी पर अधिकार कर लिया। फारसी पांडुलिपियों में राजा गणेश को 'केस' नाम से जाना जाता है। उसने 'दनुजमर्दन' की उपाधि धारण की। 1418 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

इसी वर्ष पाण्डुआ और चटगांव से 'चण्डी के उपासक महेन्द्रदेव' नामक राजा द्वारा बंगला-अक्षरांकित सिक्के चलाये गये। सम्भवत: वह गणेश का छोटा बेटा था। राजा गणेश एक हिन्दू शासक था इसलिए वहां के सूफी सन्तों और उलेमाओं ने उसका विरोध किया था। इस अराजकता की स्थिति से निपटने के लिए गणेश के पुत्र जदुसेन को इस्लाम धर्म में दीक्षित कर जलालुद्दीन के नाम से बंगाल का शासक बनाया गया। 1431 ई. में जलालुद्दीन की मृत्यु हो गयी।

जलालुद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र शमसुद्दीन अहमद बंगाल की गद्दी पर बैठा। शमसुद्दीन के शासनकाल में जौनपुर के इब्राहीम शर्की ने बंगाल पर आक्रमण कर दिया। शमसुद्दीन ने 1442 ई. तक शासन किया।

नसीरुद्दीन अबुल मुजफ्फर महमूद (1442-1448 ई.): इसने बंगाल में इलियास शाही राजवंश की स्थापना की। इसने 1458 ई. तक शासन किया और गौड़ को अपनी राजधानी बनाया।

रूक्नुद्दीन बारबक शाह (1459-74 ई.): रुकनुद्दीन एक योग्य शासक था। इसने अपने शासनकाल में प्रसारवादी नीति अपनाई तथा राज्य की सीमाएं गंगा के उत्तर में बरनर तथा दक्षिण में जैस्सोर खुलना तक बढ़ाई। इस नीति में उसने अबीसीनियाई सैनिकों की सहायता प्राप्त की।

1794 ई. में अबीसीनिया के सेनापति सैफुद्दीन फिरोज ने बंगाल की सत्ता पर अधिकार कर लिया। रूक्नुद्दीन बारबक के समय में मालधर बसु ने श्रीकृष्ण विजय नामक ग्रन्थ लिखा। बारबक शाह ने मालधर बसु को गुणराज खान की उपाधि से सम्मानित किया।

अलाउद्दीन हुसैन (1493-1519 ई.): बंगाल के अमीरों ने 1493 ई. में मुस्लिम सुल्तानों में योग्य अलाउद्दीन हुसैन शाह को बंगाल की गद्दी पर बैठाया। उसने अपनी राजधानी को पांडुआ से गौड़ स्थानान्तरित किया।

हिन्दुओं को ऊंचे पदों जैसे-वजीर, मुख्य चिकित्सक, मुख्य अंगरक्षक एवं टकसाल के मुख्य अधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया। वह एक धर्म निरपेक्ष शासक था। चैतन्य महाप्रभु अलाउद्दीन के समकालीन थे। उसने 'सत्यपीर' नामक आन्दोलन की शुरुआत की।

उसके समय में बंगाली साहित्य काफी विकसित हुआ। दो विद्वान वैष्णव भाई रूप एवं सनातन उसके प्रमुख अधिकारी थे। अहोमों के सहयोग से सुल्तान ने कामताराजा को नष्ट किया।

हिन्दू लोक उसे कृष्ण का अवतार मानते थे। उसने 'नृपति तिलक' एवं 'जगतभूषण' आदि उपाधियां धारण की।

1518 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। इसके समय मालधर बसु ने ''श्रीकृष्ण विजय'' नामक ग्रन्थ की रचना की।

PERFECTION IAS

नुसरतशाह (1519-1532 ई.): अलाउद्दीन का पुत्र नसीब खां नासिरुद्दीन नुसरत शाह की उपाधि से सिंहासन पर बैठा। उसके समय में 'महाभारत' का बंगला भाषा में अनुवाद करवाया गया। उसने गौड़ में बड़ा सोना एवं कदम रसूल मस्जिद का निर्माण करवाया।

1533 ई. में नुसरतशाह की मृत्यु हो गई। इस वंश के अन्तिम शासक गयासुद्दीन महमूदशाह को 1538 ई. में शेरशाह ने बंगाल से भगाकर समस्त बंगाल पर अधिकार कर लिया।

मालवा

1310 ई. में अलाउद्दीन ने मालवा को अपने अधिकार में कर लिया। फिरोजशह तुगलक के समय में लगभग 1390 ई. में दिलावर खां मालवा का सूबेदार बनाया गया।

1401 ई. में मालवा को स्वतंत्र घोषित कर वह वहां का स्वाधीन शासन बना। उसने धार को अपनी राजधानी बनाया। उसने सुल्तान की उपाधि नहीं धारण की।

1405 ई. में दिलावर की मृत्यु एवं तैमूर के भारत से वापस चले जाने पर दिलावर का पुत्र 'अलप खां' होशंगशाह की उपाधि धारण कर 1405 ई. में मालवा का सुल्तान बना।

हुशंगशाह (1408-1435 ई.): हुशंगशाह ने अपनी राजधानी को धार से माण्डू को स्थानान्तरित किया। धर्मनिरपेक्ष नीति का पालन करते हुए उसने प्रशासन में अनेक राजपूतों को शामिल किया। नरदेव सोनी (जैन) हुसंगशाह के प्रशासन में खजांची था। उसके समय में 'ललितपुर मंदिर' का निर्माण किया।

हुशंगशाह महान विद्वान और रहस्यवादी सूफी सन्त शेख बुरहानुद्दीन का शिष्य था। 1435 ई. में अलप खां की मृत्यु के बाद उसका पुत्र गजनी खां मुहम्मदशाह की उपाधि धारण का गद्दी पर बैठा। उसकी अयोग्यता के कारण इसके वजीर महमूद खां ने उसे अपदस्थ कर 'महमूहदशाह' की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा।

महमूद खिलजी (1436-1468 ई.): महमूद खिलजी ने 1436 ई. में मालवा में खिलजी वंश की नींव डाली। महमूदशाह एक पराक्रमी शासक था।, उसने मेवाड़ के राणा कुम्भा के विरुद्ध अभियान में सफलता का दावा किया तथा मांडू में सात मंजिला विजय स्तम्भ का निर्माण करवाया।

दूसरी तरफ राणा कुम्भा ने अपनी विज़य का दावा करते हुए विजय की स्मृति में चित्तौड़ में विजय स्तम्भ का निर्माण करवाया। महमूदशाह ने मांडू में सात मंजिलों वाले महल का निर्माण करवाया। निःसन्देह महमूद खिलजी मालवा के मुस्लिम शासकों में सबसे अधिक योग्य था। मिश्र के खलीफा ने उसके पद को स्वीकार किया।

महमूद खिलजी ने सुल्तान अबू सईद के यहां से आये एक दूतमंडल का स्वागत किया। फरिश्ता उसके गुणों की प्रशंसा करते हुए उसे न्यायी एवं प्रजाप्रिय सम्राट बताता है। कोई भी ऐसा वर्ष नहीं बीतता था। जिसमें वह युद्ध नहीं करता रहा हो। फलस्वरूप उसका खेमा उसका घर बन गया तथा युद्ध क्षेत्र उसका विश्राम स्थल। उसने व्यापार वाणिज्य के उन्नति के लिए जैन पूंजीपतियों को सरंक्षण दिया।

माण्डू में एक चिकित्सालय तथा एक आवसीय विद्यालय बनवाया। उसने अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार दक्षिण में सतपुड़ा, पश्चिम में गुजरात की सीमाओं, पूरब में बुंदेलखण्ड और उत्तर में मेवाड़ एवं बूंदी तक विस्तृत किया। 1469 में महमूदशाह की मृत्यु हो गयी।

गयासुद्दीन (1469-1500 ई.): 1469 ई. में महमूदशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र गयासुद्दीन गद्दी पर बैठा। 1500 ई. के लगभग गयासुद्दीन को उसके पुत्र ने जहर देकर मार दिया।

अब्दुल कादिर नासिरुद्दीनशाह (1500-1510 ई.): गयासुद्दीन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अब्दुल कादिर नासिरुद्दीन की उपाधि धारण कर मालवा की गद्दी पर बैठा। बुखार के कारण 1512 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

उसकी मृत्यु के बाद इस वंश का अन्तिम शासक आजम हुमायूं, महमूदशाह द्वितीय की उपाधि ग्रहण कर सिंहासन पर बैठा। उसने अमीरों के षडयंत्र से बचने के लिए चन्देरी के राजपूत शासक मेदनी राय को अपना वजीर नियुक्त किया।

गुजरात के बहादुरशाह ने महमूदशाह द्वितीय को युद्ध में परास्त कर उसकी हत्या कर दी। इसी के साथ 1531 ई. में मालवा का गुजरात में विलय हो गया। अन्तिम रूप में मालवा को मुगलों ने बाजबहादुर से जीत लिया।

गुजरात

गुराजत के शासक राजा कर्ण (रायकरन) को पराजित कर अलाउद्दीन ने 1297 ई. में इसे दिल्ली-सल्तनत के अन्तर्गत कर लिया।

1391 ई. में मुहम्मदशाह तुगलक द्वारा नियुक्त गुजरात के सूबेदार जफर खां ने दिल्ली सल्तनत के तुगलकवंशी शासकों की कमजोरी का फायदा उठाकर 1401 ई. में दिल्ली सल्तनत की अधीनता को त्याग दिया। जफर खां 'सुल्तान मुजफ्फर शाह' की उपाधि ग्रहण कर 1407 ई. में गुजरात का स्वतंत्र सुल्तान बना। उसने मालवा के राजा हुशंगशाह को पराजित कर उसकी राजधानी धारा को अपने कब्जे मे कर लिया। 1411 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

अहमदशाह (1411-1443 ई.): तातारखां का पुत्र अहमद 'अहमदशाह' की पदवी ग्रहण कर सिंहासन पर बैठा। उसे गुजरात के स्वतंत्र राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। वह बड़ा ही पराक्रमी एवं योग्य शासक था। उसने अपने शासन काल में मालवा, असीरगढ़ एवं राजपूताना के अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त की थी।

अहमदशाह ने असाबल के समीप अहमदनगर नामक नगर की स्थापना की। कालान्तर में उसने अपनी राजधानी को पटना से अहमदनगर स्थानान्तरित किया। 1443 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसने गुजरात में प्रथम बार हिन्दुओं पर जजियां कर लगाया।

प्रशासन के पदों पर दासों की बड़ी मात्रा में नियुक्ति की। अहमदशाह के काल में मिश्र के प्रसिद्ध विद्वान बद्रुहीन दामामीनी ने गुजरात की यात्रा की थी। अहमद की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मुहम्मद शाह द्वितीय गद्दी पर बैठा। 1451 ई. में मुहम्मद की मृत्यु हो गई। लोग मुहम्मदशाह II को उसकी दानी प्रवृत्ति के कारण जरबख्श अर्थात् स्वर्णदान करने वाला कहते थे।

अपने मृदुल स्वभाव के कारण उसने करीम या दयालु की उपाधि प्राप्त की। फलस्वरूप इसी वर्ष कुतुबुद्दीन अहमद सिंहासन पर बैठा। उसने 1458 ई. तक शासन किया।

कुतुबुद्दीन के बाद फतह खां 'अबुल-फतह महमूद' की उपाधि ग्रहण कर गुजरात का सुल्तान बना। इतिहास में उसका नाम महमूद बेगड़ा के नाम से उल्लिखित है।

PERFECTION IAS

सुल्तान महमूद बेगड़ा (1458-1511 ई.): महमूद को 'बेगड़ा' की उपाधि गिरिनार व जूनागढ़ तथा चम्पानेर के किलों को जीतने क बाद मिली। वह अपने वंश का सर्वाधिक प्रतापी शासक था। उसने गिरिनार के समीप 'मुस्तफाबाद' की स्थापना कर उसे अपनी राजधानी बनाया।

चम्पानेर के समीप बेगड़ा ने महमूदाबाद की स्थापना की। वह धार्मिक रूप से असहिष्णु था। बेगड़ा ने गुजरात के समुद्र तटों पर बढ़ रहे पुर्तगाली प्रभाव को कम करने के लिए मिश्र के शासक से नौ-सेना की सहायता लेकर पुर्तगालियों से संघर्ष किया परन्तु महमूद के विषय में अनेक रोचक जानकारी उपलब्ध करायी है।

अपने शासन काल के अंतिम वर्षों में उसने द्वारिका पर विजय प्राप्त की। 23 नवम्बर, 1511 को इसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र खलील खां मुजफ्फर शाह द्वितीय की पदवी ग्रहण कर सिंहासन पर बैठा। उसका मुख्य संघर्ष मेवाड़ के राणा सांगा से हुआ। उसने मेदनीराय के खिलाफ मालवा के शासक महमूद खिलजी की सहायता की थी। अप्रैल, 1526 ई. में उसकी मृत्यु के बाद बहादुर शाह (1526 से 1537 ई.) गुजरात के सिंहासन पर बैठा।

1531 ई. में उसने मालवा को जीतकर गुजरात में मिला लिया। इसे उसकी महान सैनिक उपलब्धि में गिना जाता था। 1534 ई. में उसके द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण किया गया। 1535 ई. में मुगल शासक हुमायूं ने उसे बुरी तरह पराजित कर गुजरात से बाहर खदेड़ दिया। परन्तु हुमायूं के वापस होने पर बहादुर शाह ने पुनः गुजरात पर अधिकार कर लिया। 1537 ई. में बहादुर शाह की हत्या पुर्तगालियों द्वारा कर दी गई। 1572-73 ई. में अकबर ने गुजरात को मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

मेवाड़

अलाउद्दीन खिलजी ने 1303 ई. में मेवाड़ के गुहिलौत राजवंश के शासक रतनसिंह को पराजित कर मेवाड़ को दिल्ली सल्तनत में मिलाया। गुहिलौत वंश की एक शाखा 'सिसोदिया वंश' के हम्मीरदेव ने मुहम्मद तुगलक के समय में चित्तौड़ को जीत कर पूरे मेवाड़ को स्वतंत्र करा लिया।

1378 ई. में हम्मीरदेव की मृत्यु के बाद उसका पुत्र लक्खासिंह 1405 ई. में हम्मीरदेव की मृत्यु के बाद उसका पुत्र क्षेत्रसिंह (1378-1407 ई.) मेवाड़ की गद्दी पर बैठा। क्षेत्रसिंह के बाद 1418 ई. में इसका पुत्र मोकल राजा हुआ। मोकल ने कविराज बानी विलास और योगेश्वर नामक विद्वानों को आश्रय दिया। उसके शासनकाल में माना, फन्ना और विशाल नामक प्रसिद्ध शिल्पकार आश्रय पाये हुये थे।

मोकल ने अनेक मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया तथा एकलिंग मंदिर के चारों तरफ परकोटे का भी निर्माण कराया। उसकी गुजरात शासक के विरुद्ध किये गये अभियान के समय हत्या कर दी गयी।

1431 ई. में उसकी मृत्यु के बाद राणा कुम्भा मेवाड़ के राज सिंहासन पर बैठा।

राणा कुम्भाः कुम्भकरण व राणा कुम्भा के शासन काल में उसका एक रिश्तेदार रानमल काफी शक्तिशाली हो गया। रानमल से ईर्ष्या करने वाले कुछ राजपूत सरदारों ने उसकी हत्या कर दी।

राणा कुम्भा ने अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी मालवा के शासक हुसंगशाह को परास्त कर 1418 ई. में चितौड़ में एक 'कीर्ति स्तम्भ' की स्थापना की।

स्थापत्य कला के क्षेत्र में उसकी अन्य उपलब्धियों में मेवाड़ में निर्मित 84 किलों में से 32 किले हैं जिसे राणा कुम्भा ने बनवाया था। मध्य युग के शासकों में राणा कुम्भा एक महान् शासक था। वह स्वयं विद्वान तथा वेद, स्मृति, मीमांसा, उपनिषद, व्याकरण, राजनीति और साहित्य का ज्ञाता था।

उसने चार स्थानीय भाषाओं में चार नाटकों की रचना की तथा जयदेवकृत 'गीतगोविन्द' पर रसिक प्रिया नामक टीका लिखा। उसने कुम्भलगढ़ के नवीन नगर और किले में अनेक शानदार इमारतें बनवायी। उसने अन्नी और महेश को अपने दरबार में संरक्षण दिया था। जिन्होंने प्रसिद्ध विजय स्तम्भ की रचना की थी। उसने बसन्तपुर नामक स्थान को पुनः आबाद किया।

1473 ई. में उसकी हत्या उसके पुत्र उदय ने कर दी। राजपूत सरदारों के विरोध के कारण उदय अधिक दिनों तक सत्ता-सुख नहीं भोग सका। उदय के बाद उसका छोटा भाई राजमल (1473 से 1509 ई.) गद्दी पर बैठा। 36 वर्ष के सफल शासन काल के बाद 1509 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र राणा संग्राम सिंह या राणा सांगा (1509 से 1528 ई.) मेवाड़ की गद्दी पर बैठा।

उसने अपने शासन काल में दिल्ली, मालवा, गुजरात के विरुद्ध अभियान किया।

1527 ई. में खानवा के युद्ध में वह मुगल बादशाह बाबर द्वारा पराजित कर दिया गया। इसके बाद शक्तिशाली शासन के अभाव में जहांगीर ने इसे मुगल साम्राज्य के अधीन कर लिया। मेवाड़ की स्थापना राठौरवंशी शासक चुन्द ने की थी। जोधपुर की स्थापना चुन्द के पुत्र जोधा ने की थी।

उड़ीसा

मुगल शासकों द्वारा उड़ीसा पर अधिकार करने से पूर्व वहां अनेक क्षेत्रीय राजवंशों का शासन था। यह राज्य गंगा के डेल्टा से लेकर गोदावरी के मुहाने तक फैला था। उड़ीसा को अवन्तिवर्मन चोड्गंग ने एक शक्तिशाली राज्य के रूप में संगठित किया था। अविनितवर्मन ने 1076 से 1148 ई. तक लगभग 70 वर्ष तक शासन किया। उड़ीसा पर तीन राजवंशों का शासन रहा-

(i) पूर्वी गंग वंश,
(ii) सूर्यवंशी गजपति वंश और
(iii) भोई वंश।

पूर्वी गंग वंशः इस वंश में कुल 8 शासक हुए जो इस प्रकार हैं-

(i) अनंतवर्मन चोड्गंग (1076-1148 ई.),
(ii) राजराज III (1197-1211 ई.),
(iii) अनंगभीम III (1211-1238 ई.),
(iv) नरसिंहम् I (1238-1264 ई.),
(v) नरसिंह II,
(vi) भानुदेव II,
(vii) भानुदेव III, (1352-78 ई.) और
(viii) भानुदेव IV (1414-35 ई.)

अनंतवर्मन चोड्गंग (1076-1148 ई.): अनंतवर्मन ने लगभग 70 वर्ष तक शासन किया। उसने एक शक्तिशाली राज्य के रूप में उड़ीसा का संगठन किया। उसने पुरी में जगन्नाथ मंदिर

PERFECTION IAS

तथा भुवनेश्वर में लिंगराज मंदिर का निर्माण करवाया। अपने शासन काल में उसने संस्कृत और तेलगू साहित्य को संरक्षण प्रदान किया।

राजराज III: इसके शासन काल में बख्तियार खलजी के दो भाइयों मोहम्मद और अहमद के नेतृत्व में उड़ीसा पर आक्रमण किया गया।

अनंगभीम III (1211-1264 ई.): चाटेश्वर अभिलेख से प्राप्त जानकारी के अनुसार अनंगभीम ने गयासुद्दीन एवज को पराजित किया था।

भानुदेव II: इसने अपने शासन काल में मुहम्मद तुगलक के आक्रमण का सामना किया।

भनुदेव III (1352-1378 ई.): इसके शासनकाल में फिरोज तुगलक ने उड़ीसा पर आक्रमण किया था। इसी के काल में जगन्नाथ मंदिर का विध्वंस किया गया था।

भानुदेव IV (1414-1435 ई.): भानुदेव IV पूर्वी गंग वंश का अंतिम शासक था।

सूर्यवंशी गजपति वंश

पूर्वी गंगवंश के बाद उड़ीसा में सूर्यवंशी गजपति वंश का शासन आरम्भ हुआ। इस वंश के शासकों में

1. कपिलेन्द्र 1436-67 ई.,
2. पुरुषोत्तम (1467-97 ई.) और
3. प्रतापरुद्र (1497-1540 ई.) प्रमुख हैं।

कपिलेन्द्र (1435-67 ई.): इसने गजपति वंश की स्थापना की तथा उड़ीसा की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। कपिलेन्द्र ने बीदर के बहमनी शासकों तथा विजयनगर के शाकों से अनेक युद्ध किए। उसका राज्य गंगा से कावेरी तक फैला हुआ था। इसने बंगाल के शासक नासिरुद्दीन को हरा का गोड़ेश्वर की उपाधि धारण की।

पुरुषोत्तम (1467-97 ई.): इसका शासन काल पराभव का काल था। इसके शासन काल के दौरान गोदावरी के दक्षिण का आधार भाग उसके राज्य से पृथक् हो गया।

प्रतापरूद्र (1497-1540 ई.): यह उड़ीसा का अन्तिम शक्तिशाली हिन्दू शासक था। इसके शासन काल में राज्य पर विजयनगर के कृष्णदेवराय तथा गोलकुण्डा के कुतुबशाही राज्य ने आक्रमण करके बहुत सा हिस्सा हथिया लिया था।

भोई वंश: गजपति वंश के बाद उड़ीसा पर भोई वंश का शासन स्थापित हुआ। इस वंश की स्थापना गोविन्द विद्यासागर ने की थी। भोई वंश ने उड़ीसा पर 1539 ई. तक राज्य किया। इस वंश का अन्त कर मुकुन्द हरिचन्दन ने नये राजवंश की स्थापना की। अन्ततः 1586 में बंगाल के सुल्तान ने उड़ीसा को जीकर अपने राज्य में मिला लिया।

कामरूप

कामरूप उस कामत राज्य के नाम से प्रसिद्ध था। वह पूर्व में अहोमों तथा पश्चिम में बंगाल के सुल्तानों द्वारा घिरा हुआ था। 13वीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों मे ब्रह्मपुत्र की घाटी में अनेक स्वतंत्र राज्य थे, जिनमें कामरूप सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। 15वीं शताब्दी में खेन लोगों ने कामरूप पर अपना अधिकार कर लिया। उसने कूचबिहार के दक्षिण में कुछ मील की दूरी पर स्थित कामतपुर को अपनी राजधानी बनाया।

सिंधुराज (1260-85 ई.): कामरूप पर अहोम की सैनिक गतिविधियों का हमेशा प्रभाव रहा। अहोम राजा सुखांग्फा ने सिंधुराज को पराजित कर उसे अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

प्रतापध्वज (1300-50 ई.): प्रतापध्वज ने कूटनीति के द्वारा अहोमों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया।

दुर्लभ नारायण (1305-50 ई.): इसने भी आहोमों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया।

अरिमत्ता (1365-85 ई.): यह राय पृथु वंश का अंतिम शासक था। भुयान सरदारों के खेन वंश ने इसकी मृत्यु के बाद राय वंश को उखाड़ फेंका।

नीलध्वज (1440-1460 ई.): यह खेन वंश का सर्वाधिक योग्य शासक था। नीलाम्बर खेन वंश का अंतिम शासक था। 1498 ई. में बंगाल के अलाउद्दीन हुसैनशाह ने नीलाम्बर को पराजित कर स्वयं शासक बन गया। इसके साथ ही खेन वंश समाप्त हो गया।

1498 ई. बाद कामरूप में कोई योगय शासक नहीं हुआ। 1515 ई. में विषम सिंह कामरूप का शासक बना। वह कूच जाति का था। कूच जाति के महानतम शासक नारायण थे, जिनके शासन काल में राज्य में सुख और समृद्धि का विकास हुआ। इसी काल में शासक और सामन्तों के बीच युद्ध छिड़ जाने के कारण राज्य का दो भागों में विभाजन हो गया-

(i) कूचबिहार और
(ii) कूच हाजों

विभाजन के बाद राज्य में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी जिसका फायदा अहोमों और मुसलमानों ने उठाया। 1639 ई. में कामरूप के पश्चिमी भाग पर मुसलमानों तथा पूर्वी भाग पर अहोमों का अधिकार हो गया। इन लोगों ने छः सौ वर्षों तक असम में शासन किया।

प्रान्तीय शैलियां का स्थापत्य कला में योगदान

जौनपुर

शर्की वंश के लगभग सौ वर्ष शासन काल में यहां पर बहुत सी इमारतों जैसे महल, मस्जिद, मकबरों आदि का निर्माण किया गया। शर्की सुल्तानों द्वारा निर्मित इमारतों में हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्य कला का सुन्दर मिश्रण दिखाई पड़ता है। शर्की सुल्तानों को निर्माण कार्य अपनी बड़ी-बड़ी ढलुवां एवं तिरछी दीवारों, वर्गाकार स्तम्भों, छोटी गैलरियों एवं कोठरियों के कारण काफी प्रसिद्ध हैं।

डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने शर्की शासकों के निर्माण कार्यों की प्रशंसा करते हुए लिख है कि 'जौनपुर के सम्राट कला और विद्या के महान संरक्षक थे, जिन भवनों का निर्माण इन शासकों ने कराया है, वे उनकी स्थापत्य कला की अभिरुचि के प्रमाण हैं, ये भवन सुदृढ, प्रभावायुक्त तथा सुन्दर हैं। इनमें हिन्दू-मुस्लिम निर्माण कला शैली के विचारों का वास्तविक एवं प्रारम्भिक समन्वय है।' शर्की सुल्तानों के कुछ महत्वपूर्ण निर्माण कार्य निम्नलिखित हैं।

अटालादेवी की मस्जिद: शर्की सुल्तान इब्राहिम शाह द्वारा निर्मित यह सुन्दर मस्जिद लगभग 1408 ई. में बन कर तैयार हुई। सम्भवतः इस मस्जिद को कन्नौज के राजा विजयचन्द्र द्वारा निर्मित अटाला देवी के मंदिर को तोड़कर बनाया गया। इतिहासकार फर्ग्युसन ने

PERFECTION IAS

मस्जिद के बारे में कहा कि यह अत्यधिक सुसज्जित एवं सुन्दर कृति है। मस्जिद के बारे में स्मिथ का कहना है कि अटाला मस्जिद के प्रवेश मार्ग तथा बड़े कमरे पूर्णत: मुस्लिम शैली के हैं, जिनमें ज्योतिर्मय मेहराबों तथा गुम्बदो का प्रयोग दर्शनीय है, जो प्राय: हिन्दू देवालयों से लिए गये हैं और जिनका निर्माण हिन्दू शैली में हैं।

जामा मस्जिद: इस महत्वपूर्ण मस्जिद का निर्माण 1470 ई. में हुसैनशाह शर्की द्वारा करवाया गया।

जामा मस्जिद बड़ी मस्जिद के नाम से भी जानी जाती है। इस मस्जिद में बने मेहराबों में बीम या लिंटर का प्रयोग तुगलक शैली में किया गया है। मस्जिद में लगी जालियों से घिरी गैलरी की बनावट जौनपुर शैली की महत्वपूर्ण विशेषता है।

मस्जिद से लगे अहाते में हुसैनशाह एवं उसके परिवार के लोगों की कब्रें स्थिति हैं। मस्जिद से लगे फव्वारों मे हिन्दू शैली का प्रभाव दिखता है। सम्भवत: इस मस्जिद का निर्माण भी किसी हिन्दू मंदिर के ध्वंसावशेष पर किया गया है।

हावेल महोदय ने कहा है कि अटाला मस्जिद और जामी मस्जिद दोनों ही श्रेष्ठ इमारतें हिन्दू शैली को स्पष्ट करती हैं। यद्यपि बाहरी मेहराब का मध्य प्रसार पीपल के पत्ते की बनावट की भांति नहीं हैं।

झंझीरी मस्जिद: 1430 ई. में इब्राहिम शर्की द्वारा निर्मित यह मस्जिद अब खण्डर अवस्था में है। इसके खण्डहर में आगे एवं बीच का बड़ा प्रवेश द्वारा ही नाम से जाना जाता है।

मार्शल ने इस मस्जिद के विषय मे कहा कि 'यह छोटा पर अटाला मस्जिद का ही दुर्बल संस्करण है'।

स्पष्ट है कि शर्की की स्थापत्य कला में हिन्दू और इस्लामी शैलियों का अच्छा समन्वय है। विशाल ढलवा दीवारें, वर्गाकार स्तंभ, छोटे बरामदे और छायादार रास्ते हिन्दू कारीगरों द्वारा निर्मित होने के कारण स्पष्टत: हिन्दू विशेषताएं हैं।

मीनारों का अभाव इस कला की मुख्य विशेषता है। ये मस्जिदें ध्वस्त हिंदू स्थलों पर बनायी गयी हैं। इनकी रचना शैली मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा बनवायी गयी बेगमपुरी मस्जिद (जामा मस्जिद) से बहुत अधिक प्रभावित हैं।

बंगाल

बंगाल शैली के अन्तर्गत निर्मित अधिकांश इमारतों मे पत्थर के स्थान पर ईंट का प्रयोग किया गया है। बंगाली स्थापत्य कला की महत्वपूर्ण विशेषता थी-

1. छोटे-छोटे खम्भों पर नुकीली मेहराबें।
2. बांस की इमारतों से ली गयी हिन्दू मन्दिरों की लहरियेदार कार्निसों की परम्परागत शैली का मुसलमानों द्वारा अनुकरण।
3. कमल जैसे सुन्दर खुदाई के हिन्दू सजावट के प्रतीक चिह्नों को अपनाना।

महत्वपूर्ण इमारतें गौड़ लखनौती, पाण्डुआ एवं त्रिवेनी में पायी गई हैं।

पाण्डुआ की अदीना मस्जिद: इस मस्जिद का निर्माण 1364 ई. में सुल्तान सिकन्दरशाह ने करवाया। इस मस्जिद के नमाज अदा करने वाले भवन का मुख्य कक्ष सर्वाधिक अलंकृत हैं।

मस्जिद की पिछली दीवार और उत्तर हाल से सटे वर्गाकार कक्ष में सुल्तान सिकन्दर शाह की कब्र है। इस बंगाल की मस्जिद को संसार के आश्चयों में गिना जाता है। इस विशाल मस्जिद में हजारों लोगा एक साथ नमाज पढ़ सकते थे।

जलालुद्दीन मुहम्मद शाह का मकबरा: पाण्डुआ में स्थित इस मकबरे को 'लक्खी मकबरे' के नाम से भी जाना जाता है। हिन्दू भवनों की ईंटों से निर्मित यह मकबरा एक गुम्बद की वर्गाकार इमारत है। इसमें मेहराब और धरन का बखूबी इस्तेमाल किया गया है।

दाखिल दरवाजा: गौड़ में स्थित यह दरवाजा भारतीय इस्लामी शैली के अन्तर्गत ईंट-से निर्मित इमारतों में सर्वोत्कृष्ट माना जताा है। इसका निर्माण 1465 ई. में हुआ।

गौड़ में स्थित फिरोज मीनार जिसमें बंगाली शैली के अन्तर्गत नुकीली छत का प्रयोग किया गया है, 5 मंजिलों की 84 फीट ऊंची मीनार है। कुछ अन्य निर्माण कार्य इस प्रकार हैं- गौड़ स्थिति 'छोटा सोना मस्जिद (1510 ई.) गौड़ की 'तान्तीपुरा मस्जिद' (1475 ई.) बड़ा सोना मस्जिद (1526 ई.) लोटन मस्जिद (1480 ई.) दरसवारी मस्जिद (1480 ई.) कदम रसूल मस्जिद, 'चक्कट्टी मस्जिद' आदि।

छोटा सोना मस्जिद, एवं कमद रसूल मस्जिद का निर्माण कार्य नुसरत शाह द्वारा पूरा करवाया गया। चूंकि बंगाल में पत्थर का अभाव था, इसलिए यहां की अधिकांश इमारतों का निर्माण ईंटों से किया गया। यही कारण था कि इन इमारतों की आयु बहुत कम रही।

मालवा

मालवा पर मुस्लिम शासकों के अधिकार के बाद एक महत्वपूर्ण स्थापत्य शैली का जन्म हुआ, जो दिल्ली वास्तुकला से प्रेरित थी। यहां पर निर्मित इमारतों में दिल्ली के कारीगरों का उपयोग किया गया था। मालवा वास्तुकला शैली मे उनकी ढालदार दीवारों, नुकीले मेहराब, मेहराबों में लिंटर व तोड़ों का प्रयोग (तुगलक परम्परा), गुम्बद व पिरामिड के आकार की छत (लोदी शैली से प्रभावित), ऊंची चौकियों पर निर्मित इमारतें एवं उनके प्रवेश द्वार तक पहुंचने के लिए बनाई गई सीढ़ियों की साज-सज्जा में रंगों के प्रयोग की बहुलता आदि इसकी विषेशता हैं।

रंग-बिरगें पत्थर, संगमरमर एवं टाइलों के प्रयोग से यहां की इमारतें का केन्द्र बिन्दु मांडू एवं धार है। मार्शल शैली के अन्तर्गत निर्मित अधिकांश इमारतों वास्तव में जानदार एवं उद्देश्यपूर्ण हैं और जिन इमारतों से उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की है, उन्हीं की तरह रचनात्मक प्रतिभा से परिपूर्ण हैं। उनकी अपनी मौलिकता के कारण उनकी रचना और सजावट की अपनी विशेषता, उनके विभिन्न अंगों का सुन्दर अनुपात अथवा अन्य बारीक काम हैं, जिनका निरूपण करना लाट मस्जिद, दिलावर खां मस्जिद एवं मलिक मुगीस मस्जिद आदि कुछ ऐसे निर्माण-कार्य हैं जिनका हिन्दू प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कमाल मौला मस्जिद का निर्माण धार में 1405 ई. में किया। गया।

दिलावर खां मस्जिद का निर्माण मांडू में 1405 ई. में किया गया। मलिक मुगीस की मस्जिद का निर्माण मांडू में 1405 ई. में किया गया। मलिक मुगीस की मस्जिद का निर्माण मांडू में 1442 ई. में किया गया। 150 फुट लम्बी एवं 132 फुट चौड़ी यह मस्जिद एक ऊंचे चबूतरे पर बनाई गई। इस मस्जिद के विषय में पर्सी ब्राउन का कहना है कि 'यह प्रमुख मस्जिद इस युग की भव्य एवं अपने आकार की अद्भुत है'।

मांडू का किला: हुशंगशाह द्वारा निर्मित मांडू के किले की सर्वाधिक आकर्षक इमारत जार्मी एवं अशरफी महल है। जार्मी मस्जिद

PERFECTION IAS

का निर्माण कार्य 1454 ई. में हुशंगशाह द्वारा प्रारंभ किया गया। किन्तु इसको पूरा कराने का श्रेय महमूद ई. में हुशंगशाह द्वारा प्रारंभ किया गया किन्तु इसको पूरा कराने का श्रेय महमूद खिलजी को है। अशरफी महल का निर्माण 1439-1469 ई. के मध्य महमूद खिलजी द्वारा किया। गया।

किले में प्रवेश के लिए बनाया गया द्वारा मेहराबदार है जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण दिल्ली दरवाजा है। वर्गाकार आकार में बनी मस्जिद की एक भुजा 288 फुट की है। मस्जिद के सामने निर्मित अशरफी महल का निर्माण 1439-69 ई. के मध्य खिलजी ने कराया था। अशरफी महल में निर्मित कई इमारतों में हुशंगशाह द्वारा निर्मित एक मदरसा भी है।

जामा मस्जिद: इसका निर्माण सुल्तान महमूद प्रथम ने किया था। यह एक विशालकाय मस्जिद है।

बाज बहादुर एवं रूपमती का महल: इस इमारत का निर्माण सुल्तान नासिरुद्दीन शाह द्वारा 1508-1509 ई. में करवाया गया। यह महल पहाड़ी के ऊपर निर्मित है। इसमें कलात्मकता का अभाव है, दूसरी ओर रूपमती का महल पहाड़ी के दक्षिणी किनारे पर स्थित है। इस महल की छत पर बांसुरीदार गुम्बदों से युक्त खुले मण्डपों का निर्माण रूपमती के निरीक्षण में हुआ था।

हुशंगाबाद का मकबरा: जामा मस्जिद के पीछे बने हुशंगशाह के मकबरे का निर्माण कार्य 1440 ई. में महमूद प्रथम ने पूर्ण कराया। मकबरे के मेहराबदार प्रवेश मार्ग के दोनों तरफ छोटी-छोटी जालीदार पर्देवाली खिड़कियां बनी हैं। मकबरे के ऊपर भद्दा एवं निर्जीव गुम्बद बना है।

हिंडोला महल: 'रबार हाल' के नाम से भी जाना वाला यह महल 1425 ई. में 'हुशंगशाह' द्वारा बनवाया गया। पर्सी ब्राउन ने उसकी प्रशंसा में कहा है कि 'भारत की कुछ इमारतें इस आश्यर्चजनक इमारत से अधिक सुन्दर व रचना मे अधिक ठोस लगती है। इमारत का आकार अंग्रेजी के अक्षर I के समान है जिसमें नीचे के भाग में मुख्य हाल है एवं दो मंजिले कमरों की कतार उसकी ऊपर की काटने वाली रेखा है।' अपने बारीक एवं स्वच्छ निर्माण के कारण यह महल अत्यधिक आकर्षक लगता है।

जहाज महल: गयासुद्दीन खिलजी के समय में निर्मित यह महल मांडू में स्थित है। यह महल कपूर तालाब एवं मुंजे तालाब के मध्य में स्थित है। तालाब के जल में यह महल जहाज की तरह दिखाई देता है। यह जहाज महल अपनी मेहराबी दीवारों, छाये हुए मण्डपों एवं सुन्दर तालाबों के कारण मांडू की आकर्षक इमारतों में स्थान रखता है।

डॉ. राधार कुमुद मुखर्जी ने जहाज महल एवं हिंडोला महल की प्रशंसा में लिखा है कि मांडू के हिंडोला महल एवं जहाज महल मध्ययुगीन भारतीय वास्तुकला के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। इनमें इस्लामी प्रभावजन्य संरचनात्मक आधार की भव्यता व अति विशालता तथा हिन्दू अलंकरण मोटिफों की सुन्दरता, परिष्कृति व सुक्ष्मता का विवेकपूर्ण समन्वय है।'

कुशल महल: महमूद खिलजी प्रथम द्वारा 1445 ई. में निर्मित यह महल चन्देरी के फतेहाबाद नामक स्थान पर स्थित है। यह महल सात मंजिलों का है। इसके अतिरिक्त चंदेरी में भी जामी मस्जिद नामक मस्जिद का निर्माण किया गया था।

गुजरात: पान्तीय शैलियों में सबसे अधिक विकसित शैली गुजरात की वास्तुकला शैली थी। इस शैली का 'सर्वाधिक स्थानीय भारतीय शैली' माना जाता है। डॉ. सरस्वती के अनुसार 'अनके अनोखेपन को इस उच्च श्रेणी की विशिष्ट शैली और एक विभिन्न प्रकार की इस्लामिक संरक्षणता की संयुक्त उपज कहकर इसकी सबसे अच्छी व्याख्या की जा सकती है।' गुजरात शैली में पत्थर की कटाई का काम बड़ी कुशलता से किया जाता था जहां पहले लकड़ी के खम्भे, तोड़ नक्काशी करके लगाये जाते थे, वहां पर अब पत्थर का उपयोग होने लगा था। यहां पर अहमद शाही वंश के शासकों के संरक्षण में कई महत्वपूर्ण इमारतों का निर्माण किया गया। अहमद शाह ने अहमदाबाद की नींव डाली।

बाबा फरीद का मकबरा: यह प्रसिद्ध सूफी संत फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर का मकबरा हैं यह मकबरा गुजरात के मुस्लिम स्थापत्य शैली का प्रथम उदारहण है।

जामा मस्जिद: इस मस्जिद का निर्माण अहमद शाह ने 1423 ई. में अहमदाबाद में करवाया। इस मस्जिद को गुजरात वास्तुकला शैली का सर्वोत्कृष्ट नमूना माना जाता है। डॉ. वर्गेस, जिसने आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इंडिया की अपनी पांच जिल्दों में प्राचीन एवं मध्यकालीन वास्तुकला के इतिहास एवं विशेषताओं का पूरा वर्णन किया है, लिखा है कि ''यह शैली स्वदेशी कला की सारी सुन्दरता तथा परिपूर्णता की उस ऐश्वर्य के साथ एक मिलावट थी, जिसकी अपनी कृत्यों में ही कमी थी।'' यह एक ऐसे वर्गाकार भू-भाग पर निर्मित है जिसके चारों ओर 4 खानकाह (Cloisters) निर्मित हैं। मस्जिद के मेहराबों मिम्बर (Sanctuary) में करीब 260 खम्भे लगे हैं। मस्जिद के खम्भों एवं गैलरियों पर सघन खुदाई हुई है। पर्सी ब्राउन का मत है कि 'पूरे देश में नहीं तो कम से कम पश्चिमी भारत में यह मस्जिद निर्माण कला का श्रेष्ठतम नमूना है।'

फर्ग्यूसन ने इस मस्जिद की तुलना रामपुर के राणाकुम्भा के मंदिर से की है। मस्जिद से किले में प्रवेश के लिए बने चौड़े रास्ते में तीन 37 फुट ऊंचे दरवाजों का निर्माण किया गया है।

भड़ौच की जामा मस्जिद: 1300 ई. में निर्मित यह मस्जिद हिन्दू मंदिरों के अवशेष से बनाई गई थी।

खम्भात की जामा मस्जिद: 1425 ई. में निर्मित इस मस्जिद के पूजागृह की तुलना दिल्ली की कुतुब मस्जिद एवं अजमेर के 'अढ़ाई दिन के झोपड़े' से की जाती है।

हिलाल खां काजी की मस्जिद: ढोलका में स्थित इस मस्जिद का निर्माण 1333 ई. में हुआ। इस मस्जिद में पूर्णत: स्थानीय शैली में दो ऊंची मीनारों का निर्माण हुआ है।

टंका मस्जिद: ढोलका में स्थित इस मस्जिद का निर्माण 1361 ई. में किया गया। अलंकृत स्तम्भों वाली इस मस्जिद में हिन्दू शैली की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है।

अहमदशाह का मकबरा: इस मकबरे का निर्माण जामा मस्जिद के पूर्व में स्थित अहाते में मुहम्मद शाह ने करवाया। इस वर्गाकार इमारत का प्रवेश द्वारा दक्षिणी भाग में है। मकबरे के ऊपर बड़े गुम्बद का निर्माण किया गया है। कुछ अन्य महत्वपूर्ण इमारतों में पाटन में स्थित शेख फरीद का मकबरा, अहमदाबाद में सैयद आलम की मस्जिद, कुतुबुद्दीन शाह की मस्जिद, रानी रूपदन्ती की मस्जिद आदि उल्लेखनीय हैं।

गुजरात में इस्लामी स्थापत्य कला का गौरवपूर्ण आरंभ महमूद बेगड़ा (प्रथम) के सिंहासनारूढ़ (149-1511 ई.) होने से होता है

PERFECTION IAS

जिसने तीन नगरों-चंपानेर, जूनागढ़, और खेदा की स्थापना की। इन स्थानों पर उसने शानदार इमारतें बनवायीं। उसके द्वार पर निर्मित इमारतों में चंपानेर की जामी मस्जिद, नगीना मस्जिद, मनोहर इमारतें आदि हैं। इसके अतिरिक्त सीदी सैयद मस्जिद, सैयद उस्मान कारोजा मुहम्मद गौस की मस्जिद आदि गुजरात स्थापत्य कला के अन्य महत्वपूर्ण कार्य हैं।

कश्मीर

कश्मीर स्थापत्य कला के अन्तर्गत स्थानीय शासकों ने हिन्दुओं के प्राचीन परम्परागत पत्थर एवं लकड़ी के प्रयोग को महत्व दिया। यहां की वास्तुकला शैली में भी हिन्दू- मुस्लिम स्थापत्य कला शैली का समन्वय हुआ है। मार्शल के अनुसार 'कश्मीर के भवन हिन्दू-मुस्लिम कला के सम्मिश्रण के परिचायक हैं।''

यहां के महत्वपूर्ण निर्माण कार्य हैं- श्रीनगर का 'मन्दानी का मकबरा' जामा मस्जिद जिसे बुतशिकन सिकन्दर ने बनवाया था। कालान्तर में इसका विस्तार जैनुल आबदीन ने किया। इस मस्जिद को पूर्व मुगल शैली का शिक्षाप्रद उदाहरण माना जाता है। शाह हमदानी की मस्जिद पूर्णतः इमारती लकड़ी से निर्मित है।

दक्षिण भारत के मुस्लिम एवं हिन्दू राज्य

प्रान्तीय राजवंशों के उदय की श्रंखला में दो प्रकार के स्वतंत्र राज्यों का उदय हुआ- प्रथम- इसके अन्तर्गत वे राज्य हैं जिनका उदय चोल एवं चालुक्य राजवंशों के पतन के बाद हुआ। इसमें

(i) देवगिरि के यादव।
(ii) वारंगल का काकतीय।
(iii) द्वारसमुद्र के होयसाल।
(iv) मदुरा के पाण्ड्य प्रमुख हैं।

द्वितीय- इसके अन्तर्गत चार राज्य आते हैं- माबर, खानदेश, बहमनी और विजयनगर।

देवगिरि के यादव

देवगिरि दक्षिणी भारत के उत्तरी क्षेत्र में स्थित था। यहां पर यादवों का शासन था। यादव पहले चालुक्यों के सामन्त थे। 12वीं शताब्दी में राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर भिल्लम ने स्वतंत्र यादव साम्राज्य की स्थापना की। भिल्लम ने देवगिरि को इस नए साम्राज्य की राजधानी घोषित किया।

1196 ई. में भिल्लम की मृत्यु के बाद जैतुगि और उसके बाद सिंघन शासक बना। सिंघन यादव वंश का सबसे महान शासक था। इसने साहित्य, कला, संस्कृति एवं विज्ञान को भी पर्याप्त प्रोत्साहन एवं संरक्षण दिया। सिंघन की मृत्यु के बाद इस वंश का कोई भी योग्य शासक नहीं हुआ। उसके उत्तराधिकारियों में क्रमशः कृष्ण (1247-1261 ई.), महादेव (1261-1271 ई.) एवं रामचन्द्र (1271-1311 ई.) शासक बने।

1295 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने रामचन्द्र को पराजित किया तथा उसे अपमानजनक संधि करने के लिए विवश किया। शंकरदेव इस यादव वंश का अन्तिम शासक था। उसके शासन काल में देवगिरि दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया।

वारंगल का काकतीय

काकतीयों का राज्य वारंगल, दक्षिण भारत के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित था। काकतीय चालुक्यों के सामंत शासक थे। चालुक्यों के पतन के बाद चोल द्वितीय एवं रुद्र प्रथम ने काकतीय राजवंश की स्थापना की। रूद्र प्रथम वारंगल को काकतीय राज्य की राजधानी बनाया। रूद्र प्रथम के बाद महादेव व गणपति शासक बने। गणपति ने विदेश व्यपार को प्रोत्साहन दिया। उसने विभिन्न बाधक तटकरों को समाप्त कर दिया। मोत्तुपल्ली (आंध्र) उसके काल का प्रसिद्ध बंदरगाह था।

गणपति के बाद उसकी पुत्री रूद्राम्बा वारंगल की शासिका बनी। रूद्राम्बा का उत्तराधिकारी उसका पुत्र प्रतापरुद्रदेव था। इसी काल में खिजली एवं तुगलक शासकों ने वारंगल पर आक्रमण किया। गयासुद्दीन तुगलक के पुत्र उलूग खां (मुहम्मद बिन तुगलक) ने 1332 ई. में वारंगल पर आक्रमण कर प्रतापरूद्र देव को बंदी बना लिया। इसके बाद काकतीय वंश को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया।

द्वारसमुद्र के होयसाल

दक्षिण के चारों राज्यों में इसका अस्तित्व काल सबसे लम्बा था। द्वारासमुद्र के शासक आरम्भ में कल्याणी के अधीनस्थ शासक थे। होयसाल राज्य के वास्तविक संस्थापक विष्णुवर्धन के बाद वीर वल्लाल द्वितीय था। इसे वीर वल्लाल के नाम से भी जाना जाता है। इसने 'दक्षिण नाम चक्रवर्ती' की उपाधि धारण की थी।

वीर वल्लाल के काल में होयसाल साम्राज्य का चहुमुखी विकास हुआ था। 1220 ई. में वीर वल्लाल की मृत्यु के बाद क्रमशः नरसिंह द्वितीय तथा वल्लाल तृतीय शासक बने। नरसिंह द्वितीय महान विद्या प्रेमी तथा कला का संरक्षक था। वल्लाल तृतीय के बाद अगला शासक वल्लाल चतुर्थ बना।

1342 ई. में त्रिचनापल्ली के युद्ध में वल्लाल चतुर्थ की मृत्यु के बाद होयसल साम्राज्य को विजय नगर साम्राज्य में मिला लिया गया।

मदुरा के पांड्य

चोलों के पतन के बाद द्वितीय पाण्ड्य साम्राज्य की स्थापना हुई। इसके संस्थापक नरेश मारवर्मन सुन्दर पाण्ड्य (1216-52 ई.) थें। वह एक महान विजेता शासक था। इसके बाद जटावर्मन सुन्दर पाण्ड्य प्रथम अगला शासक बना। इसने चोलों की शक्ति का नाश कर दिया।

1254-1256 ई. में जटावर्मन सुन्दर पाण्ड्य ने श्रीलंका पर आक्रमण कर उसके उत्तरी भाग पर अधिकार कर लिया। इसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों के बारे में मतभेद है।

मारवर्मन कुलशेखर (1268-1310 ई.): यह पाण्ड्य वंश का अन्तिम महान शासक था। इसी के शासन काल में वेनिस (इटली) के यात्री मार्कोपोलो ने पाण्ड्य देश की यात्रा की थी। इसकी मृत्यु के बाद सत्ता के लिए उत्तराधिकारियों के बीच संघर्ष आरम्भ हो गया। अन्त में मुहम्मद तुगलक (उलूगखां) ने अपने दक्षिण अभियान के अन्तर्गत पाण्ड्य साम्राज्य को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया।

मदुरई अथवा माबर

माबर आधुनिक तमिलनाडु के तटवर्ती भाग में स्थित था। इसकी राजधानी मदुरई थी। 1328 ई. में गयासुद्दीन तुगलक के काल में माबर का दिल्ली सल्तनत में विलय से पूर्व यहां पाण्ड्यों का शासन था। अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने पाण्ड्य राज्य पर आक्रमण कर अधिक धन लूटा था। 1323 ई. में माबर-विजय के बाद गयासुद्दीन तुगलक ने जलालुद्दीन एहसान को इसका गवर्नर नियुक्त किया।

खानदेश

तुगलक वंश पतन के समय फिरोजशाह तुगलक के सूबेदार मलिक अहमद रजा फारूकी ने नर्मदा एवं ताप्ती के बीच 1382 ई. में

PERFECTION IAS

खानदेश की स्थापना की। इसका नाम खानदेश इसलिए पड़ा क्योंकि यहां के सभी सुल्तानों ने खान की उपाधि से शासन किया। इन शासकों ने बुरहानपुर को अपनी राजधानी एवं असीरगढ़ को सैनिक मुख्यालय बनाया। मलिक रजा फारुकी की 29 अप्रैल, 1399 को मृत्यु हो गयी। खानदेश के अन्य शासक निम्नलिखित थे-

शासक	समय
नासिर खान फारुकी	1400 से 1434 ई.
मीरान आदिल खान फारुकी	1437 से 1441 ई.
मीरान मुबारक खान फारुकी	1441 से 1457 ई.
मीरान आदिल खान द्वितीय	1457 से 1510 ई.
दाऊद खान	1501 से 1508 ई.
गजनी खान	1508 ई.
आजम हुमायूं आदिल खां तृतीय	1509 से 1520 ई.
मीरान मुहम्मद खान प्रथम	1520 से 1535 ई.
मीरान मुबारक शाह फारुकी	1535 से 1566 ई.
मीरान मुहम्मद शाह फारुकी	1566 से 1576 ई.
हसन खान फारुकी	1576 ई.
राजा अली खान	1576 से 1597 ई.
बहादुर खान	1597 से 1600 ई.

आदिल खान द्वितीय के बाद के फारुकी वंश के शासक शक्तिहीन थे। अतः साम्राज्य दलगत राजनीति के अंतर्गत रहा, जिसका लाभ उठाकर अहमदनगर एवं गुजरात ने खानदेश के अन्तिम शासक बहादुर खान को परास्त कर उसको मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

इस राज्य में स्थापत्य कला के क्षेत्र में लौकिक तथा धार्मिक निर्माण कार्य हुआ, उसमें मालवा तथा गुजरात की वास्तुकला शैली का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

बीबी की मस्जिदः बुरहानपुर में निर्मित इस मस्जिद में पूर्णरूप से गुजराती वास्तुकली शैली का प्रभाव दिखता है। इसका मस्जिद में पूर्णरूप से गुजराती की पुत्री ने गुजरात के शिल्पकारों से करवाया। मस्जिद के मेहराब एवं गुम्बद पूर्णतः गुजराती शैली में बने हैं।

जामा मस्जिदः बुरहानपुर में निर्मित इस मस्जिद का निर्माण आदिलशाह फारुकी चतुर्थी ने 1589 ई. में करवाय। इस मस्जिद में एक खुला प्रांगण है, इसमें भी कहीं-कहीं गुजराती वास्तुकला शैली का प्रभाव है।

बहमनी राज्य

मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल के अन्तिम दिनों में, दक्कन में अमीरान-ए-सादाह के विद्रोह के परिणामस्वरूप 1347 ई. में बहमनी साम्राज्य की स्थापना हुई। दक्कन के सरदारों ने दौलताबाद के किले पर अधिकार कर इस्माइल अफगान को नासिरूद्दीन शाह के नाम से दक्कन राजा घोषित किया। इस्माइल बूढ़ा और आराम तलब होने के कारण इस पद के अयोग्य सिद्ध हुआ।

शीघ्र ही उससे अधिक योग्य नेता हसन, जिनकी उपाधि जफर खां थी, के पक्ष में गद्दी छोड़नी पड़ी। जफर खां को सरदारों ने 3 अगस्त, 1347 को अबुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमनशह के नाम से सुल्तान घोषित किया। उसने अपने को ईरान के इस्फन्दियार के वीर पुत्र बहमनशाह का वंशज बताया जबकि फरिश्ता के अनुसार वह प्रारंभ में एक ब्राह्मण गंगू का नौकर था उसके प्रति सम्मान प्रकट करने के उद्देश्य से शासक बनने के बाद बहमनशाह की उपाधि ली। अलाउद्दीन हसन ने गुलबर्ग को अपनी राजधानी बनाया तथा उसका नाम बदलकर अहसनाबाद कर दिया।

उसने साम्राज्य को चार प्रान्तों-गुलबर्ग, दौलताबाद, बरार और बीदर में बांटा।

4 फरवरी, 1358 को उसकी मृत्यु हो गयी। इसके उपरान्त सिंहासनारूढ़ होने वाले शासकों में ताजुद्दीन फिरोज ही सबसे योग्य शासक था। विजयनगर साम्राज्य के विरुद्ध चलने वाला इनका संघर्ष अनवरत है।

यह संषर्घ कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों के मध्य स्थित रायचूर दोआब में होता रहा। इस अनिर्णयात्मक एवं सुदीर्घकालीन संघर्ष का मुख्य कारण आर्थिक था। अर्थात् बहमनी सुल्तान विजयनगर साम्राज्य के समृद्ध और आर्थिक दृष्टि से उत्पादक प्रदेशों पर अधिकार करना चाहते थे। बहमनी साम्राज्य के पतन तक यह संघर्ष चलता रहा।

ताज-उद्दीन फिरोज (1397-1422 ई.): यह बहमनी वंश के सर्वाधिक विद्वान सुल्तानों में से एक था। उसने एशियाई विदेशियों या अफगानियों को बहमनी साम्राज्य में आकर स्थायी रूप से बसने के लिए प्रोत्साहित किया।

अपने शासन काल में फिरोज ने विजयनगर से तीन बार युद्ध किया, जिनमें दो बार वह सफल राहा, किन्तु तीसरी बार उसे पराजय का सामना करना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप जियनगर ने बहमनी राज्य के दक्षिणी एवं पूर्वी जिलों पर कब्जा कर लिया। उसके शासन काल में नये विदेशी अफगानियों का आगमन प्रारम्भ हुआ। उसने अकबर के फतेहपुर सीकरी की तरह भीमानदी के तट पर एक नवीन नगर फिरोजाबाद की स्थापना की। उसने दौलताबाद में एक वेधशाला बनवाई। उसका अन्तिम समय काफी कष्टप्रद रहा।

फिरोज को उसके भाई अहमद ने 1422 ई. में गद्दी से हटा दिया। ताजुद्दीन फिरोजशाह के साथ विजयनगर साम्राज्य के देवराय प्रथम का युद्ध हुआ था जिसमें देवराय पराजित हो गया तथा देवराय ने अपनी पुत्री का विवाह ताजुद्दीन के साथ कर दिया। इस युद्ध को सोनार की बेटी का युद्ध कहा जाता है। गुलबर्ग के प्रसिद्ध सन्त गेसूदराज के साथ इसका संघर्ष हुआ जिससे प्रजा में फिरोज की प्रतिष्ठा गिर गयी।

शिहाबुद्दीन अहमद प्रथम (1422-1436 ई.): बहमनी वंश के इस शासक ने अपनी राजधानी गुलबर्ग से हटाकर बीदर में स्थापित की। उसने बीदर का नया नाम मुहम्मदाबाद रखा। सुल्तान ने अफाकियों के वंशज सलाफ हसन को 'मलिक-उत-तज्जर' की उपाधि से वकील-ए-सल्तनत या प्रधानमंत्री नियुक्त किया। इस नियुक्ति से राज्य में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला। सुल्तान ने अपने सैनिक अभियान के अन्तर्गत विजयनगर, वारंगल एवं मालवा पर सफल आक्रमण किया। गुजरात के साथ अहमद ने एक संधि की।

अहमद का शासनकाल न्याय एवं धर्मनिष्ठता हेतु प्रसिद्ध था। उसका उल्लेख इतिहास में शाह वली या संत अहमद के नाम से किया गया है।

अलाउद्दीन अहमद द्वितीय (1436-1458 ई.): अलाउद्दीन अहमद को अपने शासन काल में तेलंगाना, गुजरात, खानदेश, विजयनगर एवं मालवा से संघर्ष करना पड़ा। उड़ीसा के गजपति शासक की सेनाओं

PERFECTION IAS

के साथ भी उसका संघर्ष हुआ। अलाउद्दीन ने एक अस्पताल की स्थापना कर उसके लिए ढेर सारा दान दिया। 1458 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। इसी के शासन काल में ईरान निवासी महमूद गवां का उत्थान हुआ। महमूद गवां को व्यापारियों के प्रमुख (मलिक-उस-तुज्जार) की उपाधि मिली।

बहमनी राजवंश

	शासक	कार्यकाल
1.	बहमनशाह	1347-1358 ई.
2.	मुहम्मद शाह	1358-1375 ई.
3.	मुजाहिद या अलाउद्दीन अहमद	1375-1378 ई.
4.	दाऊद	1378 ई.
5.	महमूद द्वितीय	1378-1397 ई.
6.	गयासुद्दीन	1397 ई.
7.	शमसुद्दीन	1397 ई.
8.	फिरोज शाह	1397-1422 ई.
9.	अहमद शाह	1422-1436 ई.
10.	अलाउद्दीन	1436-1458 ई.
11.	हुमायूं शाह	1458-1461 ई.
12.	निजामुद्दीन	1461-1463 ई.
13.	मुहम्मद तृतीय	1463-1482 ई.
14.	शिहाबुद्दीन मुहम्मद	1482-1518 ई.

अलाउद्दीन हुमायूं (1458-1461 ई.): अलउद्दीन द्वितीय के बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन हुमायूं गद्दी पर आरूढ़ हुआ। उसने महमूद गावां को अपना प्रधानमंत्री बनाया। हुमायूं को उसकी क्रूरता के लिए जालिम कहा जाता था। उसके शासन काल में कई विद्रोह हुए जिसे महमूद गवां ने सफलता से दबाया। हुमायूं के शासन काल में एक प्रशासनिक परिषद की स्थापना हुई। जिसमें राजमाता, महमूद गवां समेत कुल चार व्यक्ति थे।

निजामशाह (1461-1463 ई.): हुमायूं के इस अल्पायु पुत्र ने अपने पिता द्वारा स्थापित 'प्रशासनिक परिषद्' के सहयोग से शासन किया। इस परिषद् में राजमाता मकदूम-ए-जहां, महमूद गवां एवं ख्वाजा जहां थे। राजमाता मकदम-ए-जहां ने सत्ता की बागडोर अपने हाथ में रखी। सुल्तान की अल्प वयस्कता का फायदा उठा कर उड़ीसा के शासक कपिलेश्वर गजपति ने दक्षिण की ओर से तथा मालवा के महमूद खिलजी ने उत्तर की ओर से आक्रमण किया, पर अन्ततः बहमनी सेनायें विजयी रहीं। कालान्तर में उड़ीसा तथा खानदेश की संयुक्त सेना के साथ मालवा के शासक महमूद खिलजी ने दक्कन पर आक्रमण कर बीदर को कब्जे में ले लिया और सुल्तान के परिवार को फिरोजाबाद में शरण के लिए जाना पड़ा। परन्तु कूटनीतिज्ञ एवं महत्वाकांक्षी सरदार महमूद गवां ने गुरात के सहयोग से मालवा सुल्तान को परास्त किया। अचानक 1436 ई. में अल्पायु में ही सुल्तान की मृत्यु हो गई।

सुल्तान शम्सुद्दीन मुहम्मद तृतीय (1463-82 ई.): निजामुद्दीन का अनुज मुहम्मद तृतीय 9 वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में महमूद गवां का व्यक्तित्व प्रभावशाली ढंग से उभरा। 'ख्वाजा जहां' की उपाधि से महमूद गवां को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। बहमनी वंश का आगे का 20 वर्ष का इतिहास महमूद गवां के इर्द-गिर्द ही सिमट कर रहा गया। उसने बहमनी साम्राज्य का विस्तार कोरोमंडल से अरब महासागर के तट तक किया जिससे उसके राज्य की सीमा उत्तर में उड़ीसा की सीमा एवं दक्षिण में कांची तक फैल गई।

महमूद गवां ने मालवा, संगमेश्वर, कोंकण एवं गोवा पर सफल सैनिक अभियान किया। गोवा पर आधिपत्य, जो विजयनगर साम्राजय का सर्वाधिक उत्तम बन्दरगाह था, को महमूद गवां ने अपनी सर्वोत्कृष्ट सैनिक सफलता कह।

विजय नगर के मेल्लार एवं कांची प्रदेशों पर आक्रमण महमूद गवां का अन्तिम सैनिक अभियान था। 1482 ई. में दक्खनियों ने षड्यंत्र द्वारा सुल्तान शम्सुद्दीन मुहम्मद को भड़का कर महमूद गवां की हत्या करवा दी। महमूद गवां ने नये जीते गये प्रदेशों के साथ बहमनी साम्राज्य को 8 प्रान्तों में विभाजित किया। उसने भूमि का नाप जोख, गांव की सीमाओं का निर्धारण एवं लगान के निर्धारण के लिए जांच का आदेश दिया।

महमूद गवां ए कपराक्रमी योद्धा के साथ-साथ विद्वान एवं विद्वानों का संरक्षक थी था। उसने बीदर में एक महाविद्यालय की स्थापना कराई। साथ ही उसने 'रौजत उल इंशा' तथा दीवान-ए-अश्र नामक दो ग्रन्थों की रचना की। महमूद गवां की मृत्यु के बाद 22 मार्च, 1482 ई. को सुल्तान शम्सुद्दीन की भी मृत्यु हो गई।

महमूदशाह (1482-1518 ई.): महमूहदशाह एक अयोग्य शासक था। उसके समय में बहमनी राज्य राजधानी के अगल-बगल तक ही सीमित रहा गया। महमूदशाह एवं उसके शेष उत्तराधिकारी 'दक्कन की लोमड़' कहे जाने वाले तुर्क सरदार 'अमीर अली वरीद' के कठपुतली शासक बन कर रहा गये। अमीर अली वरीद को 'दक्कन की लोमड़ी' कहा जाता है। महमूदशाह के बाद अन्य बहमनी शासक इस प्रकार थे- अहमदशाह चतुर्थ (1518 से 1520 ई.), अलाउद्दीन शाह (1520 से 1523 ई.), बहीउल्लाह (1523 से 1526 ई.)।

कलीम उल्लाह (1526-1538 ई.): यह बहमनी वंश का अन्तिम शासक था। इसकी मृत्यु के समय बहमनी राज्य 5 स्वतंत्र राज्यों में बंट गया। इन स्वतंत्र राज्यों से संबंधित विवरण इस प्रकार है-

राज्य	संस्थापक	राजवंश	राजधानी	समय
बरार	फतहउल्ला इमादशाह	इमादशाही वंश	इलिचपुर, गाविलगढ़	1484 ई.
बीजापुर	युसुफ आदिल शाह	आदिलशाही वंश	नौरसपुर	1489-90 ई.
अहमदनगर	मलिक अहमद	निजामशाही	जुनार, वंश, अहमदनगर	1490 ई.
गोलकुण्डा	कुली कुतुबशाह	कुतुबशाही वंश	गोलकुण्डा	1512-18 ई.

PERFECTION IAS

इस तरह बहमनी राज्य में कुल 18 शासक हुए जिन्होंने 175 वर्षों तक शासन किया। 18 शासकों में 5 की हत्या, 3 अपदस्थ, 2 को अन्धा एवं 2 अत्यधिक शराब के कारण मारे गये। बहमनी राज्य में जनसाधारण की दशा की झांकी रूसी यात्री अथनेसियस निकितिन के लेख में मिलती है जिसने मुहम्मद शाह तृतीय के शासन काल में 1470-1474 ई. के मध्य इस राज्य का भ्रमण किया था।

बरार

बहमनी राज्य से पृथक् होने वाली प्रथम सल्तनत बरार थी। फतउल्ला इमादशाह, जो हिन्दू से मुसलमान बना था, ने 1484 ई. में स्वतंत्रता घोषित कर इमादशाही वंश स्थापित किया। 1574 ई. में बरार को अहमदनगर ने हड़प लिया।

बीजापुर

बहमनी वंश के पतन बाद बने 5 नये राज्यों में बीजापुर का विशेष स्थान था। इस स्वतंत्र राज्य की स्थापना 1489 ई. में युसूफ आदिलशाह ने की। यह धार्मिक रूप से सहिष्णु एवं न्यायप्रिय शासक था। इसके दरबार में ईरान, मध्य एशिया, तुर्किस्तान से विद्धानों का आना-जाना लगा रहता था।

इसके बाद के 4 उत्तराधिकारी इस्माइल आदिलशाह (1510 से 1534 ई.) इब्राहिम आदिलशाह (1535 से 1558 ई.), अली आदिलशा प्रथम (1558 से 1580 ई.) अयोग्य थे। इब्राहीम आदिलशाह ने फारसी के स्थान पर हिन्दवी (दक्कनी उर्दू) को राजभाषा बनाया और शासन में अनेक हिन्दुओं को नियुक्त किया। अली आदिल शाह का विवाह अहमद नगर के हुसैन निजाम शाह की पुत्री चांदबीबी से हुआ।

इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय (1580-1627 ई.): आदिल शाही वंश का छठा शासक आदिलशाह द्वितीय विद्वान एवं धार्मिक रूप से सहिष्णु शासक था। उसके विषय में मीडोज टेलर ने कहा है कि 'आदिलशाह द्वितीय आदिलशाही वंश का सबसे बड़ा सुल्तान था और बहुत सी बातों में उसके संस्थापक को छोड़कर सबसे अधिक योग्य तथा लोकप्रिय भी था।' उसने 1618-1619 ई. में बीदर को बीजापुर में मिला लिया।

गरीबों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखने के कारण इब्राहिम को 'अबलाबाबा' एवं विद्वानों को संरक्षण देने के कारण 'जगतगुरू' की उपाधि दी गई। इब्राहिम ने हिन्दी कविता की प्रसिद्ध पुस्तक किताब-ए-नवरस की रचना की। इस पुस्तक में विभिन्न रागों का वर्णन किया गया है। इसमें उपलब्ध कविताएं विभिन्न रागों में गायन हेतु रचित किये गये हैं। उसके शासन काल में ही मुहम्मद कासिम, जो फरिश्ता के नाम से प्रसिद्ध था, ने 'तारीख-ए-फरिश्ता' की रचना। की। उसने नौरसपुर नाम नगर की स्थापना की।

इस वंश के अन्य शासक थे- मुहम्मद आदिल शाह (1627-1656 ई.) अली आदिल शाह द्वितीय (1656-1672 ई.) सिकन्दर आदिल शाह (1672-1686 ई.)। 1686 ई. में औरंगजेब ने बीजापुर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

बीजापुर स्थापत्य कला के अन्तर्गत हुए महत्वपूर्ण निर्माण कार्यों में जामा मस्जिद एवं गगन महल का निर्माण आदिल शाह प्रथम ने करवाया। इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय ने झंझीरी, अन्दू एवं काली (लक्ष्मेश्वर में) मस्जिद का निर्माण करवाया।

बीजापुर की धार्मिक इमारतों में झंझीरी मस्जिद उत्कृष्ट हैं बीजापुर में इस समय निर्मित सभी मस्जिदों को सामूहिक रूप से 'इब्राहिम का रौजा' का नाम दिया गया। मुहम्मद आदिलशाह ने प्रसिद्ध गोल-गुम्बद मस्जिद का निर्माण करवाया। गोलगुम्बद मुहम्मद आदिलशाह का मकबरा है।

अहमदनगर

अहमदनगर राज्य का संस्थापक निजामुल्मुल्क बहरी का पुत्र मलिक अहमद था, जिसने महमूद गवां के विरुद्ध रचे गये षड्यंत्र में प्रमुख रूप से भाग लिया था और उसकी मृत्यु के पश्चात प्रधानमंत्री बना था। उसने 1490 ई. में अहमदनगर की स्थापना की तथा चूनार के स्थान पर अहमदनगर को अपनी राजधानी बनाया।

1510 ई. में मलिक अहमद की मृत्यु हो गई। उसका उत्तराधिकारी बुरहान निजाम शाह प्रथम (1510-1553 ई.) शासक हुआ। अहमदनगर के सुल्तानों में बुरहान प्रथम शासक था जिसने निजामशाह की उपाधि को धारण किया। इसके बाद इस वंश के अन्य शासक इस प्रकार थे- हुसैन निजामशाह प्रथम (1553-12563 ई.), मुर्तजा निजामशाह प्रथम (1565-1588 ई.), हुसैन निजामशाह द्वितीय (1588-1589 ई.) इस्माइल निजामशाह (1589-1591 ई.) मुर्तजा निजामशाह द्वितीय (1609-1610 ई.), बुरहान निजामशाह तृतीय (1610-1632 ई.), हुसैन निजामशाह तृतीय (1632-1636 ई.)।

हुसैन निजाम शाह का शासन काल दक्कन के इतिहास में युगान्तकारी युग के रूप में स्वीकार किया जाता है। बीजापुर के अली आदिलशाह, गोलकुंडा के कुली कुतुबशाह और विजयनगर के रामराय की संयुक्त सेनाओं ने अहमदनगर के प्रदेशों पर आक्रमण कर लूट-पाट की। हुसैन निजामशाह इस लूटपाट पूर्ण व्यहवहार से इतना क्षुब्ध हुआ कि उसने 1565 ई. में विजयनगर के विरुद्ध दक्कन के मुस्लिम राज्यों के एक सैनिक गठबंधन की स्थापना की, जिसने 1565 ई. में तालीकोटा या राक्षस तंगड़ी के युद्ध में विजयनगर को बुरी तरह परास्त किया। इस गठबंधन में बरार शामिल नहीं था।

अहमदनगर का इतिहास, अहमदनगर की शाहजादी और बीजापुर के अली आदिलशाह की विधवा चांदबीबी द्वारा 1595-1596 में अकबर के पुत्र युवराज मुराद का वीरतापूर्ण प्रतिरोध तथा मलिक अम्बर की सैनिक एवं प्रशासनिक कुशलता के कारण अधिक रोचक एवं महत्त्वपूर्ण है। अहमदनगर की स्वतंत्रता बनाये रखने में मलिक अम्बर का योगदान था। यह अबीसीनियाई दास था जो बाद में अपनी योग्यता के बल पर अहमदनगर का प्रमुख वजीर बना।

इसने युद्ध की छापामार पद्धति को अपनाया तथा भूमि व्यवस्था में ठेकेदारी प्रथा को समाप्त कर रैयतवाड़ी (जब्ता प्रणाली) व्यवस्था लागू किया।

शाहजहां ने इसे अन्तिम रूप से 1636 ई. में मुगल साम्राज्य में मिला लिया। आदिलशाही वंश के शासक बुरहान निजामशाह द्वितीय के शासन के शासन काल का प्रसिद्ध लेखक शाहताहिर हुआ। वह फारसी भाषा का उत्कृष्ट विद्वान था। उसने फतहनामा, इन्सा-ए-शाह-ताहिर, तोहफा-ए-शाही एवं रिशाला-ए-पाल नामक ग्रंथों की रचना की। अहमदनगर के निजामशाही राज्य में सैयद अली तबतबाई सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार हुआ। उसने 'बुरहान-ए-मासीर' नाम से निजामवंश के सुल्तानों का इतिहास लिखा। इस पुस्तक को तबतबाई ने तत्कालीन

PERFECTION IAS

सुल्तान बुरहान निजामशाह द्वितीय को समर्पित किया।

निजामशाही स्थापत्य कला के अन्तर्गत इमारतों में मेहराब एवं गुम्बद का निर्माण पत्थर, चूने व गारे से किया गया। यहां के महत्वपूर्ण निर्माण कार्यों में अहमद निजामशाह द्वारा निर्मित 'अहमदनगर का दुर्ग' एवं 'कासिम खां का महल' प्रसिद्ध हैं। अहमद नगर शहर में स्थित 'बाग-ए-रौजा' में अहमद निजामशाह का मकबरा स्थित है।

अहमद निजामशाह ने सलावत खां गुराजी की सलाह पर एक महल व उद्यान 'बाग-ए-हस्त बहिस्त' का निर्माण करवाया। हुसैन निजामशाह द्वितीय ने हुसैनाबाद नामक शहर की स्थापना की।

बीदर

अमीर अली बरीद ने 1526-1527 ई. में स्वतंत्र बीदर राज्य की स्थापना की। अमीर अली बरीद को दक्कन की लोमड़ी कहा जाता है। 1618-1619 ई. में बीजापुर के सुल्तानों ने इसे बीजापुर में मिला लिया।

गोलकुण्डा

बहमनी वंश के कुली कुतुबशाह नामक एक तुर्की अधिकारी ने 1512-1518 ई. में गोलकुण्डा नामक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। गोलकुण्डा पर उसने 1543 ई. तक शासन किया। गोलकुण्डा बहमनी साम्राज्य के तिलंग या तेलंगाना प्रान्त की राजधानी थी।

कुतुबशाह के बाद उसका पुत्र जमशेर सिंहासन पर बैठा। जमशेर के बाद गोलकुण्डा का शासक इब्राहिम बना जिसने विजयनगर से संघर्ष किया। 1580 ई. में इब्राहिम की मृत्यु के पश्चात् उसक पुत्र मुहम्मद कुली (1580-1612 ई.) उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह हैदराबाद नगर का संस्थापक और दक्कनी उर्दू में लिखित प्रथम काव्य संग्रह या 'दीवान' का लेखक था। गोलकुण्डा का ही प्रसिद्ध अमीर मीरजुमला मुगलों से मिल गया था। कुतुबशाही साम्राज्य की प्रारम्भिक राजधानी गोलकुण्डा हीरों का विश्व प्रसिद्ध बाजार के रूप में प्रसिद्ध थी जबकि मुसलीपत्तन कुतुबशाही साम्राज्य का विश्व प्रसिद्ध बन्दरगाह था।

इस काल के प्रारम्भिक भवनों में सुल्तान कुली द्वारा गोलकुण्डा में निर्मित जामी मस्जिद उल्लेखनीय है। हैदराबाद के संस्थापक मुहम्मद कुली द्वारा हैदराबाद में निर्मित चार मीनार की गणना भव्य इमारतों में होती है।

सुल्तान मुहम्मद कुली को आदि उर्दू काव्य का जन्मदाता माना जाता है। सुल्तान अब्दुल्ला महान् कवि एवं कवियों का संरक्षक था। उसके द्वारा संरक्षित महानतम कवि मलिक-उस-शोरा था, जिसने तीन मसनवियों की रचना की।

अयोग्य शासकों के कारण, अंततः 1637 ई. में औरंगजेब ने गोलकुण्डा को मुगल साम्राज्य में मिला लिया। बहमनी साम्राज्य से स्वतंत्र होने वाले राज्य क्रमशः बरार, बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा तथा बीदर हैं।

उत्तर भारत एवं दक्कन के स्वतंत्र प्रान्तीय राज्य एवं उनके संस्थापक

उत्तर के राज्य

राज्य	संस्थापक
जौनपुर	मलिक-उस-शर्क (ख्वाजाजहां)
कश्मीर	सिंहदेव
बंगाल	शम्सुद्दीन इलियास शाह
गुजरात	मुजफ्फरशाह (जफर खां)
मालवा	दिलावर खां

दक्षिण के राज्य

खानदेश	सूबेदार मलिक राजा
बहमनी राज्य	अलाउद्दीन बहमनशाह

बहमनी राज्य के टूटने के बाद स्वतंत्र हुए नये राज्य

अहमदनगर	मलिक अइमद
बीजापुर	युसुफ आदिल खां
गोलकुण्डा	कुली कुतुबशाही
बरार	फतहउल्ला इमादशाही
बीदर	अमीर अली बरीद
विजयनगर राज्य	हरिहर एवं बुक्का

विजयनगर साम्राजय

विजयनगर का शाब्दिक अर्थ है- 'जीत का शहर। प्रायः इस नगर को मध्ययुग का प्रथम हिन्दू साम्राज्य माना जता है। 14वीं शताब्दी में उत्पन्न विजयनगर साम्राज्य को मध्ययुग और आधुनिक औपनिवेशिक काल के बीच का संक्रान्ति-काल कहा जाता है।

इस साम्राज्य की स्थापना 1336 ई. में दक्षिण भारत में तुगलक सत्ता के विरुद्ध होने वाले राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलन के परिणामस्वरूप संगम पुत्र हरिहर एवं बुक्का द्वारा तुंगभद्रा नदी के उत्तरी तट पर स्थित आनेगुंडी दुर्ग के सम्मुख की गयी।

अपने इस साहसिक कार्य में उन्हें ब्राह्मण विद्वान् माधव विद्यारण्य तथा वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण से प्रेरणा मिली। विजयनगर साम्राज्य का नाम तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित उसकी राजधानी के नाम पर पड़ा। उसकी राजधानी विपुल शक्ति एवं सम्पदा की प्रतीक थी।

विजयनगर के विषय में फारसी यात्री अब्दुल रज्जाक ने लिखा है कि 'विजयनगर दुनिया के सबसे भव्य शहरों में ऐ एक लगा, जो उसने देखे या सुने थे।'

विजयनगर साम्राज्य के संस्थापकों की उत्पत्ति के बारे में स्पष्ट जानकारी के अभाव में इतिहासकारों में विवाद है। कुछ विद्वान 'तेलुगू आन्ध्र' अथवा काकतीय उत्पत्ति मानते हैं तो कुछ कार्नाट (कर्नाटक) या होयसल तथा कुछ काम्पिली उत्पत्ति मानते हैं।

हरिहर और बुक्का ने अपने पिता संगम के नाम पर संगम राजवंश की स्थापना की। विजयनगर साम्राज्य की राजधानियां क्रमशः आनेगोण्डी, विजयनगर, पेनुगोण्डा तथा चन्द्रगिरि थी। हम्पी (हस्तिनावती) विजयनगर की पुरानी राजधानी का प्रतिनिधित्व करता है। विजयनगर का वर्तमान नाम हम्पी (हस्तिनावती) है।

संगम राजवंश (13336-1485 ई.)

हरिहर प्रथम (1336-1356 ई.): संगम वंश के प्रथम शासक हरिहर प्रथम ने आनेगोन्डी के स्थान पर नवीन नगर विजयनगर को अपनी राजधानी बनाया उसने बादामी, उदगिरि एवं गूटी में स्थित दुर्गों को शक्तिशाली बनाया।

उसने होयसल राज्य को अपने राज्य में मिलाया तथा कदम्ब एवं मदुरा पर विजय प्राप्त की। कुमार कम्पन (या कम्पा) की पत्नी गंगा देवी ने अपने पति द्वारा मदुरा विजय का अपने ग्रन्थ -मदुरा विजयम्' में बड़ा सजीव वर्णन किया है। उसने राज्य में कृषि विकास के लिए कार्य किया। 1356 ई. में हरिहर की मृत्यु हो गई। हरिहर प्रथम को दो समुद्रों

PERFECTION IAS

का अधिपति कहा जाता है।

बुक्का प्रथम (1356-1377 ई.): हरिहर का उत्तराधिकारी उसका भाई बुक्का प्रथम सिंहासन पर बैठा। उसने मदुरा को अपने साम्राज्य में शामिल किया सर्वप्रथम बुक्का ने ही बहमनी और विजयनगर साम्राज्य के मध्य बने विवाद के कारण कृष्ण नदी को बहमनी तथा विजयनगर साम्राज्य के मध्य बने विवाद के कारण कृष्णा नदी को बहमनी तथा विजयगनर साम्राज्य के मध्य की सीमा माना बुक्का ने 'वेदमार्ग प्रतिष्ठापक' की उपाधि ग्रहरण की।

उसने वेद और अन्य धार्मिक ग्रन्थों की नवीन टीकाएं लिखवायी तथा तेलगू साहित्य को प्रोत्साहन दिया।

1374 ई. में बुक्का I ने चीन में अपना एक दूतमंडल भेजा।

1377 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। हरिहर एवं बुक्का ने राजा व महाराजा की उपाधि ग्रहण नहीं की थी। तीन समुद्रों का अधिपति की उपाधि बुक्का प्रथम की भी है।

हरिहर द्वितीय (1377-1404 ई.): हरिहर द्वितीय विजयनगर राजसिंहासन पर महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण कर बैठा। उसने कनारा, मैसूर, त्रिचनापल्ली, कांची आदि प्रदेशों पर विजय प्राप्त की।

उसने बहमनी सुल्तानों को कई आक्रमणों में परास्त किया। हरिहर-II की बड़ी सफलता पश्चिम के बहमनी राज्य से बेलगांव और गोवा छीनना था। उसने श्रीलंका के राजा से कर वसूल किया। हरिहर II शिव के विरुपाक्ष रूप का उपासक था, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था। 1404 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। हरिहर द्वितीय अपनी विद्वता एवं विद्वानों को संरक्षण देने के कारण राज व्यास या राज वाल्मीकि कहलाया।

देवराय प्रथम (1406-1422 ई.): देवराय को अपने शासन काल में बहमनी सुल्तान फिरोजशाह के आक्रमण के अतिरिक्त आंतरिक विद्रोह का भी सामना करना पड़ा, परन्तु अन्ततः वह सफल हुआ। फिरोज बहमन शाह से पराजित होने के कारण देवराय-I ने अपनी पुत्री का विवाह फिरोजशाह के साथ किया तथा दहेज के रूप में बांकापुर का क्षेत्र दिया।

देवराय प्रथम ने राज्य में सिंचाई की सुविधा के लिए तुंगभद्रा नदी पर बांध बनाकर नहरें निकलवायीं। उसके शासन काल में ही इटली का यात्री निकोलों कोण्टी 1420 ई. में विजयनगर की यात्रा पर आया।

1422 ई. में देवराय प्रथम की मृत्यु हो गई। देवराय प्रथम के दरबार में प्रसिद्ध तेलुगु कवि श्रीनाथ थे।

देवराय प्रथम के विषय में यह कहा गया है कि सम्राट अपने राजप्रसाद के 'मुक्ता सभागार' में प्रसिद्ध व्यक्तियों को सम्मानित किया करता था। उसके समय में विजयनगर दक्षिण भारत में विद्या का केन्द्र बन गया था।

संगम वंश

	शासक	कार्यकाल
1.	हरिहर प्रथम	1336-1356 ई.
2.	बुक्का प्रथम	1356-1377 ई.
3.	हरिहर द्वितीय	1377-1404 ई.
4.	विरुपाक्ष प्रथम व बुक्का द्वितीय	1404-1406 ई.
5.	देवराय प्रथम	1406-1422 ई.
7.	विजयराय द्वितीय	1446-1447 ई.
8.	मल्लिकार्जुन	1447-1465 ई.
9.	विरुपाक्ष द्वितीय	1465-1485 ई.

सालुव वंश

	शासक	कार्यकाल
1.	सालुव नरसिंह	1485-1491 ई.
2.	तिम्मा राय	1491 ई.
3.	इम्माडि नरसिंह	1491-1505 ई.

तुलुव वंश

	शासक	कार्यकाल
1.	बीर नरसिंह	1505-1509 ई.
2.	कृष्णदेव राय	1509-1529 ई.
3.	अच्युत राय	1529-1542 ई.
4.	वेंकट प्रथम	1542-1543 ई.
5.	सदाशिव	1543-1570 ई.

अरविडु वंश

	शासक	कार्यकाल
1.	तिरुमल	1570-1572 ई.
2.	श्रीरंग	1572-1585 ई.
3.	वेंकट II	1585-1614 ई.
4.	श्रीरंग II	1614 ई.
5.	रामदेव	1614-1630 ई.
6.	वेंकट III	1630-1642 ई.
7.	श्रीरंग III	1642-1652 ई.

देवराय द्वितीय (1422-1446 ई.): देवराय प्रथम के बाद उसका पुत्र रामचन्द्र 1422 ई. में सिंहासन पर बैठा, परन्तु कुछ महीने बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। रामचन्द्र के बाद उसका भाई वीर विजय गद्दी पर बैठा। उसका भी शासन काल अल्पकालीन रहा। अलग शासक वीर विजय का पुत्र देवराय द्वितीय हुआ।

वह इस वंश के महान शासकों में था। उसे 'इमाडि देवराय' भी कहा जाता था। उसने आंध्र में कोंडुबिदु का दमन कर कृष्ण नदी तक विजयनगर की उत्तरी एवं पूर्वी सीमा को बढ़ाया। उसने आंध्र एवं उड़ीसा के गजपति शासक को पराजित किया। उसने अपनी सेना में कुछ तर्क धनुर्धारियों को भर्ती किया।

देवराय योग्य शासक होने के साथ विद्या तथा विद्वानों का संरक्षक भी था। उसके दरबार में तेलुगू कवि श्रीनाथ कुछ समय तक रहा। खुरासान (फारस) के शासक शाहरूख के राजदूत अब्दुल रज्जाक देवराय द्वितीय के समय में विजयनगर आया। फरिश्ता के अनुसार 'उसने करीब दो हजार मुसलमानों को अपनी सेना में भर्ती किया एवं उन्हें जागीरों प्रदान की।' देवराय ने मुसलमानों को मस्जिद निर्माण की स्वतन्त्रता दे रखी थी।

देवराय द्वितीय ने अपने सिंहासनारोहण के समय कुरान रखा था। एक अभिलेख में देवराय II को 'गजबेटकर' (हाथियो का शिकारी) कहा गया है। पौराणिक आख्यानों में उसे इन्द्र का अवतार बताया गया है। 1446 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। देवराय द्वितीय ने संस्कृत ग्रंथ 'महानाटक सुधानिधि' एवं ब्रह्मसूत्र पर एक भाष्य लिखा। वाणिज्य को

PERFECTION IAS

नियंत्रित एवं नियमित करने के लिए उसने लक्कन्ना या लक्ष्मण, जो उसका दाहिना हाथ था, को 'दक्षिण समुद्र का स्वामी' बना दिया अर्थात् विदेश व्यापार का भार सौंप दिया।

मल्लिकार्जुन (1446-1465 ई.): देवराय द्वितीय के बाद उसका भतीजा देवराज द्वितीय का पुत्र मल्लिकार्जुन जिसे 'प्रौढ़ देवराय' भी कहा जाता था, सिंहासन पर बैठा। उसके समय में हुए उड़ीसा एवं बहमनी के आक्रमण में उड़ीसा ने कोंडबिदु एवं उदयगिरि के किले पर अधिकार कर लिया। प्रौढ़ देवराय के समय में उड़ीसा के गजपति शासकों की सेनाएं सम्भवत: रामेश्वर तक पहुंच गई थी।

उड़ीसा के गजपति शासकों द्वारा बुरी तरह परास्त होने पर हुए अपमान को न सह पाने के कारण 1465 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। चीनी यात्री माहुआन ने मल्किार्जुन के समय विजयनगर की यात्रा किया।

विरुपाक्ष द्वितीय (1465-1485 ई.): संगम वंश का अन्तिम शासक एवं मल्लिकार्जुन के उत्तराधिकारी विरुपाक्ष के शासन काल में विजयनगर से गोवा, कोंकण एवं उत्तरी कर्नाटक के कुछ भाग अलग हो गये। ऐसी स्थिति में जबकि विजयनगर राज्य टूटने की स्थिति में आ गया था, चन्द्रगिरि में गवर्नर पद पर नियुक्त सालुव नरसिंह ने विजयनगर राज्य की रक्षा की।

1485 ई. में विरुपाक्ष की हत्या उसके पुत्र ने कर दी। पुर्तगाली यात्री नूनिज के अनुसार इस समय विजयनगर में चारों ओर अराजकता एवं अशन्ति का माहौल था। इन्हीं परिस्थितियों का फायदा उठाकर सालुव नरसिंह के सेनानायक नरसा नायक ने राजमहल पर कब्जा कर सालुव नरसिंह को राजगद्दी पर बैठने के लिए निमंत्रण दिया। इस घटना को विजयनगर साम्राज्य के इतिहास में प्रथम 'बलापहार' कहा गया है।

सालुव वंश (1485-1505 ई.)

सालुव नरसिंह (1485-1491 ई.): सालुव नरसिंह ने विजयनगर में दूसरे राजवंश सालुव वंश की स्थापना की। अपने 6 वर्षीय शासन काल में सालुव ने राज्य में व्याप्त आन्तरिक विद्रोहों को समाप्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु उड़ीसा के गजपति शासक पुरुषोत्तम ने उसे पराजित कर बन्दी बना लिया तथा साथ ही उदयगिरि के किले पर कब्जा कर लिया। कालान्तर में बन्दी जीवन से मुक्त होने के बाद सालुव ने कर्नाटक के तुलुव प्रदेश को जीता। उसने अरब से होने वाले घोड़े के व्यापार को पुन: प्रारम्भ किया।

1491 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। सालुव की मृत्यु के बाद अल्प काल के लिए उसके बड़े पुत्र मिम्मा ने नरसा नायक के संरक्षकत्व में शासन किया। पुन: तिम्मा के बाद इम्माडि ने भी नरसा नायक के संरक्षकत्व में शासन मार ग्रहण किया।

इम्माडि नरसिंह (1491-1505 ई.): चूंकि यह अल्पायु था, इसलिए इसके संरक्षक नरसा नायक ने उचित मौके पर सम्पूर्ण सत्ता पर अधिकार कर लिया और स्वयं शासक बन गया। इम्माडि नरसिंह को नरसा ने पेनुकोंडा के किले में कैद कर दिया। अपने 12-13 वर्ष के शासन कालन में नरसा नायक ने रायचूर दोआब के अनेक किलों पर अधिकार कर लिया। इसके अतिरिक्त नरसा नायक बीजापुर, बीदर, मदुरा, श्रीरंपट्टम के शासकों के विरुद्ध किये गये अभियान में सफल रहा। उसने बीजापुर के शासक युसूफ आदिल खान एवं उड़ीसा के शासक प्रतापरुद्र देव (गजपति) को भी परास्त किया। नरसा नायक ने चोल, पाण्ड्य एवं चेर शासकों को भी विजयनगर की अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया। 1505 ई. में इम्माडि नरसिंह की हत्या नरसा नायक के पुत्र वीर नरसिंह ने कर दी। इसके साथ सालुव वंश का अन्त हो गया।

तुलुव वंश (1505-1570 ई.)

इस वंश की स्थापना नरसा के पुत्र वीर नरसिंह ने की थी। इतिहास में इसे द्वितीय बलापहार की संज्ञा दी गई है। 1505 में नरसिंह ने सालुव नरेश इम्मादि नरसिंह की हत्या करके स्वयं सिंहासन पर अधिकार कर लिया और तुलुव वंश की स्थापना की।

नरसिंह का पूरा शासन काल आन्तरिक विद्रोह एवं ब्राह्य आक्रमणों से प्रभावित था। 1509 ई. नरसिंह की मृत्यु हो गयी। यद्यपि उसका शासन काल अल्प रहा परन्तु फिर भी उसने सेना को सुसंगठित किया, अपने नागरिकों को युद्धप्रिय बनाया, पुर्तगाली गवर्नर अल्मीछा से उसके द्वारा लाये गये सभी घोड़ों की खरीदने के लिए एक समझौतों किया, विवाह कर को हटाकर एक उदार नीति को आरंभ किया। नूनिज द्वारा वीर नरसिंह का वर्णन एक 'धार्मिक राजा' के रूप में किया गया है, जो पवित्र स्थानों पर दान किया करता था। नरसिंह की मृत्यु पश्चात् उसका अनुज कृष्णदेव राय सिंहासनारूढ़ हुआ।

कृष्णदेव राय (1509-29 ई.): तुलुव वंशी वीर नरसिंह का अनुज कृष्णदेव राय 8 अगस्त, 1509 ई. को सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके शासन काल में विजयनगर ऐश्वर्य एवं शक्ति के दृष्टिकोण से अपने चरमोत्कर्ष पर था। कृष्णदेव राय ने अपने सफल सैनिक अभियान के अन्तर्गत 1509-1510 ई. में बीदर के सुल्तान महमूदशाह को अदोनी के समीप हराया। 1510 ई. में उसने उम्मूतूर के विद्रोही सामन्त को पराजित किया।

1512 ई. में कृष्णदेव राय ने बीजापुर के शासक युसूफ आदिल शाह को परास्त कर रायचूर दोआब पर अधिकार किया। तत्पश्चात् गुलबर्ग के किले पर अधिकार कर लिया। कृष्णदेव राय ने बीदर पर पुन: आक्रमण कर वहां के बहमनी सुल्तान महमूद शाह को बरीद के कब्जे से छुड़ा कर पुन: सिंहासन पर बैठाया और साथ ही 'यवनराज स्थापनाचार्य' की उपाधि धारण की।

1513-1518 ई. के बीच कृष्णेदव राय ने उड़ीसा के गजपति शासक प्रतापरूद्र देव से कम से कम 4 बार युद्ध किया तथा उसे चारों बार पराजित किया। चार बार की पराजय से निराश प्रतापरूद्र देव ने कृष्णदेव राय से संधि की प्रार्थना कर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। गोलकुण्डा के सुल्तान कुली कुतुबशाह को कृष्णदेव राय ने सालुव तिम्म के द्वारा परास्त करवाया। कृष्णदेव राय का अन्तिम सैनिक अभियान बीजापुर सुल्तान इस्मादल आदि के विरुद्ध था। उसने आदि को परास्त कर गुलबर्ग के प्रसिद्ध किले को ध्वस्त कर दिया।

1520 ई. तक कृष्णदेव राय ने अपने समस्त शत्रुओं को परास्त कर अपने पराक्रम का परिचय दिया। अरब एवं फारस से होने वाले घोड़े के व्यापार, जिस पर पुर्तगालियों का पूर्ण अधिकार था।, इसको बिना रुकावट के चलाने के लिए कृष्णदेव राय को पुर्तगाली शासक अल्बुकर्क से मित्रता करनी पड़ी।

पुर्तगालियों की विजयनगर के साथ सन्धि के अनुसार वे कवेल विजयनगर को ही अपने घोड़े बेचेंगे। उसने उसे भटकल में किला बनाने के लिए अनुमति इस शर्त पर प्रदान की कि वे मुसलमानों से गोवा छीन लेंगे। कृष्णदेव राय के समय में पुर्तगाली यात्री डोमिंगों पायस विजयनगर

PERFECTION IAS

की यात्रा पर आया। उसने कृष्णदेव राय की खूब प्रशंसा की। एक अन्य पुर्तगाली यात्री बारबोसा ने भी समकालीन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। कृष्णदेव ने बंजर एवं जंगली भूमि को कृषि योग्य बनाने का प्रयत्न किया तथा विवाह कर जैसे अलोकप्रिय कर को समाप्त किया।

कृष्णदेव राय तेलुगू साहित्य का महान विद्वान था। उसने तेलुगू के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अमुक्त माल्यद' या विस्वुवितीय की रचना की। उनकी यह रचना तेलुगु के पांच महाकाव्यों में से एक है। इसमें आलवार विष्णुचित्त के जीवन, वैष्णव दर्शन पर उनकी व्याख्या और उनकी गोद ली हुई बेटी गोदा और भगवान रंगनाथ के बीच प्रेम का वर्णन है।

कृष्णदेव राय ने इस ग्रन्थ में राजस्व के विनियोजन एवं अर्थव्यवस्था के विकास पर विशेष बल देते हुए लिखा है कि ''राजा को तालाबों व सिंचाई के अन्य साधनों तथा अन्य कल्याणकारी कार्यों के द्वारा प्रजा को संतुष्ट रखना चाहिए।'' कृष्णदेव राय एक महान प्रशासक होने के साथ-साथ एक महान विद्वान, विद्याा प्रेमी और विद्वानों का उदार संरक्षक भी था जिसके कारण वह अभिनव भोज या आंध्र भोज के रूप में प्रसिद्ध था। कुमार व्यास का ''कन्नड़-भारत'' कृष्णदेव राय को समर्पित है।

उसके दरबार में तेलुगू साहित्य के 8 सर्वश्रेष्ठ कवि रहते थे, जिन्हें अष्टदिग्गज कहा जाता था। **अष्टदिग्गज** में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अल्लसानि पेद्दन को तेलुगु कविता के पितामह की उपाधि प्रदान की गई थी। उसकी मुख्य कृति है- 'स्वारोचिश-सम्भव(या मनुचरित तथा 'हरिकथा सार'। दूसरे महान कवि नन्दी तिम्मन ने 'पारिजातहरण' की रचना की।

चौथे कवि धूर्जटि ने 'कालहस्ति-महात्म्य' की रचना एवं पांचवें कवि मादय्यगरि मल्लन ने राजशेखरचरित की रचना की। छठें कवित अच्चलराजु रामचन्द्र ने 'सकलकथा सारसंग्रह' एवं 'रामाभ्युदयम्' की रचना की। सातवें कवि पिंगलीसूरन्न ने 'राघव-पाण्डवीय' की रचना की। आठवें तथा अन्तिम दरबारी कवि **तेनालि रामकृष्ण ने 'पाण्डुरंग महात्म्य' की रचना की।** पांडुरंग महात्म्य की गणना 5 महाकाव्यों में की जाती हैं कृष्णदेव राय ने संस्कृत भाषा में एक नाटक 'जाम्बवती कल्याण' की रचना की। साहित्य के चेत्र में कृष्णदेव राय के काल को तेलुगु साहित्य का 'क्लासिकी युग' कहा गया है। कृष्णदेव राय ने 'आंध भोज', 'अभिनव भोज', 'आन्ध्र पितामह' आदि उपाधि धारण की। स्थापत्य कला के क्षेत्र में कृष्णदेव राय ने 'नागलपुर' नामक नये नगर की स्थापना की।

उसने हजारा एवं विट्ठलस्वामी नामक मंदिर का निर्माण करवाया। कृष्णदेव राय की 1529 ई. में मृत्यु हो गई। बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुके बाबरी' में कृष्णदेव राय को भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक बताया है।

अच्चुतदेव राय (1529-1542 ई.): कृष्णदेव राय ने अपने भाई अच्चुतदेव राय को अपसना उत्तराधिकारी मनोनीत किया।

अभिलेखीय एवं साहित्यिक प्रमाण बतलाते हैं कि अच्चुतराय 'एकदम वैसा भीरू' नहीं था, जैसा कि नूनिज ने उसका वर्णन किया है।

उसने मदुरा के राजप्रतिनिधि को दण्ड दिया तथा निरूवांकुर के राजा को (जिसने मदुरा के राजप्रतिनिधि को शरण दी थी) अधीन कर लिया। उसने अपने शासन काल में बीजापुर के शासक इस्माइल आदिल खान से रायचूर एवं मुद्गल के किले को छीन लिया उसने गजपति शासक के आक्रमण को असफल किया और साथ ही 1530 ई. में गोलकुण्डा के सुल्तान को पराजित किया। अच्युतदेवराय के समय महामण्डलेश्वर नामक एक नवीन अधिकारी की नियुक्ति हुई। 1542 ई. में उसकी मृत्यु के बाद अच्युत के साले सलक राज तिरुमल ने अच्युत के अल्पायु पुत्र वेंकट प्रथम को सिंहासन पर बैठाया। उसका शासन काल मात्र 6 महीने तक रहा। इसके बाद विजनगर की सत्ता अच्युत के भतीजे सदाशिव के हाथों में आ गई।

सदाशिव (1542-1570 ई.): यह नाममात्र का ही शासक था क्योंकि उसके समय में वास्तविक शक्ति रामराय के हाथों में थी। इसके समय में रामराय ने बड़ी संख्या में मुस्लिमों को अपनी सेना में सम्मिलित किया। रामराय ने विजयनगर की परम्परा के विपरीत पड़ोसी मुस्लिम राज्यों की आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप किया, जिसका परिणाम अन्ततः विजयनगर साम्राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ।

1543 ई. में रामराय ने बीजापुर के विरुद्ध गोलकुण्डा एवं अहमदनगर से संधि की। कालान्तर में उसने अहमदनगर के विरुद्ध बीजापुर तथा गोलकुण्डा को सहयोग दिया। उसकी यह नीति असफल रही।

राक्षसी-तांगड़ी अथवा तालीकोटा का युद्ध (25 जनवरी, 1565 ई.)

विजयनगर विरोधी महासंघ में अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा आर बीदर शामिल थे। गोलकुण्डा और बरार के मध्य पारस्परिक शत्रुता के कारण बरार इसमें शामिल नहीं था। इस महासंघ के नेता अली आदिलशाह ने रामराय से रायचूर एवं मुद्गल के किलों को वापस मांगा।

रामराय द्वारा मांग ठुकराये जाने पर दक्षिण के सुल्तानों की संयुक्त सेना राक्षसी-तांगड़ी की ओर बढ़ी, जहां पर 25 जनवरी, 1565 को रामराय एवं संयुक्त मोर्चे की सेना में भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भिक क्षणों में संयुक्त मोर्चा विफल होता हुआ नजर आया, परन्तु अन्तिम समय में तोपों के प्रयोग द्वारा मुस्लिमों की संयुक्त सेना ने विजयनगर सेना पर कहर ढा दिया जिसके परिणामस्वरूप युद्ध क्षेत्र में ही सत्तर वर्षीय रामराय को घेर कर मार दिया।

इस युद्ध में रामराय की हत्या हुसैन शाह ने किया। विजयनगर शाह को निर्ममतापूर्वक लूटा गया। इस युद्ध की गणना भारतीय इतिहास के विनाशकारी युद्ध में की जाती है।

इस युद्ध को बन्नीहट्टी के युद्ध के नाम से भी जाना जाता है। फरिशता के अनुसार यह युद्ध 'तालीकोटा' में लड़ा गया पर युद्ध का वास्तविक क्षेत्र राक्षसी एवं तगड़ी गांवों के बीच का क्षेत्र था। युद्ध के परिणामों के प्रतिकूल रहने पर भी विजयनगर साम्राज्य लगभग सौ वर्ष तक जीवित रहा। तिरुमल के सहयोग से सदाशिव ने पेनुकोंडा को राजधानी बनाकर शासन करना प्रारम्भ किया। यहीं पर विजयनगर के चौथे वंश-अरविडु की स्थापना की गई।

अरविडु वंश (1570-1665 ई. लगभग) :

अरविडु वंश की स्थापना 1570 ई. के लगभग तिरुमल ने सदाशिव को अपदस्थ कर पेनुकोंडा में की। तिरुमल का उत्तराधिकारी रंग द्वितीय हुआ। रंग द्वितीय के बाद वेंकट द्वितीय शासक हुआ। उसने चन्द्रगिरि को अपना मुख्यालय बनाया।

विजयनगर के महान शासकों की श्रृंखला की यह अन्तिम कड़ी था। वेंकट द्वितीय ने स्पेन के फिलिप तृतीय से सीधा पत्र व्यवहार किया और वहां से ईसाई पादरियों को आमंत्रित किया।

PERFECTION IAS

उसके शासन काल में ही वाडियार ने 1612 ई. में मैसूर राज्य की स्थापना की। वेंकट द्वितीय चित्रकला में रूचि रखता था। इस वंश के अन्तिम शासक रंग द्वितीय के समय में मैसू, बेदनूर, तंजौर आदि स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हो गई। विजयनगर साम्राज्य लगभग तीन शताब्दी से अधिक समय जीवित रहा।

विजयनगर का प्रशासन, अर्थव्यवस्था एवं समाज

प्रशासनः विजयनगर साम्राज्य के राजनीति स्वरूप के बारे में दो प्रकार के मत मिलते हैं। ए.के. शास्त्री के अनुसार- 'विजयनगर साम्राज्य एक केन्द्रीकृत राज्य था'। इसके विपरीत बर्टनस्टेन विजयनगर को खंडित राज्य का दर्जा देते हैं। कुल मिलाकर विजयनगर साम्राज्य का रानीति स्वरूप खंडित होने के बजाय अत्यधिक विस्तृत एवं संविभाजित था।

केन्द्रीय व्यवस्थाः विजयनगर साम्राज्य की शासन पद्धति राजतंत्रात्मक थी। इस काल में प्राचीन राज्य की 'सप्तांग विचारधारा' का अनुसरण किया जाता था। राजा के चुनाव में राज्य के मंत्री एवं नायक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते थे।

विजयनगर में संयुक्त शासक की भी परम्परा थी। राजा को राज्याभिषेक के समय प्रजापालन एवं निष्ठा की शपथ लेनी पड़ती थी। राज्याभिषेक के अवसर पर दरबार में एक अत्यन्त भव्य आयोजन होता था जिसमें अनेक नायक, अधिकारी तथा जनता के प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। अच्युत देवराय ने अपना राज्याभिषेक तिरूपति मन्दिर में सम्पन्न कराया था। राजा के बाद 'युवराज' का पद होता था। युवराज राजा का बड़ा पुत्र व राज्य परिवार को कोई भी योग्य पुरुष बन सकता था। युवराज के राज्याभिषेक को युवराज पट्टभिषेकम कहते थे। विजयनगर में संयुक्त शासन की परम्परा भी विद्यमान थी, जेसे- हरिहर एवं बुक्का तथा विजय राय एवं देवराय। युवराज के अल्पायु होने की स्थिति में राजा अपने जीवन काल में ही स्वयं किसी मंत्री को उसका संरक्षक नियुक्त करता था।

इस काल के कुछ महत्वपूर्ण संरक्षक व्यवस्था ही विजयनगर के पतन में बहुत कुछ जिम्मेदार रही। विजयनगर के राजाओं ने अपने व्यक्तिगत धर्म के बाद थी धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अनुसरण किया। यद्यपि राज्य निरंकुश होता था पर नियन्त्रण तथा प्रशासनिक कार्यों में सहयोग करने के लिए एक 'मंत्रिपरिषद्' होती थी जिसमें प्रधानमंत्री, मंत्री, उपमंत्री, विभागों के अध्यक्ष तथा राजा के कुछ नजदीक के सम्बन्धी होते थे।

मंत्रियों के चयन में आनुवंशिकता की परम्परा का पालन होता था। मंत्रिपरिषद् के मुख्य अधिकारी को 'प्रधानी' या 'महाप्रधानी' कहा जाता था। इसकी स्थिति प्रधानमंत्री जैसी थी। इसकी तुलना मराठा कालीन पेशवा से की जा सकती है। यह राजा एवं युवराज के बाद तीसरे स्थान पर होता था।

मंत्रिपरिषद में कुल 20 सदस्य होते थे। मंत्रिपरिषद् के अध्यक्ष को 'सभानायक कहा जाता था। कभी-कभी प्रधानमंत्री भी मंत्रिपरिषद की अध्यक्षता करता था। राजा इस मंत्रिरपरिषद् की राय लेता था पर वह उसे मानने के लिए बाध्य नहीं था। टी.वी. महालिंगम् ने विजयनगर प्रान्तों के नायकों, सामन्त शासकों, विद्वानों व राज्यों के राजदूतों को शामिल करके गठित किया गया एक विशाल संगठन होता था।

विजयनगरकालीन मंत्रिपरिषद् की तुलना कौटिल्य के मंत्रिपरिषद् के साथ जा सकती है।

केन्द्र में दण्डनायक नाम का उच्च अधिकारी होता था। उसका यह पद पदबोधक न होकर विभिन्न अधिकारियों की विशेष श्रेणी को इंगित करता था। दंडनायक का अर्थ 'प्रशासन का प्रमुख' और 'सेनाओं का नायक' होता था। कहीं-कहीं मंत्रियों को भी दंडनायक की उपाधि प्रदान किये जाने का उल्लेख मिलता है।

दण्डनायक को न्यायाधीश, सेनापति, गवर्नर या प्रशासकीय अधिकारी आदि का कार्यभार सौंपा जा सकता था। कुछ अन्य अधिकारियों को 'कार्यकाता' कहा जाता था।

केन्द्र में एक सचिवालय की व्यवस्था होती थी जिसमें विभागों का वर्गीकरण किया जाता था। इन विभागों में 'रायसम' या सचिव, कर्णिकम या एकाउन्टेंट होते थे। रायसम राजा के मौखिक अधिकारों को लिपिबद्ध करता था। अन्य विभाग एवं उनके अधिकारी 'मानिय प्रधान', गृहमंत्री, मुद्राकर्त्ता, शाही-मुद्रा को रखने वाला अधिकारी आदि थे।

प्रांतीय प्रशासनः विजयनगर साम्राज्य का विभाजन प्रांत, राज्य या मंडल में किया गया था। कृष्णदेव राय के शासनकाल में प्रान्तों की संख्या सर्वाधिक 6 थी।

प्रान्तों में गवर्नर के रूप में राज परिवार के सदस्य या अनुभवी दण्डनायकों की नियुक्ति की जाती थी। इन्हें सिक्कों को प्रसारित करने, नये कर लगाने, पुराने कर माफ करने एवं भूमिदान करने आदि की स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

प्रांत के गवर्नर को भू-राजस्व का एक निश्चित हिस्सा केन्द्र सरकार को देना होता था। प्रांत को 'मंडल' एवं मंडल को 'कोट्टम' या जिले' में विभाजित किया गया था। कोट्टम को 'वलनाडु' भी कहा जाता था। कोट्टम का विभाजन 'नाडुओं' में हुआ था जिसकी स्थिति आज के परगना एवं ताल्लुका जैसी थी। नाडुओं को 'मेलाग्राम' था जिसकी स्थिति आज के परगना एवं ताल्लुका जैसी थी। नाडुओं को 'मेलाग्राम' में बाटा गया था। एक मेलाग्राम के अन्तर्गत लगभग 50 गांव होते थे।

'उर' या 'ग्राम' प्रशासन की बससे छोटी इकाई थी। इस गांवों के समूह को 'स्थल' एवं 'सीमा' भी कहा जाता था। विभाजन का क्रम इस प्रकार था-

1. **प्रांतः** मंडल-कोट्टम या वलनाडु।
2. **प्रकोट्टमः** नाडु-मेलाग्राम- उर या ग्राम। सामान्यतः प्रन्तों में राजपरिवार के व्यक्तियों (कुमार या राजकुमार) को ही नियुक्त किया जाता था। गवर्नरों को सिक्के जारी करने, नये कर लगाने, पुराने करों को माफ करने, भूमिदान देने जैसे अधिकार प्राप्त थे। संगम युग में गर्वनरों के रूप में शासन करने वाले राजकुमारों को उरैयर की उपाधि मिली हुई थी। चोल युग और विजयनगर युग के राजतंत्र में सबसे बड़ा अन्तर नायंकार व्यवस्था थी।

नायंकार व्यवस्थाः इस व्यवस्था की उत्पत्ति के बारे में इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ का मानना है कि विजयगनर की सेना के सेनानायकों को 'नायक' कहा जाता था, कुछ का मानना है कि नायक भू-सामन्त होते थे जिन्हें वेतन के बदले एवं स्थानीय सेना के खर्च को चलाने के लिए विशेष भू-खण्ड, जिसे 'अमरम' कहा जाता था, दिया जाता था। चूंकि ये अमरम भूमि का प्रयोग करते थे, इसलिए इन्हें 'अमरनायक' भी कहा जाता था। अमरम भूमि का आय का एक हिस्सा सुरक्षा एवं अपराधों को रोकने के दायित्व का भी निर्वाह करना होता था। इसके

PERFECTION IAS

अतिरिक्त उसे जंगलों को साफ करवाना एवं कृषि योग्य भूमि का विस्तार भी करना होता था। नायंकारों के आंतरिक मामलों में राजा हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। इनका पद आनुवांशिक होता था। नायकों का स्थानान्तरण नहीं होता था राजधानी में नायकों के दो सम्पर्क अधिकारी- एक नायक की सेना को सेनापति और दूसरा प्रशासनिक अभिकर्ता 'स्थानपति' रहते थे।

अच्युतदेव राय ने नायकों की उच्छृंखलता को रोकने के लिए 'महामडलेश्वर' या विशेष कमिश्नरों की नियुक्ति की थी। नायंकार व्यवस्था में पर्याप्त रूप में सामंतवादी लक्षण थे, जो विजयनगर साम्राज्य के पतन का कारण बनी।

आयंगार व्यवस्था: प्रशासन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए प्रत्येक ग्राम को एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में संगठित किया गया था। इन संगठित ग्रामीण इकाइयों पर शासन हेतु एक 12 प्रशासकीय अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। इनकों सामूहिक रूप से 'आयंगार' कहा जाता था। ये अवैतनिक होने थे। इनकी सेवाओं के बदले सरकार इन्हें पूर्णत: कर मुक्त एवं लगान मुक्त भूमि प्रदान करती थी। इनका पद 'आनुवंशिक' होता था। यह अपने पद को किसी दूसरे व्यक्ति को बचे या गिरवी रख सकता था।

ग्राम स्तर की कोई भी सम्पत्ति या भूमि इन अधिकारियों की इजाजत के बगैर न तो बेची जा सकती थी ओर न ही दान दी जाती सकती थी। कर्णिक नामक आयंगार के पास जीमन के क्रय एवं विक्रय से सम्बन्धित समस्त दस्तावेज होते थे। इस व्यवस्था ने ग्रामीण स्वतंत्रता का गला घोंट दिया।

स्थानीय शासन: विजयनगर काल में चोलकालीन सभा को कहीं-कहीं महासभा, उम्र एवं महाजन कहा जाता था। गांव को अनेक वार्डों या मुहल्लों में विभाजित किया गया था। 'सभा' में विचार-विमर्श के लिए गांव या क्षेत्र विशेष के लोग भाग लेते थे। 'सभा' नई भूमि या अन्य प्रकार की सम्पत्ति उपलब्ध कराने, गांव की सार्वजनिक भूमि को बेचने, ग्रामीणों की तरफ से सामूहिक निर्णय लेने, गाव की भूमि को दान मं देने के अधिकार अपने पास सुरक्षित रखती थी। यदि कोई भूस्वामी लम्बे समय तक लगान हीं दे पाता था तो ग्राम सभाएं उसकी जमीन जब्त कर लेती थी। न्यायिक आधिकारों के अन्तर्गत सभा के पास दीवानी मुकद्दमों एवं फौजदारी के छोटे-मोटे मामलों का निर्णय करने का अधि कार होता था।

'नाडु' गांव की बड़ी राजनीतिक इकई के रूप में प्रचलित थी। नाडु की सभा को नाडु एवं सदस्यों को 'नात्तवार' कहा जाता था। अधि कार क्षेत्र काफी विस्तृत होते थे पर शासकीय नियंत्रण में रहना पड़ता था। विजयनगर के शासन काल में इन स्थानीय इकाइयों का ह्रास हुआ। 'सेनेटेओवा' गांव के आय-व्यय की देखभाल करता था, 'तलरी' गांव के चौकीदार को कहते थे। 'बेगार' गांव में बेगार, मजदूरी आदि की देखभाल करता था।

ब्रह्मदेव ग्रामों (ब्राह्मणों को भू-अनुदान के रूप में प्राप्त ग्राम) की सभाओं को चतुर्वेदीमंगलम् कहा गया है। गैर ब्रह्मदेव ग्राम की सभा उर कहलाती थी।

इस समय आय के प्रमुख स्रोत थे-लगान, सम्पत्ति कर, व्यासायिक कर, उद्योगों पर कर, सिंचाई कर, चारागाह कर, उद्यान कर एवं अनेक प्रकार के अर्थ दण्ड।

भू-राजस्व व्यवस्था: विजयनगर साम्राज्य द्वारा वसूल किये जाने वाले विविध करों के नाम थे- कदमाई, मगमाइ, कनिक्कई, कत्तनम्, कणम् वरम्, भोगम्, वारिपत्तम, इराई और कत्तायम्। 'शिष्ट' नामक भूमिकर विजयनगर राज्य की आय का प्रमुख एवं सबसे बड़ा स्रोत था। राज्य उपज का 1/6 भाग कर के रूप में वसूल करता था। कर निर्धारण से पूर्व भमि का वर्गीकरण देवदान, ब्रह्मदेव में किया जाता था। कृष्णदेव राय के शासन काल में भूमि का एक व्यापक सर्वेक्षण करवाया गया तथा भूमि की उर्वरता के अनुसार उपज का 1/3 या 1/6 भाग कर के रूप में निर्धारित किया गया। सम्भवत: राजस्व की दर विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग थी। आय का एक अन्य स्त्रोत था- सिंचाई कर जिसे तमिल प्रदेश में 'दासावान्दा' एवं आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक में 'कटूकोडेज' कहा गया। यह कर उन व्यक्तियों से लिया जाता था जो सिंचाई के साध नों का उपयोग करते थे।

ब्राह्मणों के अधिकार वाली भूमि से उपज का 20वां भाग तथा मंदिरों की भूमि से उपज का 30वां भाग लगान के रूप में वसूला जाता था। विजयनगर साम्राज्य में कोई ऐसा वर्ग नहीं था जिससे व्यवसायिक कर नहीं लिया जाता हो। रामराय ने केवल नाइयों को व्यावसायिक कर से मुक्त कर दिया। केन्द्रीय राजस्व विभाग को अठनवे (अयवन) कहा जाता था।

सामाजिक एवं सामुदायिक कर के रूप में विवाह कर लिया जाता था। विधवा से विवाह करने वाले इस कर से मुक्त होते थे। कृष्णदेव राय ने विवाह कर को समाप्त कर दिया था।

राज्य का राजस्व वस्तु एवं नकद दोनों ही रूपों में वसूल किया जाता था। विजयनगर काल में मंदिरों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। वे सिंचाई परियोजनाओं के साथ-साथ बैंकिगं गतिविधियों का संचालन भी करते थे। इनके पास सुरक्षित भूमि को 'देवदान' अनुदान कहा जाता था।

एक शिलालेख के उल्लेख के आधार पर माना जाता है कि इस सम मंदिरों में लगभग 370 नौकर होते थे। भंडारवाद ग्राम वे ग्राम थे जिनकी भूमि सीधे राज्य के नियंत्रण में थी। यहां के किसान राज्य को कर देते थे।

उंबलि: ग्राम में विशेष सेवाओं के बदले दी जाने वाली कर मुक्त भूमि की भू-धारण पद्धति 'उंबलि' थी।

रत्त (खत्त) कोड़गे: युद्ध में शौर्य का प्रदर्शन करने वाले या अनुचित रूप से युद्ध में मृत लोगों के परिवार को दी गई भूमि।

कुट्टगि: ब्राह्मण, मंदिर एवं बड़े भू-स्वामी जो स्वयं खेती नहीं कर सकते थे, वे खेती के लिए किसानों को पट्टे पर भूमि देते थे। इस तरह की पट्टे पर ली गयी भूमि 'कुट्टगि' कहलाती थी।

कुदि: वे कृषक मजदूर होते थे जो भूमि के क्रय-विक्रय के साथ ही हस्तांतरित हो जाते थे, परन्तु इन्हें इच्छापूर्वक कार्य से विलग नहीं किया जा सकता था।

व्यापार: विजयनगर काल में मलाया, बर्मा, चीन, अरब, ईरान, अफ्रीका, अबीसीनिया एवं पुर्तगाल से व्यापार होता था। मुख्य निर्यातक वस्तुएं थीं- कपड़ा, चावल, गन्ना, इस्पात, मसाले, इत्र, शोरा, चीनी आदि। आयात की जाने वाली वस्तुएं थीं- अच्छी नस्ल के घोड़े, हाथी दांत, मोती बहुमूल्य पत्थर, नारियल, पॉम, नमक आदि। मोती फारस की खाड़ी से तथा बहुमूल्य पत्थर पेगू से मंगाये जाते थे। नूनिज ने हीरों के

PERFECTION IAS

ऐसे बन्दरगाह की चर्चा की है जहां विश्व भर में सर्वाधिक हीरों की खानें पायी जाती थीं। व्यापार मुख्यत: चोट्टियों के हाथों में केन्द्रित था। दस्तकार वर्ग के व्यापारियों को वीर पांचाल कहा जाता था।

मुद्रा व्यवस्था: विजयगनर में स्वर्ण का सर्वाधिक प्रसिद्ध सिक्का वराह था। जिसका वजन 52 ग्रेन था और जिसे विदेशी यात्रियों ने हूण, परदौस या पैगोडा के रूप में उल्लिखित किया है। चांदी के छोटे सिक्के 'तार' कहलाते थे। सोने के छोटे सिक्के को प्रताप तथा फणम् कहा जाता था। इन स्वर्ण मुद्राओं पर देव तिरुपति अर्थात् भगवान वेंकटेश्वर की मूर्ति का अंकन मिलता है।

विजनगर साम्राज्य के संस्थापक हरिहर के स्वर्ण सिक्कों (वराह) पर हनुमान एवं गरुड़ की आकृतियां अंकित हैं। तुलुव वंश के सिक्कों पर गरुड़ उमा, महेश्वर, वेंकटेश और बालकृष्ण की आकृतियां एवं सदाशिव राय के सिक्कों पर लक्ष्मी नारायण की आकृति अंकित हैं। अरविडु वंश के शासक वैष्णव धर्मानयुायी थे, अत: उनके सिक्कों पर वेंकटेश, शंख एवं चक्र अंकित हैं।

सैन्य व्यवस्था: राज्य का प्रधान न्यायाधीश राजा होता था। भयंकर अपराध के लिए शरीर के अंग विच्छेन का दंड दिया जाता था। प्रान्तों में प्रान्पति तथा गांवों में आयंगार न्याय करता था। न्याय व्यवस्था हिन्दू धर्म पर आधारित थी। पुलिस विभाग का खर्च वेश्याओं पर लगाये गये कर से चलता था।

सामाजिक दशा

विजयनगर साम्राज्य में समाज चार वर्गों में विभाजित था, जो इस प्रकार थे- विप्रलु, राजलु, मोतिकिरतलु और नलवजटिवए, जिनका संबंध क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र से था। समाज में ब्राह्मणों को चारों वर्णों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। क्षात्रियों के बारे में विजयनगरकालीन समाज में कोई जानकारी नहीं मिलती।

ब्राह्मणों को अपराध के लिए कोई सजा नहीं मिलती थी। मध्यवर्गीय लोगों में शेट्टियों एवं चोट्टियों का महत्वपूर्ण स्थान था। अधि कांश व्यापार इन्हीं के द्वारा किया जाता था। व्यापार के अतिरिक्त ये लोग लिपिक एवं लेखाकार्यों में भी निपुण थे।

चोट्टियों की तरह व्यापार में निपुधा दस्तकार वर्ग के लोगों को 'वीर पांचाल' कहा जाता था। उत्तर भारत दक्षिण भारत में आकर बसे लोगों को 'बडवा' कहा गया।

निम्न व छोटे समूह के अन्तर्गत लोहार, बढ़ई, मूर्तिकार, स्वर्णकार व अन्य धातुकर्मी तथा जुलाहे आते थे। जुलाहे मंदिर क्षेत्र में रहते थे और साथ ही मंदिर प्रशासन व स्थानीय घरों के आरोपण में उनका सहयोग होता था।

इस दौरान दास प्रथा का प्रचलन था। महिला एवं पुरुष दोनों वर्ग के लोग दास हुआ करते थे। मनुष्यों के खरीदे एवं बेचे जाने को 'बेस-वाग' कहा जाता था। लिये गये ऋण को न पाने एवं दिवालिया होने की स्थिति में ऋण लेने वालों को दास बनना पड़ता था।

विजनगर साम्राज्य के प्रमुख पदाधिकारी

अधिकारी	प्रमुख
नायक	बड़े सेनानायक
महाना यकाचार्य	ग्राम सभाओं के कार्यवाहियों का निरीक्षण करने वाला अधिकारी
दण्डनायक	सैनिक विभाग (कंदाचार) का प्रमुख तथा सेनापति
प्रधानी अथवा महाप्रधानी	मंत्रिपरिषद का प्रमुख
रायसम्	सचिव
कर्णिकम्	लेखाधिकारी
अमरनायक	सामन्तों का वह वर्ग जो राज्य को सैन्य मदद देने के लिए बह्य था
आयंगार	वंशानुगत ग्रामीण अधिकारी
पलाइयागार (पालिगा)	जमींदार
स्थानिक	मंदिरों की व्यवस्था करने वाला अधिकारी
सेनंटओवा	ग्राम का लेखाधिकारी
तलर	ग्राम का रखवाला
गौड	ग्राम प्रशासक
अंत्रिमार	ग्राम प्रशासन का एक अधिकारी
परूपत्यगार	किसी स्थान विशेष में राजा या गवर्नर का प्रतिनिधि

PERFECTION IAS

विजयनगर कालीन समाज में स्त्रियों की सम्माजनक स्थिति थी। संपूर्ण भारतीय इतिहास में विजयनगर ही ऐसा एकमात्र साम्राज्य था, जिसने विशाल संख्या में स्त्रियों को राजकीय पदों पर नियुक्त किया था। किन्तु समाज में बाल विवाह, देवदासी एवं सती प्रथा जैसी कुप्रथाएं भी विद्यमान थीं। राजा की अंगरक्षिकाओं के रूप में स्त्रियों की नियुक्ति होती थी। मंदिरों में देवपूजा के लिए रहने वाली स्त्रियों को देवदासी कहा जाता था जो आजीवन कुंआरी रहती थी।

गणिकाओं का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। ये दो तरह की होती थी–

1. मंदिरों से सम्बन्धित और
2. स्वतन्त्र ढंग से जीवन-यापन करने वाली। ये पर्याप्त शिक्षित तथा विशेषाधिकार सम्पन्न होती थीं। राजा एवं सामन्त लोग बिना किसी आपत्ति के इनसे सम्बन्ध बनाते थे।

विजयनगर साम्राज्य के प्रमुख राजवंश

राजवंश	**संस्थापक**
शासन काल	
1. संगम वंश 1336 से 1485 ई.	हरिहर एवं बुक्का प्रथम
2. सालुव वंश 1485 से 1505 ई.	नरसिंह सालुव
3. तुलुव वंश 1505 से 1570 ई.	वीर नरसिंह
4. अरविडु वंश 1570 से 1650 ई. (लगभग)	तिरुमल

विजयनगर कालीन समाज में सती प्रथा का प्रचलन नायकों एवं राजपरिवार तक ही सीमित था। एडवर्ड बार्बोसा भी विजयनगर में प्रचलित सती प्रथा का उल्लेख करता है। राज्य ने व्यवहारिक दृष्टि से सती प्रथा को प्रश्रय नहीं दिया। युद्ध में शौर्य का प्रदर्शन करने के कारण उन व्यक्तियों को सम्मान के रूप में पैर में 'गंडपेंद्र' का कड़ा पहनाया जाता था। बाद में यह सम्मान असैनिक सम्मान के रूप में मंत्रियों, विद्वानों, सैनिकों एवं अन्य सम्माननीय व्यक्तियों को दिया जाने लगा।

विजयनगर नरेश शिक्षा को प्रत्यक्ष प्रोत्साहन नहीं देते थे। मंदिर, मठ एवं अग्रहार मुख्य शिक्ष के केन्द्र थे। अग्रहारों में मुख्य रूप से वेदों की शिक्षा दी जाती थी। तुलुग वंश ने शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया।

मनोरंजन के क्षेत्र में नाटक एवं संगीतमय अभिनय (यक्षगान) का प्रचलन था। बोमघाट (छाया-नाटक) नाटक काफी सराहा जाता था। शतरंज, जुआ व पासे के खेल के प्रचलन में होने का उल्लेख मिलता है। कृष्णदेव राय स्वयं शतरंज के खिलाड़ी थे।

धार्मिक एवं सांस्कृति स्थिति

विजयनगर कालीन शासकों ने हिन्दू धर्म तथा संस्कृति को प्रोत्साहित किया। यह दक्षिण भारत का एकमात्र हिन्दू राज्य था जिसने हिन्दू धर्म की संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखा। विजयनगर के शासकों ने स्थापत्यकला, नाट्कला, प्रतिमाकला एवं भाषा और साहित्य के क्षेत्र में भी विशेष रूचि दिखाई। हम्पी में अवस्थित प्रसिद्ध विजय विट्ठल मंदिर के 56 तक्षित स्तम्भ संगीतमय स्वर निकालते हैं। इस मंदिर में स्थापत्य कला का उत्कृष्ण प्रदर्शन किय गया है।

भाषा और साहित्य

विजयनगर साम्राज्य में दक्षिण भारतीय- तेलुगू, कन्नड़, तमिल के अतिरिक्त संस्कृत भाषा का भी विकास हुआ। वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायण तथा माधव विद्यारण्य विजयनगर के थे। विजयनगर काल में लिखी गयी कुछ कृतियां और उनके रचनाकार इस प्रकार हैं–

रचना	**रचनाकार**
इरूसलय विलक्कम	हरिदास
धर्मनाथ पुराण	मधुर
आमुक्त-माल्यद	कृष्णदेव राय
स्वारोचित सम्भव	पेद्दन
मनुचरित	तेनालीराम
पाण्डुरंग माहत्म्य	तेनालीराम
रामकृष्ण कथे	विशेश्वर
रसवर्ण सुधारक	लकन्ना
शिवतत्व चिंतामणि	जक्कनार्थ
नूरोदुस्थल	हथ्य
प्रबुद्धराय चरित	विश्वेश्वर
चमत्कार-चन्द्रिका	हथ्य
परिजातहरण	विशेश्वर
जाम्बवती कल्याण	कृष्णदेव राय
प्रमुलिंग लीले	चामरस
भाचिंतारत्न	मल्लनार्थ
सत्येन्द्र चोलकथे	मल्लनार्थ

PERFECTION IAS

6. मुगल साम्राज्य (1526-1707 ई.)

1526 में पानीपत के प्रथम युद्ध में दिल्ली सल्तनत के अंतिम वंश 'लोदी वंश' के सुल्तान इब्राहीम लोदी के पराजय के साथ ही भारत में गुगल वंश की स्थापना हुई। इस वंश का संस्थापक जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर था।

बाबर (1526-1530 ई.)

14 फरवरी, 1483 ई. को फरगाना में जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर का जन्म हुआ। बाबर अपने पिता उमर शेख मिर्जा की ओर से तैमूर का पांचवा एवं माता कुतलुग निगार खानम की ओर से चंगेज (मंगोल नेता) का चौदहवां वंशज था। उसका परिवार तुर्की जाति के चगताई वंश के अन्तर्गत आता था। बाबर अपने पिता की मृत्यु के बाद 11 वर्ष की अल्पायु में 8 जून, 1494 ई. को मावरा उन्नहर की एक छोटी सी रियासत फरगना का शासक बना। उसने अपना राज्याभिषेक अपनी दादी 'ऐसान दौलत बेगम' के सहयोग से करवाया।

बाबर ने अपने फरगाना के शासन काल में 1501 ई. में समरकन्द पर अधिकार किया जा मात्र आठ महीने उसके कब्जे में रहा। 1502 ई. में उजबेक सरदार शैबानी खां ने सरेपुल के युद्ध में बाबर को परास्त कर उसे समरकन्द से निष्कासित कर दिया। लगभग दो वर्षों तक निर्वासित जीवन बिताने के बाद 1504 ई. में बाबर ने काबुल और गजनी पर अधि कार कर लिया।

काबुल विजय के उपरांत बाबर ने 1507 ई. में अपने पूर्वजों द्वारा धारण की गई उपाधि 'मिर्जा' का त्याग कर नई उपाधि 'पादशाह' ध ारण की।

बाबर की भारत पर विजय: बाबर का भारत के विरुद्ध किया गया प्रथम अभियान 1519 ई. में यूसुफजाई जाति के विरुद्ध था। इस अभियान में बाबर ने 'बाजौर' और 'भीरा' को अपने अधिकार में किया। यह बाबर का प्रथम भारतीय अभियान था। इस अभियान के दौरान पहली बार भारत के किसी युद्ध में तोपों एवं बंदूकों का प्रयोग किया गया।

सितम्बर, 1519 में दूसरी बार बाबर ने खैबर दर्रे की ओर प्रस्थान किया परन्तु बदख्शां के विद्रोह की सूचना मिलने के कारण वह काबुल वापस लौट गया। 1520 ई. मे अपने तीसरे अभियान में बाबर ने 'बाजौर' एवं 'भीरा' को पुन: जीता, साथ ही 'स्यालकोट' एवं 'सैयदपुर' को भी अपने अधिकार में कर लिया।

1524 ई. के चौथे अभियान के अन्तर्गत इब्राहिम लोदी एवं दौलत खां के मध्य मतभेद हो जाने के कारण दौलत खां (गवर्नर, लाहौर) ने अपने पुत्र दिलावर खां एवं आलम खां (बहलोल लोदी का पुत्र) को बाबर को भारत पर आक्रमण हेतु आमंत्रित करने के लिए भेजा, सम्भवत: इसी समय राणा सांगा ने भी बाबर को भारत पर आक्रमण के लिए नियंत्रण दिया था।

बाबर को भारत पर आक्रमण के लिए आमंत्रित करने के पीछे सम्भवत: कुछ कारण इस प्रकार थे- दौलत खां पंजाब में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखना चाहता था, आलम खां किसी तरह दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करना चाहता था और राणा सांगा सम्भवत: बाबर के द्वारा अफगानों की शक्ति को नष्ट करवा कर स्वयं दिल्ली पर अधि कार करना चाहता था।

अपने चौथे अभियान 1524 ई. में बाबर ने 'लाहौर' एवं 'दीपालपुर' पर अधिकार कर लिया। बाबर द्वारा दौलत खां को लाहौर नहीं दिये जाने के कारण वह विद्रोही हो गया। परन्तु दौलत खां के पुत्र दिलावर खां ने अपने पिता के साथ विश्वासघात कर बाबर से जा मिला।

बाबर ने इस सहयोग के लिए दिलावर खां को सुल्तानपुर की जागीर तथा 'खानेखाना' की उपाधि प्रदान किया। बाबर के वापस लौटते ही दौलत खां ने सुल्तानपुर तथा दिपालपुर पर अधिकार कर लिया।

नवम्बर, 1526 में बाबर द्वारा किये गये पांचवें अभियान में, जिसमें बदख्शां से सैनिक टुकड़ी के साथ बाबर का पुत्र हुमायूं भी आ गया था, सर्वप्रथम दौलत खां को समर्पण के लिए विवश कर बनदी बनाकर भेज दिया गया, शीघ्र ही आलम खां ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। इस तरह पूरा पंजाब बाबर के कब्जे में आ गया।

पानीपत का प्रथम युद्ध (20 अप्रैल, 1526 ई.)

यह युद्ध सम्भवत: बाबर की महत्वाकांक्षी योजनाओं की अभिव्यक्ति थी। यह युद्ध दिल्ली के सुल्तान इब्राहिम लोदी (अफगान) एवं बाबर के मध्य लड़ा। गया। 12 अप्रैल, 1526 ई. को दोनों सेनायें पानीपत के मैदान में आमने सामने हुईं पर दोनों के मध्य युद्ध का आरम्भ 20 अप्रैल को हुआ।

ऐसा माना जाता है कि इस युद्ध का निर्णय दोपहर तक में ही हो गया। युद्ध में इब्राहिम लोदी बुरी तरह परास्त हुआ तथा मार दिया गया। बाबर ने अपनी कृति 'बाबरनामा' में इस युद्ध को जीतने में मात्र 12000 सैनिकों के उपयोग का जिक्र किया है, किन्तु इस विषय पर इतिहासकारों में मतभेद है। इस में बाबर ने पहली बार प्रसिद्ध 'तुलगमा युद्ध नीति' का प्रयोग किया।

इसी युद्ध में बाबर ने अपने दो प्रसिद्ध निशानेबाज उस्ताद अली एवं मुस्तफा की सेवायें ली। इस युद्ध में लूटे गये धन को बाबर ने अपने सैनिक अधिकारियों, नौकरों एवं सगे सम्बन्धियों में बांटा। सम्भवत: इस बंटवारे में हुमायूं को वह 'कोहिनूर हीरा' प्राप्त हुआ जिसे उसने ग्वालियर नरेश 'राजा विक्रमजीत' से छीना था। इस हीरे की कीमत के बारे में माना जाता है कि इसके मूल्य द्वारा पूरे संसार का आधे दिन का खर्च पूरा किया जा सकता था।

भारत विजय के ही उपलक्ष्य में बाबर ने प्रत्येक काबुल निवासी को एक-एक चांदी के सिक्के उपहार में दिये। अपनी इसी उदारता के कारण उसे 'कलन्दर' की उपाधि दी गई।

खानवा का युद्ध (16 मार्च, 1527 ई.)

यह युद्ध बाबर एवं मेवाड़ के राणा सांगा के मध्य लड़ा गया। इस युद्ध के कारणों के विषय में इतिहासकारों के अनेक मत हैं। पहला, चूंकि पानीपत के युद्ध के पूर्व बाबर एवं राणा सांगा में हुए समझौते के तहत इब्राहिम के खिलाफ सांगा को बाबर के सैन्य अभियान में सहायता करनी थी, जिससे राणासांगा बाद में मुकर गया।

दूसरा, सांगा बाबर को दिल्ली का बादशाह नहीं मानता था। इन दोनों कारणों से अलग कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यह युद्ध

PERFECTION IAS

बाबर एवं राणा सांगा की महत्वाकांक्षी योजनाओं का परिणाम था। बाबर सम्पूर्ण भारत को रौंदना चाहता था तथा राणा सांगा तुर्क अफगान राज्य के खण्डहरों के अवशेष पर एक हिन्दू राज्य की स्थापना करना चाहता था, परिणामस्वरूप दोनों सेनाओं के मध्य 16 मार्च, 1527 ई. को खानवा में युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्ध में राणा सांगा का साथ मारवाड़ लोदी दे रही थे। युद्ध में राणा के संयुक्त मोर्चे की खबर से बाबर के सौनिकों का मनोबल गिरने लगा।

बाबर अपने सैनिकों के उत्साह को बढ़ाने के लिए शराब पीने और बेचने पर प्रतिबन्ध की घोषणा कर शराब के सभी पात्रों को तुड़वा कर शराब न पीने की कसम ली, उसने मुसलमानों से 'तमगा कर' न लेने की घोषणा की।

तमगा एक प्रकार व्यापारिक कर था जिसे राज्य द्वारा लगाया जाता था। इस तरह खानवा के युद्ध में भी पानीपत युद्ध की रणनीति का उपयोग करते हुए बाबर ने सांगा के विरुद्ध सफलता प्राप्त की। युद्ध क्षेत्र में राणा सांगा घायल हुआ, पर किसी तरह अपने सहयोगियों द्वारा बचा लिया गया।

कालान्तर में अपने किसी सामन्त द्वारा जहर दिये जाने के कारण राणा सांगा की मृत्यु हो गई। खानवा के युद्ध को जीतने के बाद बाबर ने 'गाजी' की उपाधि धारण की।

चन्देरी का युद्ध (29 जनवरी, 1528 ई.)

खानवा के युद्ध के उपरान्त बाबर के घुमक्कड़ एवं अस्थिर जीवन में स्थिरता आई। 29 जनवरी, 1528 ई. को बाबर ने 'चंदेरी के युद्ध' में वहां के राजा मेदिनी राय को परास्त किया।

चंदेरी युद्ध के बाद बाबर ने राजपूताना के कटे हुए सिरों की मीनार बनवाई तथा जिहाद का नारा दिया। मेदिनी राय की दो की दो पुत्रियों का विवाह कामरान एवं हुमायूं से कर दिया गया।

घाघरा का युद्ध (5 मई, 1529 ई.)

5 मई, 1529 ई. को बाबर ने 'घाघरा के युद्ध' में बंगाल एवं बिहार की संयुक्त सेना को परास्त किया। घाघरा युद्ध जल एवं थल पर लड़ा गया था। परिणामस्वरूप बाबर का साम्राजय ऑक्सस से घाघरा एवं हिमालय से ग्वालियर तक पहुंच गया।

घाघरा युद्ध के बाद बाबर ने बंगाल के शासक नुसरत शाह से संधि कर उसके साम्राजय की संप्रभुता को स्वीकार किया। नुसरत शाह ने बाबर को आश्वासन दिया कि वह बाबर के शत्रुओं को अपने साम्राज्य में शरण नहीं देगा।

लगभग 48 वर्ष की आयु में 26 दिसम्बर, 1530 ई. को बाबर की आगरा में मृत्यु हो गई। प्रारम्भ मे उसके शव को आगरा के आराम बाग (चारबाग) में दफना दिया गया। बाद में शेरशाह के शासनकाल के दौरान बाबर की अस्थियों को उसकी विधवा पत्नी बीबी मुबारक युसुफजई ने काबुल के एक उद्यान में दफन करवा दिया जिसका निर्माण स्वयं बाबर ने इसी उद्देश्य से किया था।

बाबर की उपलब्धियां: सम्भवत: बाबर कुषाणों के बाद पहला शासक था, जिसने काबुल एवं कंधार को अपने पूर्ण नियंत्रण में रखां इसने भारत में अफगान एवं राजपूतों की शक्ति को समाप्त कर 'मुगल साम्राज्य' की स्थापना की जो लगभग पौने दो सौ वर्षों तक जीवित रहा। बाबर ने भारत पर आक्रमण कर एक नई युद्ध नीति का प्रचलन किया।

बाबर ने सड़कों के माप के लिए गज-ए-बाबरी की प्रयोग का शुभारम्भ किया।

बाबर योग्य शासक होने के साथ ही तुर्की भाषा का विद्वान था। उसने तुर्की भाषा में अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' की रचना की, जिसका फारसी भाषा में इनुवाद बाद में अब्दुल रहीम खानखाना ने किया।

लीडेन एवं अर्सकिन ने 1826 ई. में बाबरनामा का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। बेवरिज ने इसका एक संशोधित अंग्रेजी संस्करण निकाला। इसके अतिरिक्त बाबर को 'मुबइयान' नामक पद्य शैली का जन्मदाता निकाला।

इसके अतिरिक्त बाबर ने खत-ए-बाबरी नामक एक लिपि का भी अविष्कार किया। बाबर ने अपनी आत्मकथा बाबरनामा में केवल पंच मुस्लिम शासकों-बंगाल, दिल्ली, मालवा, गुजरात एवं बहमनी राज्यों तथा दो हिन्दू शासकों मेवाड़ एव विजयनगर का उल्लेख किया है।

बाबर के बारे में प्रमुख इतिहासकारों का मत

'स्मिथ' ने बाबर को, 'अपने युग के एशियाई शासकों में सबसे अधिक प्रतिभाशाली एवं किसी देश तथा काल के सम्राटों में उच्च पद पाने योग्य बताया।'' रशब्रुक' ने तो एक व्यक्ति एवं शासक के रूप में बाबर की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

'इलियट' ने कहा कि 'प्रसन्न चित्त, वीर, महान, विचारशील तथा निष्पक्ष व्यक्तित्व के कारण यदि बाबर का पालन-पोषण एवं प्रशिक्षण इंग्लैड में होता तो अवश्य ही वह 'हेनरी चतुर्थ' होता।

हुमायूं (1530-1556 ई.)

नासिरुद्दीन मुहम्मद हुमायूं का जन्म बाबर की पत्नी 'माहम अनगा' के गर्भ से 6 मार्च, 1508 ई. कसे काबुल में हुआ था। बाबर के 4 पुत्रों-हुमायूं, कामरान, अस्कारी और हिन्दाल में हुमायूं सबसे बड़ा था। बाबर ने उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। था।

भारत में राज्याभिषेक के पूर्व 1520 ई. में 12 वर्ष की अल्पायु में उसे बदख्यां का सूबेदार नियुक्त किया गया। बदख्शां के सूबेदार के रूप में हुमायूं ने भारत के उन सभी अभियानें में भाग लिया जिनका नेतृत्व बाबर ने किया।

26 दिसम्बर, 1530 को बाबर की मृत्यु के बाद 29 दिसम्बर, 1530 ई. को आगरा में 23 वर्ष की आयु में उसका (हुमायूं) राज्याभिषेद किया गया। बाबर ने हुमायूं को गद्दी देने के साथ ही साथ विस्तृत साम्राज्य को अपने भाइयों में बांटने का निर्देश भी दिया था, अत: उसने अस्करी को सम्भल, हिन्दाल को मेवात तथा कामरान को पंजाब की सूबेदारी प्रदान की थी।

साम्राज्य का इस तरह से किया गया विभाजन हुमायूं की भयंकर भूलों मे से एक थ जिसके कारण उसे अनेक आन्तरिक कटिनाइयों का सामना करना पड़ा और कालान्तर में हुमायूं के भाइयों ने उसका साथ नहीं दिया।

वास्तव में अविवेकपूर्ण ढंग से किया गया साम्राज्य का यह विभाजन कालान्तर में हुमायूं के लिए घातक सिद्ध हुआ। यद्यपि उसके सबसे प्रबल शत्रु अफगान थे, किन्तु भाइयों का असहयोग और हुमायूं की कुछ वैयाक्तिक कमजोरियों उसकी असफलता का कारण सिद्ध हुई।

PERFECTION IAS

हुमायूं का सैन्य अभियान

कालिंजर का आक्रमण (1531 ई.): हुमायूं को कालिजंर अभियान गुजरात के शासक बहादुर शाह की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए करना पड़ा। कालिंजर पर आक्रमण हुमायूं का पहला आक्रमण था। कालिंजर के किले पर आक्रमण के समय ही उसे यह सूचना मिली कि अफगान सरदार महमूद लोदी बिहार से जौनपुर की ओर बढ़ रहा है। अत: कालिंजर के राजा प्रतापरूद्र देव से धन लेकर हुमायूं वापस जौनपुर की ओर चला आया।

दौहरिया का युद्ध (1532 ई.): जौनपुर की आरे अग्रसर हुमायूं की सेना एवं महमूद लोदी की सेना की बीच अगस्त, 1532 में दौहरियां नामक स्थान पर संघर्ष हुआ जिसमें महमूद की पराजय हुई। इस युद्ध में अफगान सेना का नेतृत्व महमूद लोदी ने किया था।

चुनार का घेरा (1532 ई.): हुमायूं के चुनार किले पर आक्रमण के समय यह किला अफगान नायक शेरखां के कब्जे में था। 4 महीने लगातार किले को घेरे रहने के बाद शेरखां एवं हुमायूं में एक समझौता हो गया। समझौते के अन्तर्गत शेरखां ने हुमायूं की अधीनता स्वीकार करते हुए अपने पुत्र कुतुब खां को एक अफगान सैनिक टुकड़ी के साथ हुमायूं की सेना में भेजना स्वीकार कर लिया तथा बदले में चुनार का किला शेरखां के अधिकार में छोड़ दिया गया।

हुमायूं का शेरखां को बिना पराजित किये छोड़ देना उसकी एक और भूल थी। इस सुनहरे मौके का फायदा उठाकर शेरखां ने अपनी शक्ति एवं संसाधनों में वृद्धि कर लिया। दूसरी तरफ हुमायूं ने इस बीच अपने धन का अपव्यय किया तथा 1533 ई. में हुमायूं ने दिल्ली में 'दीनपनाह' नाम के एक विशाल दुर्ग का निर्माण करवाया, जिसका उद्देश्य था- मित्र एवं शत्रु को प्रभावित करना।

1534 ई. में बिहार में मुहम्मद जमान मिर्जा एवं मुहम्मद सुल्तान मिर्जा के विद्रोह को हूमाय्रू ने सफलतापूर्वक दबाया।

बहादुरशाह से युद्ध (1535-1536 ई.): गुजरात के शासक बहादुर शाह ने 1531 ई. में मालवा तथा 1532 ई. में 'रायसीन' के किले पर अधिकार कर लिया।

1534 ई. में उसने चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसे संधि के लिए बाध्य किया। बहादुर शाह ने टर्की के कुशल तोपची रूमी खां की सहायता से एक बेहतर तोपखाने का निर्माण करवाया। दूसरी तरफ शेर खां ने 'सूरजगढ़ के युद्ध' में बंगाल को हरा कर काफी सम्मान अर्जित कर लिया। उसकी बढ़ती हुई शक्ति हुमायूं के लिए चिन्ता का विषय थी, पर हुमायूं की पहली समस्या बहादुर शाह था।

बहादुरशाह एवं हुमायूं के मध्य 1535 ई. में 'सारंगपुर' में संघर्ष हुआ। बहादुर शाह पराजित होकर मांडू भाग गया। इस तरह हुमायूं द्वारा मांडू एवं चम्पानेर पर विजय के बाद मालवा एवं गुजरात उसके अधिकार में आ गया।

इसके पश्चात् बहादुरशाह ने चित्तौड़ का घेरा डाला। चित्तौड़ के शासक विक्रमाजीत की मां कर्णवती ने इस अवसर पर हुमायूं को राखी भेजकर उससे बहादुरशाह के विरुद्ध सहयाकता मांगी। हालांकि बहादुरशाह के एक काफिर राज्य की सहायता न करने के निवेदन को हुमायूं द्वारा स्वीकार कर लिया गया। एक वर्ष बाद बहादुर शाह ने पुर्तगालियों के सहयोग से पुन: 1536 ई. में गुजरात एवं मालवा पर अधिकार कर लिया, परन्तु फरवरी, 1537 ई. में बहादुरशाह की मृत्यु हो गई।

शेरखां से संघर्ष (अक्टूबर, 1537 ई. से जून, 1540 ई.): 1537 ई. के अक्टूबर महीने में हुमायूं ने पुन: चुनार के किले पर घेरा डाला। शेरखां के पुत्र कुतुब खां ने हुमायूं को लगभग छ: महीने तक किले पर अधिकार नहीं करने दिया।

अन्तत: हुमायूं ने कूटनीति एवं तोपखाने के प्रयोग से किले पर कब्जा कर लिया। इन छ: महीनों के दौरान शेरखां ने बंगाल अभियान में सफलता प्राप्त कर गौड़ के अधिकांश खजाने को रोहतास के किले में जमा कर लिया।

चुनार की सफलता के बाद हुमायूं ने बंगाल पर विजय प्राप्त की। वह गौड़ में 1539 ई. तक रहा। 15 अगस्त, 1538 ई. को जब हुमायूं ने बंगाल के गौड़ क्षेत्र में प्रवेश किया तो उसे वहां पर चारों ओर उजाड़ एवं लाशों का ढेर दिखाई पड़ा हुमायूं ने इस स्थान का पुनर्निर्माण का इसका नाम 'जन्नताबाद' रखा।

चौसा का युद्ध (26 जून, 1539 ई.): 26 जून, 1539 ई. को हुमायूं एवं शेरखां की सेनाओं के मध्य गंगा नदी के उत्तरी तट पर स्थित चौसा नामक स्थान पर संघर्ष हुआ।

यह युद्ध हुमायूं अपनी कुछ गलतियों के कारण हार गया। संघर्ष में मुगल सेना की काफी तबाही हुई। हुमायूं ने युद्ध क्षेत्र से भागकर एक भिश्ती का सहारा लेकर किसी तरह कर्मनाशा नदी को पार कर अपनी जान बचाई।

जिस भिश्ती ने चौसा के युद्ध में उसकी जान बचाई थी, उसे हुमायूं ने एक दिन के लिए दिल्ली का बादशाह बना दिया था।

चौसा के युद्ध में सफल होने के बाद शेरखां ने अपने को शेरशाह (राज्याभिषेक के समय) की उपाधि से सुसज्जित किया, साथ ही अपने नाम के खुतबे पढ़वाने एवं सिक्के ढलवाने का आदेश दिया।

बिलग्राम की लड़ाई (17 मई, 1540 ई.): बिलग्राम व कन्नौज में लड़ी गई इस लड़ाई में हुमायूं के साथ उसके भाई हिन्दाल एवं अस्करी भी थे, फिर भी पराजय ने हुमायूं का पीछा नहीं छोड़ा। इस युद्ध की सफलतता के बाद शेरखां ने सरलता से आगरा एवं दिल्ली पर कब्जा कर लिया। इस तरह हिन्दुस्तान की राजसत्ता एक बार पुन: अफगानों के हाथ में आ गई।

शेरशाह से परास्त होने के उपरान्त हुमायूं सिंध चला गया, जहां उसने लगभग 15 वर्ष तक घमुक्कड़ों जैसा निर्वासित जीवन व्यतीत किया।

इस निर्वासन के समय ही हुमायूं ने हिन्दाल के आध्यात्मिक गुरू फारसवासी शिया मीर बाबा दोस्त उफ 'मीर अली अकबरजामी' की पुत्री हमीदा बेगम से 29 अगस्त, 1541 ई. को निकाह कर लिया, कालान्तर में हमीदा से ही अकबर जैसे महान सम्राट का जन्म हुआ।

हुमायूं द्वारा पुन: राज्य की प्राप्ति: 1545 ई. में हुमायूं ने कंधार एवं काबुल पर अधिकार कर लिया। शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह की मृत्यु के बाद हुमायूं को हिन्दुस्तान पर अधिकार का पुन: अवसर मिला। 5 सितम्बर, 1554 ई. में हुमायूं अपनी सेना के साथ पेशावर पहुंचा फरवरी, 1555 ई. को उसने लाहौर पर कब्जा कर लिया।

मच्छीवारा का युद्ध (12 मई, 1555 ई.): लुधियाना से लगभग 19 मील पूर्व में सतलत नदी के किनारे स्थित मच्छीवारा स्थान पर हुमायूं एवं अफगान सरदार नसीब खां एवं तातारखां के बीच संघर्ष हुआ। संघर्ष का परिणाम हुमायूं के पक्ष में रहा।

PERFECTION IAS

सम्पूर्ण पंजाब मुगलों के अधिकार में आ गया।

सरहिन्द का युद्ध (22 जून, 1555 ई.): इस संघर्ष में अफगान सेना का नेतृत्व सुल्तान सिकन्दर सूर एवं मुगल सेना का नेतृत्व बैरम खां ने किया; अफगान पराजित हुए।

23 जुलाई, 1555 ई. के शुभ क्षणों में एक बार पुन: दिल्ली के तख्त पर हुमायूं को बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ किन्तु यह उसका दुर्भाग्य था कि वह अधिक दिनों तक सत्ताभोग नहीं कर सका। 24 जनवरी, 1556 ई. को 'दीनपनाह' भवन में स्थित पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरने के कारण हुमायूं की मृत्यु हो गयी।

हुमायूं के बारे में इतिहासकार लेनपूल ने कहा है कि 'हुमायूं गिरते पड़ते इस जीवन में मुक्त हो गया, ठीक उसी तरह जिस तरह तमाम-जिन्दगी वह गिरते-पड़ते चलता रहा था।' हुमायूं को अबुल फजल ने इन्सान-ए-कामिल कहकर सम्बोधित किया। हुमायूं अफीम खाने का बहुत शैकीन था।

चूंकि हुमायूं ज्योतिष में विश्वास करता था, इसलिए उसने सप्ताह के सातों दिन सात रंग के कपड़े पहनने के नियम बनाये। वह मुख्यत: इतवार को पीला, शनिवार को काला एवं सोमवार को सफेद कपड़े पहनता था।

शेरशाह सूरी (1540-1545 ई.)

शेरखां का प्रारम्भिक नाम 'फरीद खां' था। इसका जन्म 1472 ई. में 'बजवाड़ा' (होशियारपुर) में हुआ था। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि फरीद का जन्म हिसार फिरोजा में 1486 ई. में हुआ था। उसके पिता हसन खां जौनपुर के छोटे जमींदार थे। उसे अपनी सौतेली मां एवं पिता हसन का सच्चा स्नेह नहीं मिल सका। फरीद बड़ा होने पर अपने पिता से सासाराम, खवासपुर के परगने को प्राप्त किया जो उसके अधिकार में 1497 ई. से लेकर 1518 ई. तक बने रहे।

अपने पिता हसन खां की मृत्यु के बाद फरीद ने ससाराम, खवासपुर एवं टाण्डा की जागीरों पर पुन: अधिकार कर लिया। कालान्तर में इन जागीरों को लेकर फरीद खां एवं उसके सौतेले भाई सुलेमान के बीच विवाद हुआ।

फरीद खां ने अपने अधिकारों की रक्षा एवं शक्ति के विस्तार के लिए बिहार के सुल्तान मुहम्मद शाह नुहानी के यहां नौकरी कर ली। एक बार शिकार पर गयेनुहानी के साथ फरीद ने एक शेर को तलवार के एक ही वार से मार दिया। उसकी इस बहादुरी से प्रसन्न होकर मुहम्मद ने उसे 'शेरखां' की उपाधि प्रदान की।

1529 ई. में बंगाल के शासक नुसरतशाह को परास्त करके शेरखां ने हजरत-ए-आला की उपाधि धारण की। 1530 ई. में शेरखां ने चुनार के किलेदार ताज खां की विधवा लाडमलिका से विवाह करके चुनार का किला तथा बहुत सम्पत्ति प्राप्त की।

1539 ई. में चौसा का एवं 1540 ई. में बिलग्राम या कन्नौज के युद्ध जीतने के बाद शेरखां 1540 ई. में दिल्ली की गद्दी पर बैठा। उत्तर भारत में द्वितीय अफगान साम्राज्य के संस्थापक शेरशाह द्वारा बाबर के चन्देरी अभियान के दौरान कहे गये शब्द अक्षरश: सत्य सिद्ध हुए, ''अगर भाग्य ने मेरी सहायता की और सौभाग्य मेरा मित्र रहा, तो मैं मुगलों को सरलता से भारत से बाहर निकाला दूंगा।'' चौसा युद्ध के पश्चात् शेरखां ने 'शेरशाहं की उपाधि धारण कर अपना राज्याभिषेक करवाया।

कालान्तर में इसी नाम से उसने खुतबे पढ़वाये एवं सिक्के ढलवाये।

जिस समय शरेशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा उसके साम्राज्य की सीमायें पश्चिम में कन्नौज से लेकर पूरब में असम की पहाड़ियों एवं चटगावं तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में झारखण्ड की पहाड़ियों एवं बंगाल की खाड़ी तक फैली हुई थी।

1541 ई. में शेरशाह सूरी ने खक्खरों को इसलिए समाप्त करना चाहता था क्योंकि यह जाति आये दिन मुगलों की सहायता किया करती थी। शेरशाह खक्खर जाति को समाप्त करने के अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर सका फिर भी वह खक्करों की शक्ति को कम करने में अवश्य ही नहीं कर सका फिर भी वह खक्खरों की शक्ति को कम करने में अवश्य ही सफल हुआ। शेरशाह 'रोहतासगढ़' नामक किले का निर्माण कराया। हैबत खां एवं खवास खां के प्रतिनिधित्व में शेरशाह ने यहां पर एक अफगान सैनिक टुकड़ी को नियुक्त कर दिया।

बंगाल का विद्रोह (1541 ई.): बंगाल के सूबेदार 'खिज्र खां' जो एक स्वतन्त्र शासक की तरह व्यवहार कर रहा था, के विद्रोह को कुचलने के लिए शेरशाह बंगाल आया। उसने खिज्र खां को बन्दी बना लिया।

भविष्य में दोबारा बंगाल में विद्रोह को रोकने के लिए शेरशाह ने यहां एक नवीन प्रशासनिक व्यवस्था को प्रारम्भ किया जिसके अन्तर्गत पूरे बंगाल को कई सरकारों (जिलों) में बांट दिया गया और साथ ही प्रत्येक सरकार में एक छोटी सेना के साथ 'शिकदार' नियुक्त कर दिया गया। शिकदारों को नियंत्रित करने के लिए एक गैर सैनिक अधिकारी 'अमीन-ए-बंगला' की नियुक्ति की गई। सर्वप्रथम यहां पर 'काजी फजीलात' नाम के व्यकित को दिया गया।

मालवा '1542 ई.): गुजरात के शासक बहादुर शाह के मारने के बाद मालवा के सूबेदार मल्लू खं ने अपने को 'कादि शाह' के नाम से मालवा का स्वतन्त्र शासक घोषित कर लिया। उसने अपने नाम से सिक्के ढलवाये एवं खुतबे पढ़वाये। शेरशाह मालवा को अपने अधीन करने के लिए कादिरशाह पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा।`

अप्रैल, 1542 ई. में रास्ते में ही शेरशाह ने ग्वालियर के किले पर अधिकार कर वहां के शासक पूरनमल को अपने अधीन कर लिया। कादि शाह ने शेरशाह से भयभीत होकर सारंगपुर में उसके समक्ष समर्पण कर दिया। उसके समर्पण के बाद मांडू, उज्जैन एवं सारंगपुर पर शेरशाह का कब्जा हो गया।

शेरशाह ने भ्रदता का परिचय देते हुए कादिर शाह को लखनौती व काल्पी का गवर्नर नियुक्त किया परन्तु कादिरशाह शेरशाह से डर कर अपने परिवार के साथ गुजरात के शासक महमूद तृतीय की शरण में चला गया।

शेरशाह ने सुजात खां को मालवा का गवर्नर नियुक्त कर वापस आते समय 'रणथम्भौर' के शक्तिशाली किले को अपने अधीन कर पुत्र आदिल खां को वहां का गवर्नर बनाया।

रायसीन (1543 ई.): यहां के शासक पूरनमल द्वारा 1542 ई. में अभियान के समय शेरशाह की अधीनता स्वीकार करने के बाद भी शेरशाह के लिए रायसीन पर आक्रमण करना इसलिए आवश्यक हो गया था क्योंकि वहां की मुस्लिम जनता को पूरनमल से बड़ी शिकयत थी। साथ ही रायसीन की सम्पन्नता भी आक्रमण का एक कारण थी।

PERFECTION IAS

1543 ई. में रायसीन के किले पर घेरा डाला गया। कई महीने तक घेरा डले रहने पर भी शेरशाह को सफलता नहीं मिली। अन्ततः शेरशाह ने चालाकी से पूरनमल को उसके आत्मसम्मान एवं जीवन की सुरक्षा का वायदा कर आत्मसमर्पण हेतु तैयार कर लिया, कुतुब खां और आदि खां इस शर्त के गवाह बने। परन्तु रायसीन के मुसलमानों के पुनः दबाव के कारण राजपूतों को दण्ड देने के लिए शेरशाह ने एक रात राजपूत के खेमों को चारों ओर से घेर लिया। अपने को घिरा हुआ पाकर पूरनमल एवं उसके सिपाहियों ने बहादुरी से लड़ते हुए प्राणोत्सर्ग कर दिया तथा उनकी स्त्रियों ने 'जौहर' कर लिया।

'शेरशाह द्वारा किया गया यह विश्वासघात उसके व्यक्तित्व पर एक काला थब्बा है।' इस विश्वासघात से कुतुब खां इतना आहत हुआ कि उसने आत्महत्या कर ली।

सिंध एवं मुल्तान (1543 ई.): शेरशाह ने हैवत खां के नेतृत्व में सिध तथा मुल्तान के विद्रोहियों बख्सू लंगाह एवं फतेह खां पर विजय प्राप्त की। शेरशाह ने मुल्तान में फतेह खां एवं सिंध में इस्लाम खां को सूबेदार नियुक्त किया।

राजस्थानः मालदेव से युद्ध (1544 ई.): मालदेव मारवाड़ पर शासन कर रहा था। उसकी राजधानी जोधपुर थी। उसकी बढ़ती हुई शक्ति से शेरशाह को ईर्ष्या थी।

अतः बीकानेर नरेश कल्याणमल एवं 'मेड़ता' के शासक वीरमदेव के आमन्त्रण पर शेरशाह ने मालदेव के विरुद्ध अभियान किया। दोनों सेनायें 'भल' नामक स्थान पर एक दूसरे के सम्मुख उपस्थित हुई। यहां भी शेरशाह ने कूटनीति का सहारा लेते हुए मालदेव के शिविर में यह भ्रान्ति फैला दी कि उसके सरदार उसके साथ नहीं हैं।

इससे मालदेव ने निराश होकर बिना युद्ध किये वापस होने का निर्णय लिया, फिर भी उसके 'जयता एवं 'कुम्पा' नाम के सरदारों ने अपने ऊपर किये गये अविश्वास को मिटाने के लिए शेरशाह की सेना से टक्कर लिया परन्तु वे वीरगति को प्राप्त हुए। इस युद्ध को जीतने के बाद शेरशाह ने कहा कि 'मै मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान के साम्राज्य को प्रायः खो चुका था। ' शेरशाह ने भागते हुए मालेदव का पीछा करते हुए अजमेर, जोधपुर, नागौर, मेड़ता एवं आबू के किलों को अधिकार में कर लिया।

शेरशाह की यह विजय उसके मरने के बाद स्थायी नहीं रह सकी। अभियान से वापस आते समय शेरशाह ने मेवाड़ को भी अपने अधीन कर लिया। जयपुर के कछवाहा राजपूत सरदार ने भी शेरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार राजस्थान उसके नियंत्रण में आ गया।

कालिंजर (बुंदेलखण्ड) अभियान (1545 ई.): यह अभियान शेरशाह का अन्तिम सैन्य अभियान था। कालिंजर का शासक कीरत सिंह था, उसने शेरशाह के आदेश के विपरीत 'रीवां' के महाराजा वीरभान सिंह बघेला को शरण दे रखी थी।

इस कारण से नवम्बर, 1544 ई. में शेरशाह ने कालिंजर किले का घेरा डाल दिया, लगभग 6 महीने तक किले को घेरे रखने के बाद भी सफलता के आसार न देख कर शेरशाह ने किले पर गोला, बारूद के प्रयोग का आदेश दिया।

ऐसा माना जाता है कि किले की दीवार से टकराकर लौटे एक गोले के विस्फोट से शेरशाह की 22 मई, 1545 ई. को मृत्यु के समय वह 'उक्का' नाम का एक अग्नेयास्त्र चला रहा था। उसके मरने से पूर्व किले जीता जा चुका था। उसकी मृत्यु पर इतिहासकार कानूनगो ने कहा- 'इस प्रकार एक महान राजनीतिज्ञ एवं सैनिक का अन्त अपने जीवन की विजयों एवं लोकहितकारी कार्यों के मध्य में ही हो गया।''

इस्लामशाह (1545-1553): शेरशाह की मृत्यु के उपरांत 1545 ई. में उसका पुत्र जलाल खां इस्लामशाह की उपाधि धारण कर सुल्तान बना। आदिल खां को परास्त कर एवं साम्राज्य के विद्रोहों का दमन कर उसने सुल्तान के सम्मान और शक्ति में वृद्धि की और अफगानों की स्वतंत्र प्रकृति को पूर्णतया दबा दिया।

इस्लामशाह के समय में प्रान्तीय सूबेदार सुल्तान का तो क्या सुल्तान के जूतों का भी सम्मान करते थे। उसने अपनी मृत्यु नवम्बर, 1553 ई. तक शासन किया।

इस्लामशाह की मृत्यु के पश्चात् उसका 12 वर्षीय पुत्र फिरोज खां सुल्तान बना, परन्तु सुल्तान बनने के तीसरे दिन ही उसके मामा मुबारिज खां ने उसकी हत्या कर दी।

मुबारिज खां ने सुल्तान मोहम्मद आदिलशाह की पदवी धारण कर सुल्तान बना। वह 'अदाली' अर्थात् 'मूर्ख' के नाम से कुख्यात था। उसने अपने प्रशासन का समस्त कार्यभार हेमू नामक एक बनिया को सौंप दिया था

शासन व्यवस्था में इस्लामशाह ने अपेक्षित सुधार किये। ये किले शेरगढ़, इस्लामगढ़, रसीदगढ, फिरोजगढ और मानकोट में थे। इनको सम्मिलित रूप से 'मानकोट के किले' कहा जाता है। इस्लामशाह के शासन संबंधी सुधारों में सबसे महत्वपूर्ण सुधार विभिन्न कानूनों का निर्माण और उनका सभी स्थानों पर लागू किया जाना था।

इस्लामशाह के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों के समय सूर साम्राज्य 5 भागों में बंट गया। सूर-साम्राज्य की आपसी कलह का लाभ उठाकर हुमायूं ने भारत पर आक्रमण कर मच्छीवारा और सरहिन्द के युद्धों को जीतकर 1555. ई में दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

शेरशाह को व्यवस्था सुधारक के रूप में माना जाता है, व्यवस्था प्रवर्तक के रूप में नहीं।

शेरशाह का शासन अत्यधिक केन्द्रीकृत था। सम्पूर्ण साम्राज्य को 47 सरकारों में बांट दिया गया। डॉ. कानूनगो के अनुसार उसके प्रान्तीय शासन में सरकार से ऊंचा विभाजन नहीं किया गया था और प्रान्त एवं सूबा जैसी शासन की कोई इकाई नहीं थी। परमात्मा सरन, कानूनगों के विचारों से असहमति व्यक्त करते हैं।

प्रत्येक सरकार में दो प्रमुख अधिकारी होते थे- शिकदार-ए-शिकादारां और मुन्सिफ-ए-मुन्सिफां। प्रत्येक सरकार कई परगनों में बंटे थे। प्रत्येक परगने में एक शिकदार, एक मुन्सिफ, एक फोतदार और दो कारकुन होते थे।

शेरशाह की वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत सरकारी आय का सबसे बड़ा स्त्रोत जमीन पर लगने वाला कर था जिसे 'लगान' कहते थे। शेरशाह की लगान व्यवस्था रैय्यतवाड़ी पद्धति पर आधारित थी जिसमें किसानों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित किया जाता था।

स्थानीय आय, जिसे कई प्रकार के करों से एकत्र करते थे, 'अबवाब' कहा जाता था। शेरशाह के समय में भूमि तीन वर्गों अच्छी, साधारण एवं खराब में विभाजित थी। पैदावार का लगभग एक तिहाई भाग सरकार लगान के रूप में वसूल करती थी। केवल मुल्तान में उपज का 1/4 भाग लगान के रूप में लिया जाता था। लगान नकद एवं जिस

PERFECTION IAS

दोनों रूप में वसूला जाता था, पर नकद में लेना अधिक पसन्द किया जाता था। लगान निर्धारण हेतु तीन प्रणलियां प्रचलन में थी-

1. बटाई या गल्ला बक्शी,
2. नश्क या मुक्ताई या कनकूत और
3. नकदी या जब्ती या जमा। इन तीनों प्राकर की 'बटाई'-
   1. खेत बटाई,
   2. लंक बटाई एवं
   3. रास-बटाई का भी प्रचलन था। किसानों को शेरशाह के शासन काल में 'जरीबाना' या सर्वेक्षण शुल्क एवं 'मुहासिलाना' या कर संग्रह शुल्क भी देना पड़ता था जिनकी दरें क्रमशः भूराजस्व की 2.5% एवं 5% थी। इसके अलावा प्रत्येक किसान को पूरी लगान पर 2.5% अतिरिक्त कर देना होता था। शेरशाह ने कृषि योग्य भूमि और परती भूमि दोनों की नाप करवाया। इस कार्य के लिए उसने अहमद खां की सहयता ली। शेरशाह द्वारा प्रचलित रैय्यतवाड़ी व्यवस्था मुल्तान को छोड़कर राज्य के सभी भागों में लागू थी। मुल्तान में शेरशाह ने राजस्व निर्धारण और संग्रह के लिए पहले से चली आ रही बटाई (हिस्सेदारी) व्यवस्था को ही प्रचलन में रहने दिया तथा वहां से उत्पादन का 1/4 भाग लगान वसूल किया जो अन्यत्र नहीं प्रचालित था।

शेरशाह ने भूमि की माप के लिए 32 अंक वाला 'सिकन्दरीगज' एवं 'सन् की डंडी' का प्रयोग किया।

मुद्रा में सुधार शेरशाह का दूसरा महत्वपूर्ण सुधार था। उसने सोने, चांदी एवं तांबे के आकर्षक सिक्के चलवाये। कालान्तर में इन सिक्कों का अनुकरण मुगल सम्राटों ने किया। शेरशाह ने 167 ग्रेन सोने को अशर्फी, 178 ग्रेन का चांदी का रुपया एवं 380 ग्रेन का तांबे का 'दाम' चलवाया। उसके शासन काल में कुल 23 टकसालें थीं। उसने अपने नाम, पद एवं टकसाल का नाम अरबी एवं देवनागरी लिपि में खुदवाया। शेरशाह के रुपये के विषय में स्मिथ ने कहा कि- 'यह रुपया वर्तमान ब्रिटिश मुद्रा-प्रणाली का आधार है।'

शेरशाह ने एक महान भवन-मार्ग निर्माता के रूप में लगभग 1700 सराएं एवं 4 बड़ी सड़कों का निर्माण करवाया। ये सड़कें थीं-

1. बंगाल के सोनार गांव से लेकर आगरा, दिल्ली एवं लाहौर होते हुए सिंध तक जिसे 'ग्राण्ड ट्रंक रोड' कहा जाता है,
2. आगरा से मांडू तक,
3. आगरा से जोधपुर होते हुए चित्तौड़ तक और
4. लाहौर से मुल्तान तक। इन सड़कों में कुछ की शेरशाह ने मरम्मत करवाई थी।

स्थापत्य कला के क्षेत्र में शेरशाह का योगदान निःसन्देह अविस्मरणीय है। उसके द्वारा 'सासाराम' में झील के अन्दर ऊंचे टीले पर निर्मित करवाया गया स्वयं का मकबरा पूर्वकालीन स्थापत्य शैली की पराकाष्ठा तथा नवीन शैली के प्रारम्भ का द्योतक माना जाता हे। इसके अतिरिक्त शेरशाह ने हुमायूं द्वारा निर्मित 'दीनपनाह' को तुड़वा कर उसके ध्वंशावशेषों से दिल्ली में 'मुराने किले' का निर्माण करवाया। किले के अन्दर शेरशाह ने 'किला-ए-कुहना' मस्जिद का निर्माण करवाया जिसे उत्तर भारत के भवनों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शेरशाह ने रोहतासगढ़ के दुर्ग एवं कन्नौज के स्थान पर 'शेरसूर' नामक नगर बसाया। 1541 ई. में उसने पाटलिपुत्र को 'पटना' के नाम से पुनः स्थापित किया। शेरशाह ने दिल्ली में 'लंगर' की स्थापना की जहां पर सम्भवतः 500 तोला सोना हर दिन व्यय किया जाता था।

अकबर (1556-1605 ई.)

अकबर महान का जन्म 15 अक्टूबर, 1542 ई. को हमीदा बानू बेगम के गर्भ से अमरकोट के राणा 'वीरसाल' के महल में हुआ। अकबर के जन्म के समय उसके पिता हुमायूं अमरकोट के राणा वीरसाल के यहां एक शरणार्थी के रूप में प्रवास कर रहा था। अकबर के बचपन का नाम बदरुद्दीन था। 1546 ई. में अकबर के खतने के समय हुमायूं ने उसका नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर रखा।

अकबर के जन्म के समय की स्थिति सम्भवतः हुमायूं के जीवन की सर्वाधिक कष्टप्रद स्थिति थी। इस समय उसके पास अपने साथियों को बांटने के लिए एक कस्तूरी के अतिरिक्त कुछ भी न था। अकबर का बचपन मां-बाप के स्नेह से रहित 'अस्करी' के संरक्षण में माहम अनगा, जौहर शम्सुद्दीन खां एवं जीजी अनगा की देख-रेख में कंधार में बीता।

1551 ई. में मात्र 9 वर्ष की अवस्था में पहली बार अकबर को गजनी की सूबेदारी सौंपी गई। हुमायूं ने हिन्दुस्तान की पुनर्विजय के समय मुनीम खां को अकबर का सरंक्षक नियुक्त किया।

सिकन्दर सूर से अकबर द्वारा सरहिन्द को छीन लेने के बाद हुमायूं ने 1555 ई. में उसे अपना 'युवराज' घोषित किया। दिल्ली पर अधिकार कर लेने के बाद हुमायूं ने अकबर को लाहौर का गवर्नर नियुक्त किया, साथ ही अकबर के संरक्षक मुनीम खां को अपने दूसरे लड़के मिर्जा हकीम का अंगरक्षक नियुक्त कर, तुर्क सेनापति 'बैरम खां' को अकबर का संरक्षक नियुक्त किया।

हुमायूं की मृत्यु के समाचार को सुनकर बैरम खां ने गुरुदासपुर के निकट 'कलानौर' में 14 फरवरी, 1556 ई. को अकबर का राज्याभिषेक करवा दिया और वह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह गाजी की उपाधि से राजसिंहासन पर बैठा। राज्याभिषेक के समय अकबर की आयु मात्र 13 वर्ष 4 महीने थी।

बैरम खां: अकबर का सरंक्षक बैरम खां कराकुईल तुर्क था। उसके पूर्वज कुर्दिस्तान के शासक थे। बैरम खां का पिता सैफ अली बेग बाबर की सेना में था।

बैरम खां का जन्म बदख्शां एवं शिक्षा बल्ख में सम्पन्न हुई। 16 वर्ष की आयु में बैरम ने हुमायूं की सेना के साथ कन्नौज के युद्ध में हिस्सा लिया। उसने हुमायूं के पुनः भारत विजय के समय उसका महत्वपूर्ण सहयोग किया।

बैरम खां एक योग्य, सुसंस्कृत, शिक्षित, वफादार, साहसी, विद्वान, उच्चकोटि का सैनिक एवं सेनापति था। हुमायूं ने उसके इन्हीं सभी गुणों से खुश होकर उसे 'अमीर' का पद प्रदन किया था। कालान्तर में बैरम खां की विश्वसनीयता बढ़ने के साथ ही उसको सरंक्षक, खानखाना, यारवफादार आदि की उपाधि मिली।

अकबर ने सम्राट बनने पर अपने संरक्षक बैरम खां को 'वकील' (वजी) नियुक्त कर 'खान-ए-खाना' की उपाधि प्रदान की। अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयों के समाधान में बैरम खां का महत्वपूर्ण सहयोग था।

PERFECTION IAS

बैरम खां 1556 ई. से 1560 ई. तक अकबर का संरक्षक रहा। बैरम खां ने अपने संरक्षक काल में तार्दीबेग को पांच हजारी का मनसब देकर दिल्ली का सूबेदार बनाया, साथ ही मुनीम खां के नेतृत्व में काबुल पर मिर्जा सुलेमान के आक्रमण को असफल करवाया।

हेमू की सफलता

आदिलशाह सूर ने चुनार को अपनी राजधानी बनाया तथा हेमू को मुगलों को हिन्दुस्तान से बहार निकालने के लिए नियुक्त किया। हेमू रेवाड़ी का निवासी था। जो धूसर वैश्व कुल में पैदा हुआ था। आरम्भिक दिनों में वह रेवाड़ी की सड़कों पर नमक बेचा करता था। राज्य की सेवा में सर्वप्रथम उसे तौल करने वाले के रूप में नौकरी मिल गयी।

इस्लामशाह ने उसकी योग्यता से प्रभावित होकर दरबार में उसे एक गुप्त पद के लिए नियुक्त कर दिया। आदिलशाह के शासक बनते ही हेमू प्रधानमंत्री बनाया गया। मुसलमानी शासन में मात्र दो हिन्दू टोडरमल एवं हेमू ही प्रधानमंत्री के पद पर पहुंच सके थे, जबकि मात्र एक ही हिन्दू अर्थात् हेमू दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

हेमू ने अपनी स्वामी के लिए 24 लड़ाईयां थीं जिसमें उसे 22 में सफलता मिली थी।

हेमू आगरा और ग्वालियर पर अधिकार करता हुआ 7 अक्टूबर, 1556 ई. को तुगलकाबादा में तार्दी बेग को परास्त कर दिल्ली पर कब्जा कर लिया। हेमू ने राजा विक्रमादित्य की उपाधि के साथ एक स्वतन्त्र शासक बनने का सौभाग्य प्राप्त किया।

अहमद यादगार के अनुसार हेमू ने दिल्ली में घुसने पर शाही छत्र धारण किया तथा अपने नाम के सिक्के चलवाये। कुछ इतिहासकारों के अनुसार सम्भवत: उसने दिल्ली के तख्त पर अपना राज्याभिषेक भी करवाया था।

इस तरह से हेमू की साधारण स्थान से उठकर स्वतन्त्र शासक बनने तक की यात्रा नि:सन्देह मध्यकालीन भारत की एक रोचक घटना मानी जाती है। मध्यकालीन भारत में हेमू अन्तिम ऐसा हिन्दू व्यक्ति था जिसने अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति अपनी योग्यता, शक्ति एवं पराक्रम के बलबूते किया। 350 वर्ष के विदेशी शासन को समाप्त कर हेमू ने दिल्ली पर स्वदेशी शासन की स्थापना की, जो बहुत ही अल्पकालीन रहा।

हेमू की इस सफलता से चिन्तित अकबर एवं उसके कुछ सहयोगियों के मन में काबुल वापस जाने की बात कौंधने लगी परन्तु बैरम खां ने अकबर को इस विषम परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार कर लिया, जिसका परिणाम था- पानीपत की द्वितीय लड़ाई।

पानीपत की द्वितीय लड़ाई (5 नवम्बर, 1556 ई.)

यह संघर्ष पानीपत के मैदान में 5 नवम्बर, 1556 ई. को हेमू के नेतृत्व में अफगान सेना एवं बैरम खां के नेतृत्व में मुगल सेना के मध्य लड़ा गया। युद्ध का प्रारम्भिक क्षण हेमू के पक्ष में जा रहा था परन्तु इसी समय हेमू की आंख में एक तीर लग जाने से उसकी सेना में भगदड़ मच गई।

अन्तत: उसे पकड़ कर उसकी हत्या कर दी गई। इस तरह से युद्ध का परिणाम मुगलों के पक्ष में रहा भारत पर अधिकार को लेकर मुगलों एवं अफगानों के बीच संघर्ष का यहीं पर अन्त हो गया। डॉ. आर; पी. त्रिपाठी ने लिखा कि 'हेमू की पराजय मात्र एक दुर्घटना थी एवं अकबर की विजय एक दैवी संयोग'।

बैरम खां का पतन: 1556 ई. से लेकर 1560 ई. तक बैरम खां मुगल साम्राज्य का वास्तविक कर्ता-धर्ता बना रहा, परन्तु 1560 ई. तक अकबर काफी समझदार हो चुका था, शासन के समस्त कार्यों में स्वतन्त्र निर्णय लेना चाहता था। अत: बैरम एवं अकबर के मध्य मतभेदों की शुरुआत हुई, जो बैरम खां के पतन का कारण बनी।

पतन के कारणों में अकबर को असन्तोष एवं अतकाखेल का योगदान महत्वपूर्ण है। यह ऐसे वर्ग का सामूहिक नाम था जिसमें अकबर की धाय मां माहम अनगा, जीजी आध्म खां, शहाबुद्दीन, राजमाता हमीदा बानू मुल्ला मीर मुहम्मद आदि शामिल थे, ने गुप्त रूप से अकबर को बैरख खां के विरुद्ध भड़काने का कार्य कर रहे थे। मक्का की ओर प्रस्थान के क्रम में 31 जनवरी, 1561 को गुजरात के पाटन नामक स्थान पर मुबारक खां नेहानी ने बैरम खां की हत्या कर दी।

धार्मिक भेदभाव: चूंकि बैरम खां शिया धर्मावलम्बी था, इसलिए उस पर यह आण्रोप लगाया गया कि वह सुन्नी सम्प्रदाय के लोगों की उपेक्षा करता हैं। इसी प्रकार चूंकि बैरम खां ईरानी थ, इसलिए उस पर आरोप लगा कि वह तुरानी लोगों की उपेक्षा कर ईरानी मुसलमानों को अमीर का पद प्रदान कर रहा है। अन्त में अकबर ने बैरम खां को हटाने का फैसला किया।

बैरम खां मक्का जाने को तैयार हुआ। मार्ग में मुल्ला पीर मुहम्मद के नेतृत्व वाली शाही सेना का उसने तिलवाड़ा नामक स्थान पर मुकाबला किया। बैरम खां पराजित हुआ और आत्मसर्पण कर दिया। उसे अकबर के समक्ष लाया गया। अकबर ने बैरम खां के समक्ष तीन प्रस्ताव रखा-

1. काल्पी एवं चन्देरी की सूबेदारी।
2. राजदरबार में सम्राट के गुप्त मामलों का सलाहकार।
3. मक्का की तीर्थ यात्रा।

तीनों प्रस्तावों में से बैरम खां मक्का की तीर्थ यात्रा के प्रस्ताव को चुनकर तीर्थ यात्रा की ओर चल पड़ा मार्ग में ही 'पाटन' नामक स्थान पर मुबारक खां नामक एक अफगान युवक (इसके पिता की हत्या मच्छीवारा के युद्ध में बैरम खां ने की थी) ने बैरम खां की हत्या कर दी।

कालान्तर में मुगल सम्राट अकबर ने बैरम खां की विधवा सलीमा बेगम से निकाह कर उसके 4 वर्षीय पुत्र को पुत्रवत संरक्षण दिया जिसने आगे चलकर 1584 ई. में 'खानखाना' की उपाधि को ग्रहण किया। पाटन के फकीरों ने बैरम खां के मृत शरीर का अंतिम संस्कार किया।

अकबर के प्रारम्भिक सुधार

1. युद्ध में बन्दी बनाये गये व्यक्तियों के परिवार के सदस्यों को दास बनाये जाने की परम्परा को तोड़ते हुए अकबर ने दास प्रथा पर 1562 ई. से पूर्णत: रोक लगा दी।
2. प्रारंभ में अकबर 'हरम दल' के प्रभाव में था। इस दल के प्रमुखसदस्रू-धाय माहम अनगा, जीजी अनगा, आधम खां, मुनीम खां, शिहबुद्दीन अहमद खां थे। जब तक अकबर ने इस दल के प्रभाव में काम किया तब तक उसके शासन को 'पेटीकोट सरकार' व 'पर्दा शासन' भी कहा जाता है।

   16 मई, 1562 ई. को आधम खां को अकबर ने छत से दो बार नीचे फिंकवाया फलत: उसकी मृत्यु हो गयी। यह समाचार बीमार माहम अनगा को जो राज्य की संरक्षिका के रूप में कार्य

कर रही थी, अकबर ने सुनाया जिसके प्रभावस्वरूप 40 दिन बाद वह मर गयी। इस प्रकार अकबर ने स्वयं को हरम दल से पूर्णतः स्वतंत्र कर लिया।

3. अगस्त, 1563 ई. में अकबर ने विभिन्न तीर्थस्थलों पर लगने वाले 'तीर्थ यात्रा कर' की वसूली को बन्द करवा दिया।
4. मार्च, 1564 ई. में अकबर ने 'जजिया कर' जो गैर मुस्लिम जन से 'व्यक्तिगत कर' रूप में वसूला जाता था, को बन्द करवा दिया।

अकबर का साम्राज्य विस्तार

अकबर के साम्राज्य विस्तार को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं-

1. उत्तर भारत की विजय और
2. दक्षिण भारत की विजय।

उत्तर भारत की विजयः पानीमत के युद्ध के बाद 1559 ई. में अकबर ने ग्वालियर पर, 1560 ई. में उसके सेनापति जमाल खां ने जौनपुर पर तथा 1561 ई. में आसफ खां ने चुनार के किले पर अधिकार कर लिया।

मालवा विजयः यहांके शासक बाज बहादुर को 1561 ई. में आधम खां के नेतृत्व में मुगल सेना ने परास्त कर दिया। 29 मार्च, 1561 ई. को मालवा की राजधानी 'सारंगपुर' पर मुगल सेनाओं ने अधिकार कर लिया। अकबर ने 'आधम खां' को वहों की सूबेदारी सौंपी।

1562 ई. में पीर मुहम्मद मालवा का सूबेदार बना। यह एक अत्याचारी प्रवृत्ति का व्यक्ति था। बाजबहादुर ने दक्षिण के शासकों के सहयोग से पुनः मालवा पर अधिकार कर लिया। पीर मुहम्मद भागते समय नर्मदा नदी में डूबकर मर गया। इस बार अकबर ने अब्दुल्ला खां उजबेग को बाजबहादुर को परास्त करने के लिए भेजा। बाजबहादुर ने पराजित होकर अकबर की अधीनता स्वीकार कर अकबर के दरबार में द्वि-हजारी मनसब प्राप्त किया।

1564 ई. में अकबर ने गोंडवाना जिय हेतु 'आसफ खां' को भेजा। तत्कालीन गोंडवाना राज्य की शसिका व महोबा की चन्देल राजकुमारी 'रानी दुर्गावती', जो अपने अल्पायु पुत्र 'वीर नारायण' की संरक्षिका के रूप में शासन कर रही थी, ने आसफ खां के नेतृतव वाली मुगल सेना का डटकर मुकाबला किया।

अन्ततः मां और पुत्र दोनों वीरगति को प्राप्त हुए। 1564 ई. में गोंडवाना मुगल साम्राज्य के अधीन हो गया।

राजस्थान विजयः राजस्थान के राजपूत शासक अपने पराक्रम, आत्मसम्मान एवं स्वतन्त्रता के लिए प्रसिद्ध थे। अकबर ने राजपूतों के प्रति विशेष नीति अपनाते हुए उन राजपूत शासकों से मित्रता एवं वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये जिन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु जिन्होंने अधीनता स्वीकार नहीं की उनसे युद्ध के द्वरा अकबर ने अधीनता स्वीकार करवाने का प्रयत्न किया।

1. **आमेर (जयपुर):** 1562 ई. में अकबर द्वारा अजमेर की शेख मुईनुद्दीन चिश्ती दरगाह की यात्रा के समय उसकी मुलाकात आमेर के शासक राजा भारमल से हुई। भारमल प्रथम राजपूत शासक था। जिसने स्वेच्छा से अकबर की अधीनता स्वीकार की। कालान्तर में भारमल या बिहारी मल की पुत्री से अकबर की ने विवाह कर लिया, जिससे जहांगीर पैदा हुआ। अकबर ने भारमल के पुत्र (दत्तक) भगवान दास एवं पौत्र मान सिंह को उच्च मनसब प्रदान किया।
2. **मेड़ताः** यहां का शासक जयमल मेवाड़ के राजा उदय सिंह का सामन्त था। मेड़ता पर आक्रमण के समय मुगल सेना का नेतृत्व सरफुद्दीन कर रहा था। उसने जयमल एवं देवदास से मेड़ता को छीनकर 1562 ई. में मुगलों के अधीनकर दिया।
3. **मेवाड़ः** 'मेवाड़' राजस्थान का एक मात्र ऐसा राज्य था जहां के राजपूत शासकों ने मुगल शासन का सदैव विरोध किया। अकबर का समलकालीन मेवाड़ शासक सिसोदिया वंश का राणा उदय सिंह था जिसने मुगल सम्राट अकबर की अधीता नहीं स्वीकार की। अकबर ने मेवाड़ को अपने अधीन करने के लिए 1567 ई. में चित्तौड़ के किले पर आक्रमण कर दिया। उदय सिंह किले की सुरक्षा का भार जयमल एवं फत्ता (फतेह सिंह) को सौंप कर समीप ही पहाड़ियों में खो गया।

इन दो वीरों ने बड़ी बहादुरी से मुगल सेना का मुकाबला किया पर अन्ततः दोनों युद्ध क्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुए। अकबर ने किले पर अधिकार के बाद लगभग 30,000 राजपूतों का कत्ल करवा दिया। यह नरसंहार अकबर के नाम पर एक बड़े धब्बे के रूप में माना गया जिसे मिटाने के लिए अकबर ने आगरा किले के दरवाजे पर जयमल एवं फत्ता की वीरता की स्मृति में उनकी प्रस्तर मूर्तियां स्थापित करवायीं।

1568 ई. में मुगल सेना ने मेवाड़ की राजधानी एवं चित्तौड़ के किले पर अधिकार कर लिया। अकबर ने चित्तौड़ की विजय के स्मृतिस्वरूप वहां की महामाता के मंदिर से विशाल झाड़फानूस अवशेष आगरा ले आया।

रणथम्भौर विजय (1569 ई.): रणथम्भौर के शासक बूंदी के हाड़ा राजपूत सुरजन राय से अकबर ने 18 मार्च, 1569 ई. को दुर्ग अपने कब्जे में ले लिया।

कालिंजर विजय (1569 ई.): उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में स्थित यह किला अभेद्य माना जाता था। इस पर रीवां के रजा रामचन्द्र का अधिकार था। मुगल सेना ने मजनूं खां के नेतृत्व में आक्रमण कर कालिंजर पर अधिकार कर लिया। राजा रामचन्द्र को इलाहाबाद के समीप एक जागीर दे दी गयी।

इस प्रकार 1870 ई. तक मेवाड़ के कुछ भागों को छोड़ कर शेष राजस्थान के शासकों ने मुगल अधीनता स्वीकार कर ली। अधीनता स्वकीर करने वाले राज्यों में कुछ अन्य थे-डूंगरपुर, बांसवाड़ा एवं प्रतापगढ़।

गुजरात विजय (1572-73 ई.): गुजरात एक समृद्ध, उन्नतिशील एवं व्यापारिक केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था, इसलिए अकबर इसे अपने अधिकार में करने हेतु अधिक उत्सुक था। सितम्बर, 1572 ई. में अकबर ने स्वयं ही ही गुजरात जीतने के लिए प्रस्थान किया। उस समय गुजरात का शासक मुजफ्फर खां तृतीय था।

लगभग डेढ़ महीने के संघर्ष के बाद 26 फरवरी, 1573 ई. तक अकबर ने सूरत, अहमदाबाद एवं कैम्बे पर अधिकार कर लिया। अकबर 'खाने आजम' मिर्जा अजीज कोका को गुजरात का गवर्नर नियुक्त कर वापस आगरा आ गया, किन्तु उसके आगरा पहुंचते ही सूचना मिली कि गुजरात में मुहम्मद हुसैन मिर्जा ने विद्रोह कर दिया है; अतः तुरन्त ही

अकबर ने गुजरात की ओर मुंडकर 2 सितम्बर, 1573 को विद्रोह को कुचल दिया। इस प्रकार गुजरात अकबर के साम्राज्य का एक पक्का अंग बन गया। उसके वित्त तथा राजस्व का पुनर्संगठन टोडरमल ने किया जिसका कार्य उस प्रान्त में सिहाबुद्दीन अहमद ने 1573 ई. से 1584 ई. तक किया।

गुजरात में ही अकबर सर्वप्रथम पुर्तगालियों से मिला और यहीं पर उसने पहली बार समुद्र को देखा।

विहार एवं बंगाल पर विजय (1574-1576 ई.): बिहार एवं बंगाल पर सुलेमान कर्रानी अकबर की अधीनता में शासन करता था। कर्रानी की मृत्यु के बाद उसके पुत्र दाऊद ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। अकबर ने मुनीम खां के नेतृत्व में मुगल सेना को दाऊद को परास्त करने के लिए भेजा, साथ ही मुनीम की सहायता हेतु खुद गया।

1574 ई. में दाऊद बिहार से बंगाल भाग गया। अकबर ने बंगाल विजय का सम्पूर्ण दायित्व मुनीम खां को सौंप दिया और वापस फतेहपुर सीकरी आ गया। मुनीम खां बंगाल पहुंचकर, दाऊद को सुवर्ण रेखा नदी के पूर्वी किनारे पर स्थिति 'तुकरोई' नामक स्थान पर 3 मार्च, 1575 ई. के परास्त किया।

दाऊद की मृत्यु जुलाई, 1576 ई. में हो गई। इस तरह से बंगाल एवं बिहार पर मुगलों का अधिकार हो गया।

हल्दीघाटी का युद्ध (18 जून, 1876 ई.): उदय सिंह की मृत्यु के बाद मेवाड़ का शासक महाराणा प्रताप हुआ। अकबर ने मेवाड़ को पूर्णरूप से जीतने के लिए अप्रैल, 1576 ई. में आमेर के राजा मान सिंह एवं आसफ खां के नेतृत्व में मुगल सेना को आक्रमण के लिए भेजा। दोनों सेनाओं के मध्य गोगुंडा के निकट अरावली पहाड़ी की 'हल्दी घाटी' शाखा के मध्य युद्ध हुआ।

इस युद्ध में राणा प्रताप पराजित हुए। उनकी जान झाला के नायक की नि:स्वार्थ भक्ति के कारण बच सकी क्यों कि उसने अपने को राणा घोषित कर शाही दल के आक्रमण को अपने ऊपर ले लिया था। राणा चेतक पर सवार होकर पहाड़ियों की ओर भाग कर आश्रय लिया। यह अभियान भी मेवाड़ पर पूर्ण अधिकार के बिना ही समाप्त हो गया।

1597 ई. राणा प्रताप की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अमर सिंह उत्तराधिकारी हुआ। उसके शासन काल 1599 ई. में मानसिंह के नेतृतव में एक बार पिर मुगल सेना ने आक्रमण किया। अमर सिंह की पराजय के बाद भी मेवाड़ अभियान अधूरा रहा जिसे बाद में जहांगीर ने पूरा किया।

काबुल विजय (1581 ई.): मिर्जा हकीम, जो रिश्ते में अकबर का सौतेला भाई था, 'काबुल' पर स्वतन्त्र शासक के रूप में शासन कर रहा था। सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा में उसने पंजाब पर आक्रमण किया। उसके विद्रोह को कुचलने के लिए अकबर ने 8 फरवरी, 1581 ई. को एक बृहद सेना के साथ अफगानिस्तान की ओर प्रस्थान किया। अकबर के आने का समाचार सुनकर मिर्जा हकीम काबुल की ओर वापस हो गया।

10 अगस्त, 1581 ई. को अकबर ने मिर्जा की बहन बख्तुन्तिसा बेगम को काबुल की सूबेदारी सौंपी। कालान्तर में अकबर ने काबुल को साम्राज्य में मिला कर राजा मान सिंह को सूबेदार बनाया।

कश्मीर विजय (1585-1586 ई.): अकबर ने कश्मीर पर अधिकार के लिए भगवान दास एवं कासिम खां के नेतृत्व में नेतृत्व में मुगल सेना को भेजा। मुगल सेना ने थोड़े से संघर्ष के बाद यहां के शासक 'युसुफ खां' को बन्दी बना लिया। बाद में युसुफ खां के लड़के 'याकूब' ने संघर्ष की शुरुआत की, किन्तु श्रीनगर में हुए विद्रोह के कारण उसे मुगल सेना के समक्ष आत्मसर्पण करना पड़ा।

1586 ई. में कश्मीर का विलय मुगल साम्राज्य में हो गया।

सिन्ध विजय (1591 ई.): अकबर ने अब्दुर्रहीम खानखाना को सिंध को जीतने का दायित्व सौंपा।

1591 ई. में सिन्ध के शासक जानी बेग एवं खानखाना के मध्य कड़ा संघर्ष हुआ, अन्तत: सिंध पर मुगलों का अधिकार हो गया।

उड़ीसा विजय (1590-1592 ई.): 1590 ई. में राजा मान सिंह के नेतृत्व में मुगल सेना ने उड़ीसा के शासक निसार खां पर आक्रमण कर आत्मसमर्पण के लिए विवश किया, परन्तु अन्तिम रूप से उड़ीसा को 1592 ई. में मुगल साम्राज्य के अधीन किया गया।

बलूचिस्तान विजय (1595 ई.): मीर मासूम के नेतृत्व में मुगल सेनाओं ने 1595 ई. में बलूचिस्तान पर आक्रमण कर वहां के अफगानों को हराकर उसे मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

कन्धार विजय (1595 ई.): बैरम खां के संरक्षण काल 1556-1560 ई. में कंधार मुगलों के हाथ से निकल गया था। कन्धार का सूबेदार मुजफ्फर हुसैन मिर्जा कन्धार को स्वेच्छा से मुगल सरदार शाहबेग को सौंपकर स्वयं अकबर का मनसबदार बन गया।

इस तरह अकबर मेवाड़ के अतिरिक्त सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार करने में सफल हुआ।

अकबर की दक्षिण विजय (1593-1601 ई.)

बहमनी राज्य के विखण्डन के उपरान्त बने राज्यों खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर एवं गोलकुण्डा को अकबर ने अपने अधीन करने के लिए 1591 ई. में एक दूतमण्डल को दक्षिण की ओर भेजा।

मुगल सीमा के सर्वाधिक नजदीक होने के कारण 'खानदेश' ने मुगल आधिपत्य को स्वीकर लिया। 'खानदेश' को दक्षिण भारत का 'प्रवेश द्वार' भी माना जाता है।

1593 ई. में अकबर ने 'अहमद नगर' पर आक्रमण हेतु अब्दुर्रहीम खान खाना एवं मुराद को दक्षिण भेजा 1594 ई. में यहां के शासक बुरहानुलमुल्क की मृत्यु के कारण अहमदनगर के किले का दायित्व बीजापुर के शासक आदिलशाह प्रथम की विधवा चांदबीबी ने इब्राहिम के अल्पायु पुत्र बहादुरशाह को सुल्तान घोषित किया एवं स्वयं उसकी संरक्षिका बन गई।

1595 ई. में हुए मुगल आक्रमण का इसने लगभग 4 महीने तक तक डटकर मुकाबला किया। अन्तत: दोनों पक्षों में 1596 ई. में समझौता हो गया; समझौते के अनुसार 'बरार' मुगलों को सौप दिया गया एवं बुरहानुलमुल्क के पौत्र बहादुर शाह को अहमदनगर के शासक के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई।

इसी युद्ध के दौरान मुगल सर्वप्रथम मराठों के सम्पर्क में आये। कुछ दिन बाद चांद बीबी ने अपने को अहमद नगर प्रशासन से अलग कर लिया। वहां के सरदारों ने संधि का उल्लंघन करते हुउ बरार को पुन: प्राप्त करना चाहा। अकबर ने अबुल फजल के साथ मुराद को अहमदनगर पर आक्रमण के लिए भेजा।

1597 ई. में मुराद की मृत्यु हो जाने के कारण अब्दुर्रहीम खानखाना एवं दानियाल को आक्रमण के लिए भेजा गया, स्वयं अकबर

ने भी दक्षिण की आरे प्रस्थान किया। मुगल सेना ने 1599 ई. में दौलताबाद एवं 1600 ई. में अहमदनगर किले पर अधिकार कर लिया। चांदबीबी ने आत्महत्या कर ली।

'खानदेश' की राजधानी 'बुरहानपुर' पर स्वयं अकबर ने 1599 ई. में आक्रमण किया, इस समय वहां का शासक मीरन बहादुर था। उसने अपने को 'असीरगढ़' के किले मे सुरक्षित कर लिया। अकबर ने असीरगढ़ के किले का घेराव कर उसके दरवाजे को 'सोने की चाभी' से खोला अर्थात् अकबर ने दिल खोलकर खानदेश के अधिकारियों में रुपये बांटे और उन्हें कपटपूर्वक अपनी ओर मिला लिया।

21 दिसम्बर, 1600 ई. को मीरन बहादुर ने अकबर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया, परन्तु अकबर ने अन्तिम रूप से इस दुर्ग को अपने कब्जे में 6 जनवरी, 1601 ई. को किया।

असीरगढ़ की विजय अकबर की अन्तिम विजय थी। मीरन बहादुर को बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में कैद कर दिया गया। 4000 अशर्फिया उसके वार्षिक निर्वाह के लिए निश्चित की गयी। इन विजयों के पश्चात् अकबर ने स्वयं दक्षिण के सम्राट की उपाधि धारण की।

अकबर ने बरार, अहमदनगर एवं खानदेश की सूबेदारी शाहजादा दानियाल को प्रदान कर दी। बीजापुर एवं गोलकुण्डा पर अकबर अधिकार नहीं कर सका।

इस तरह अकबर का साम्राज्य कन्धार एवं काबुल से लेकर बंगाल तक और कश्मीर से लेकर बरार तक फैला था।

अकबर के समय में हुए महत्वपूर्ण विद्रोह

1. **उजबेगों का विद्रोहः** उजबेग वर्ग पुराने अमीर थे। इस वर्ग के प्रमुख विद्रोही नेता थे- जौनपुर के सरदार खान जमान, उसका भाई बहादुर खां एवं चाचा इब्राहिम खां, मलावा का सूबेदार अब्दुल्ला खां, अवध का सूबेदार खाने आलम आदि।

   ये सभी विद्रोही सरदार अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। 1564 ई. में मालवा के अब्दुल्ला खां ने विद्रोह किया। यह विद्रोह अकबर के समय का पहला विद्रोह था। इन विद्रोहों को अकबर ने बड़ी सरलता से दबा दिया।

2. **मिर्जा वर्ग का विद्रोहः** मिर्जा वर्ग के लोग अकबर के रिश्तेदार थे। इस वर्ग के प्रमुख विद्रोही नेता थे- इब्राहीम मिर्जा, मुहम्मद हुसैन मिर्जा, मसूद हुसैन, सिकन्दर मिर्जा एवं महमूद मिर्जा आदि।

   चूंकि इस वर्ग का अकबर से खून का रिश्ता था, इसलिए ये अधिक अधिकार की अपेक्षा करते थे, इसी से उपजे असन्तोष के कारण इस वर्ग ने विद्रोह किया। अकबर ने 1573 ई. तक मिर्जाओं के विद्रोह को पूर्ण रूप से कुचल दिया।

3. **बंगाल एवं बिहार में हुए विद्रोहः** 1580 ई. में बंगाल में बाबाखां काकशल एवं बिहा में मुहम्मद मासूम काबुली एवं अरब बहादुर ने विद्रोह किया। राजा होडरमल के नेतृतव में अकबर की सेना ने 1581 ई. में इस विद्रोह को कुचला।

4. **युसुफजाइयों का विद्रोहः** अकबर के कश्मीर अभियान के समय 1585 ई. में पश्चिमोत्तर सीमा पर युसुफजाइयों की आक्रामक गतिविधियों के कारण स्थिति अत्यन्त गंभीर हो गयी थी। अकबर ने जैलखान कोकलताश के नेतृत्व में इनसे निपटने हेतु सेना भेजी।

   बीरबल और हाकिम अब्दुल फतह भी बाद में उसकी सहायता के लिये नियुक्त किये गये, किन्तु अभियान के दौरान मतभेद होने के कारण वापस लौटते हुये युसुफजाइयों ने पीछे से हमला किया। इस हमले में बीरबल की मृत्यु हो गयी। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त की समस्याओं ने अकबर को अन्त तक प्रभावित किया।

5. **शाहजादा सलीम का विद्रोहः** अकबर के लाड़-प्यार में सलीम काफी बिगड़ चुका था। वह बादशाह बनने के लिए उत्सुक था। 1599 ई. में सलीम अकबर की आज्ञा के बिना अजमेर से इलाहाबाद चला गया। यहां पर उसने स्वतन्त्र शासक की तरह व्यवहार शुरू किया।

   1602 ई. में अकबर ने सलीम को समझाने का प्रयत्न किया। उसने सलीम को समझाने के लिए दक्षिण में अबुल फजल को बुलवाया। रास्ते में जहांगीर के निर्देश पर ओरछा के बुन्देला सरदार वीरसिंह देव ने अबुल फजल की हत्या कर दी। निः सन्देह जहांगीर का यह कार्य अकबर के लिए असहनीय था, फिर भी अकबर ने उसे मेवाड़ जीतने के लिए भेजा पर वह मेवाड़ न जाकर पुनः इलाहाबाद पहुंच गया।

   कुछ दिन तक सुरा और सुंदरी में डूबे रहने के बाद अपनी दादी की मृत्यु पर सलीम 1604 ई. में वापस आगरा गया जहां अकबर ने उसे एक बार फिर माफ कर दिया। इसके बाद सलीम ने विद्रोहात्मक रुख नहीं अपनाया।

   इस तरह अकबर को अपने शासन काल में हुए सभी विद्रोहों को कुचलने में सफलता प्राप्त हुई।

21 अक्टूबर, 1605 ई. की अतिसार रोग के कारण अकबर की स्थिति काफी गंभीर हो गई। 25-26 अक्टूबर, 1605 ई. को अर्द्धरात्रि को अकबर की मृत्यु हो गई।

अकबर के अन्य सभी पुत्र पहले ही मर चुके थे। अतः अकबर की मृत्यु के समय उसका एकमात्र जीवित पुत्र समीम था।

अकबर की राजपूत नीति

अकबर की राजपूत नीति उसकी गहन सूझ-बूझ का परिणाम थी। अकबर राजपूतों की शत्रुता से अधिक उनकी मित्रता को महत्व देता था। अकबर की राजपूत नीति दमन और समझौते पर आधारित थी उसके द्वारा अपनायी गयी नीति पर दोनों पक्षों का हित निर्भर करता था।

अकबर ने राजपूत राजाओं से दोस्ती कर श्रेष्ठ एवं स्वामिभक्त राजपूत वीरों को अपनी सेवा में लिया जिससे मुगल साम्राज्य काफी दिन तक जीवित रह सका। राजपूतों ने मुगलों से दोस्ती एवं वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपने को अधिक सुरक्षित महसूस किया।

इस तरह अकबर की एक स्थायी, शक्तिशाली एवं विस्तृत साम्राज्य की कल्पना को साकार करने में राजपूतों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। अकबर ने कुछ राजपूत राजाओं जैसे भगवान दास, राजा मानसिंह, बीरबल एवं टोडरमल को उच्च मनसब प्रदान किया था।

अकबर ने सभी राजपूत राजाओं से स्वयं के सिक्के चलाने का अधिकार छीन लिया तक उनके राज्य में भी शाही सिक्कों का प्रचलन करवाया।

अकबर की धार्मिक नीति

अकबर प्रथम सम्राट था जिसमें धार्मिक विचारों में क्रमिक विकास दिखायी पड़ता है। उसके इस विकास को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है।

PERFECTION IAS

प्रथम काल (1556-1575): इस काल में अकबर इस्लाम धर्म का कट्टर अनयुायी था। जहां उसने इस्लाम की उन्नति हेतु अनेक मस्जिदों का निर्माण कराया वहीं दिन में पांच बार नमाज पढ़ना, रोजे रखना, मुल्ला मौलवियों का आदर करना जैसे उसके मुख्य इस्लामिक कृत्य थे।

द्वितीय काल (1575-1582 ई.): अकबर का यह काल धार्मिक दृष्टि से क्रांतिकारी काल था। 1575 ई. में उसने फतेहपुर सीकरी में इबादतखाने की स्थापना की। उसने 1578 ई. में इबादत खाने को धर्म संसद में बदल दिया। उसने शुक्रवार को मांस छोड़ दिया।

अगस्त-सितम्बर, 1579 ई. में महजर की घोषणा कर अकबर धार्मिक मामलों में सर्वोच्च निर्णायक बन गया। महजरनामा का प्रारूप शेख मुबारक द्वारा तैयार किया गया था। उलेमाओं ने अकबर को 'इमामे-आदिल' घोषित कर विवादास्पद कानूनी मामले पर आवश्यकतानुसार निर्णय का अधिकार दिया।

तृतीय काल (1582-1605 ई.): इस काल में अकबर पूर्णरूपेण दीन-ए-इलाही में अनुरक्त हो गया। इस्लाम धर्म में उसकी निष्ठा कम हो गयी।

हर रविवार की संध्या को इबादतखाने में विभिन्न धर्मों के लोग एकत्र होकर धार्मिक विषयों पर वाद-विवाद किया करते थे। इबादतखाने के प्रारम्भिक दिनों में शेख, पीर, उलेमा ही यहां धार्मिक वार्ता हेतु उपस्थित होते थे।

कालान्तर में अन्य धर्मों के लोग जैसे इसाई, जरथुस्ट्रवादी, हिन्दू, जैन, बौद्ध, फारसी, सूफी आदि को भी इबादतखाने में होने वाले धार्मिक वाद-विवादों मं अबुल फजल की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी।

दीन-ए-इलाही: सभी धर्मों के सार संग्रह के रूप में अकबर ने 1582 ई. में दीन-ए-इलाही (तौहीद-द-इलाही) या दैवी एकेश्वरवाद नामक धर्म का प्रवर्तक बना तथा उसे राजकीय धर्म घोषित कर दिया। इस धर्म का प्रधान पुरोहित अबुल फजल था।

इस धर्म में दीक्षा प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपनी पगड़ी एवं सिर को सम्राट अकबर के चरणों में रखता था। सम्राट उसे उठाकर उसके सिर पर पुनः पगड़ी रखकर 'शस्त' (अपना स्वरूप) प्रदान करता था जिस पर 'अल्ला हो अकबर' खुदा रहता था।

इस मत के अनुयायी को अपने जीवित रहने के समय ही श्राद्ध भोज देना होता था, मांस, खाने पर प्रतिबन्ध था एवं वृद्ध महिला तथा कम उम्र की लड़कियों से विवाह करने पर रोक थी। महत्वपूर्ण हिन्दू राजाओं में बीरबल ने इस धर्म को स्वीकार किया था।

इतिहासकार सिम्थ ने दीन-ए-इलाही पर उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि 'यह उसकी साम्राज्वादी भावनाओं का शिशु व उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं का एक धार्मिक जामा है।'

स्मिथ ने यह भी लिखा है कि ''दीन-ए-इलाही अकबर के अंहकार एवं निरंकुशता की भावना की उपज थी।''

1583 ई. में एक नया कैलेण्डर इलाही संवत् शुरू किया। अकबर पर इस्लाम धर्म के बाद सबसे अधिक प्रभाव हिन्दू धर्म का था।

अबुल फजल ने 'अरस्तू' द्वारा उल्लिखित 4 तत्वों आग, वायु, पानी, भूमि को सम्राट अकबर की शरीर संरचना में समावेशित माना।

अबुल फजल ने योद्धओं की तुलना 'अग्नि' से, शिल्पकारों एवं व्यापारियों की तुलना- 'हवा' से, विद्वानों की तुलना 'पानी' से एवं किसानों की तुलना 'भूमि' से की।

शाही कर्मचारियों का वर्गीकरण करते हुए अबुल फजल ने उमरा वर्ग की 'अग्नि से, राजस्व अधिकारियों की 'हवा से, विधि वेत्ता, धार्मिक अधिकारी, ज्योतिषी, कवि एवं दार्शनिक की 'पानी' से एवं बादशाह के व्यक्तिगत सेवकों की तुलना 'भूमि' से की।

अबलु फजल ने 'आइने अकबरी' में लिखा है कि ''बादशाहत एक ऐसी किरण है जो सम्पूर्ण ब्राह्मण्ड को प्रकाशित करने में सक्षम हैं'' इसे समसामाजिक भाषा में फर्रे-इजदी कहा गया है।

अकबर के इबादतखाने में आमंत्रित धर्माचार्य

1.	हिन्दू धर्म	देवी एवं पुरुषोत्तम
2.	जैन धर्म	हरिविजय सूरि, जिनचन्द्र सूरी
3.	पारसी धर्म	दस्तूर मेहर जी राणा
4.	ईसाई धर्म	एकाबीबा एवं मोंसेरात

अबुल फजल द्वारा तत्वों के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण

1.	योद्धा	अग्नि
2.	शिल्पकार एवम् व्यापारी	हवा
3.	विद्वान	पानी
4.	किसान	भूमि

सूफी मत में अपनी आस्था जताते हुए अकबर ने 'चिश्ती सम्प्रदाय' का आश्रय दिया।

अकबर ने सभी धर्मों के प्रति अपनी सहिष्णुता की भावना के कारण अपने शासन काल में आगरा एवं लाहौर में ईसाइयों को गिरिजाघर बनवाने की अनुमति प्रदान की। अकबर ने जैन धर्म के जैनाचार्य हरिविजय सूरि को 'जगत गुरु' की उपाधि प्रदान की। 'खरतर-गच्छ' सम्प्रदाय के जैनाचार्य 'जिनचन्द्र सूरि' को अकबर ने 200 बीघा भूमि जीवन निर्वाह हेतु प्रदान किया। सम्राट पारसी त्यौहार एवं सम्बन्ध में विश्वास करता था।

अकबर पर सर्वाधिक प्रभाव हिन्दू धर्म का पड़ा। अकबर ने बल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ को गोकुल और जैतपुरा की जागीर प्रदान की। अकबर ने सिख गुरु रामदास को 500 बीघा जमीन प्रदान की। इसमें एक प्राकृतिक तालाब था। बाद में यहीं अमृतसर नगर बसाया गय और स्वर्ण मंदिर का निर्माण हुआ।

अकबर के कुछ महत्वपूर्ण कार्य

वर्ष	**कार्य**
1562 ई.	दास प्रथा का अंत
1562 ई.	अकबर की 'हरमदल' से मुक्ति
1563 ई.	तीर्थ यात्रा कर समाप्त
1564 ई.	जजिया कर समाप्त
1571 ई.	फतेहपुर सीकरी की स्थापना एवं राजधानी का आगरा से फतेहपुर स्थानान्तरण
1575 ई.	इबादत खाने की स्थापना
1578 ई.	इबादत खाने में सभी धर्मों के लोगों के प्रवेश की अनुमति।
1579 ई.	'महजर' की घोषणा
1582 ई.	'दीन-ए-इलाही' की घोषणा
1583 ई.	इलाही संवत् की स्थापना

PERFECTION IAS

1571 ई. में अकबर ने फतेहपुर सीकरी को अपनी राजधानी बनाया।

1583 में अकबर ने एक नया कैलेण्डर 'इलाही संवत' जारी किया। अकबर ने सती प्रथा पर रोक लगाने का प्रयास किया, विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया। लड़कों के विवाह की न्यूनतम आयु 16 वर्ष तथा लड़कियों की न्यूनतम आयु 14 वर्ष निर्धारित की गयी।

अकबर के दरबार के नौ रत्न

अकबर के दरबार को सुशोभित करने वाले 9 रत्न थे-

1. बीरबल
2. अबुल फजल
3. टोडरमल
4. तानसेन
6. मानसिंह
6. अब्दुर्रहीम खानखाना
7. मुल्ला दो प्याजा
8. हकीम हुकाम
9. फैजी। इन नौ रत्नों का विवरण

इस प्रकार है-

1. **बीरबल :** नवरत्नों में सर्वाधिक प्रसिद्ध बीरबल का जन्म 'काल्पी' में 1528 ई. में ब्राह्मण वंश में हुआ था। बीरबल के बचपन का नाम 'महेश दास' था। यह अकबर वक्ता, कहानीकार एवं कवि की थी। अकबर ने उसकी योग्यता से प्रभावित होकर उसे (बीरबल) 'कविराज' एवं 'राजा' की उपाधि प्रदान की, साथ ही 2000 का मनसब प्रदान किया।

   बीरबल पहला एवं अन्तिम हिन्दू राजा था जिसने दीन-ए-इलाही धर्म को स्वीकार किया। अकबर ने बीरबल को नगरकोट, कांगड़ा एवं कालिंजर में जागीरों प्रदान कीं। 1583 ई. में बीरबल को न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी बनाया गया। 1586 ई. में यूसुफजाइयों के विद्रोह को दबाने के लिए गये बीरबल की हत्या कर दी गई।

   अबुल फजल तथा बदायूनी के अनुसार अकबर को सभी अमीरों से अधिक बीरबल की मृत्यु पर शोक पहुंचा था।

2. **अबुल फजल:** सूफी शेख मुबारक के पुत्र अबुल फजल का जन्म 1550 ई. में हुआ था। 20 सवारों के रूप में अपना जीवन आरम्भ करने वाले अबुल फजल ने अपने चरमोत्कर्ष पर 5,000 सवार का मनसब प्राप्त किया। वह अकबर का मुख्य सलाहकार व सचिव था। उसे इतिहास, दर्शन एवं साहित्य पर पर्याप्त जानकारी थी। अकबर के दीन-ए-इलाही धर्म का अबुल फजल मुख्य पुरोहित था।

   उसने 'अकबरनामा' एवं 'आईन-ए-अकबरी' जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की।

   1602 ई. में सलीम (जहांगीर) के निर्देश पर दक्षिण से आगरा की ओर आ रहे अबुल फजल की रास्ते में बुन्देला सरदार ने हत्या कर दी।

3. **टोडरमल:** उत्तर प्रदेश के एक क्षत्रिय कुल में पैदा होने वाले टोडरमल ने अपने जीवन की शुरुआत शेरशाह सूरी के यहां नौकरी करके की थी। 1562 ई. में अकबर की सेवा में आने के बाद 1572 ई. में उसे गुजरात का दीवान बनाया गया तथा बाद में 1582 ई. में वह प्रधानमंत्री बन गया।

   दीवान-ए-अशरफल के पद पर कार्य करते हुए टोडरमल ने भूमि के सम्बन्ध में जो भी सुधार किये, वे नि:सन्देह प्रशंसनीय हैं। टोडरमल ने एक सैनिक एवं सेना नायक के रूप में भी कार्य किया। 1589 ई. में टोडमरल की मृत्यु हो गई।

4. **तानसेन:** संगीत सम्राट तानसेन का जन्म ग्वालियर में हुआ। उसके संगीत का प्रशंसक होने के नाते अकबर ने उसे अपने नौ रत्नों में शामिल किया। उसने कई नये रागों का निर्माण किया। उनके समय में 'ध्रुपद' गायन शैली का विकास हुआ।

   अकबर ने तानसेन को 'कण्ठाभरणवाणीविलास' की उपाधि से सम्मानित किया। तानसेन की प्रमुख कृतियां थीं- मियां की टोड़ी, मियां की मल्हर, मियां की सारंग, दरबारी कान्हडा आदि। सम्भवत: उसने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया था।

5. **मानिसंह:** आमेर के राजा भारमल के पौत्र मानसिंह ने अकबर के साम्राज्य विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। मानसिंह से सम्बन्ध होने के बाद अकबर ने हिन्दुओं के साथ उदारता का व्यवहार करते हुए 'जजिया कर' को समाप्त कर दिया। काबुल, बिहार, बंगाल आदि प्रदेशों पर मानसिंह ने सफल सैनिक अभियान किया।

6. **अब्दुर्रहीम खानखाना:** बैरम खां का पुत्र अब्दुर्रहीम उच्च कोटि का विद्वान एवं कवि था। उसने तुर्की में लिखे 'बाबरनामा' का फारसी भाषा में अनुवाद किया। जहांगीर अब्दुर्रहीम के व्यक्तित्व से सर्वाधिक प्रभावित था, जो उसका गुरु भी था।

   रहीम को गुजरात प्रदेश को जीतने के बाद अकबर ने 'खानखाना' के सम्मान से सम्मानित किया।

7. **मुल्ला दो प्याजा:** अरब का रहने वाला प्याजा हुमायूं के समय में भारत आया।

   अकबर के नौ रत्नों में उसका भी स्थान था। भोजन में उसे 'दो प्याजा' अधिक पसन्द था, इसलिए अकबर ने उसे 'दो प्याजा' की उपाधि प्रदान कर दी थी।

8. **हकीम हुकाम:** यह अकबर के रसोई घर का प्रधान था।

9. **फैजी:** अबुल फजल का बड़ा भाई फैजी अकबर के दरबार में 'राज कवि' के पद पर आसीन था।

   वह दीन-ए-इलाही धर्म का कट्टर समर्थक था। 1595 ई. में उसकी मृत्यु हुई।

भगवान दास

आमेर के राजा भारमल का पुत्र भगवान दास अपनी योग्यता एवं कर्तव्यपरायणता के कारण प्रसिद्ध था। काबुल, गुजरात, कश्मीर आदि स्थानों पर उसने युद्ध किया। पराक्रमी होने के कारण अकबर ने भगवान दास को 5,000 का मनसब प्रदान किया था।

उसे 'अमीर-उल-उमरा' की उपाधि प्रदान की गई थी। कुछ दिनों तक वह लाहौर में सूबेदार था। भगवान दास अकबर के महत्वपूर्ण दरबारियों में से एक था। अबुल फजल के अनुसार भगवानदास सत्यवादी तथा वीर था। उसकी मृत्यु पर अकबर को गहरा दु:ख हुआ था।

PERFECTION IAS

जहांगीर (1605-1627 ई.)

'मुहम्मद सलीम' (जहांगीर) का जन्म फतेहपुर सीकरी में स्थित 'शेख सलीम चिश्ती' की कुटिया में भारमल की बेटी 'मरियम उज्जजानी' के गर्भ से 30 अगस्त, 1569 ई. को हुआ था। अकबर सलीम को 'शेखूबाबा' कहा करता था। सलीम का मुख्य शिक्षक अब्दुर्रहीम खानखाना था।

सर्वप्रथम 1581 ई. में सलीम को एक सैनिक टुकड़ी का मुखिया बनाकर काबुल पर आक्रमण के लिए भेजा गया।

1585 ई. में अकबर ने जहांगीर को 12 हजार का मनसबदार बनाया।

13 फरवरी, 1585 ई. को सलीम का विवाह आमेर के राजा भगवान दास की पुत्री 'मानबाई' से सम्पन्न हुआ। मानबाई को सलीम (जहांगीर) ने 'शाह बेगम' की उपाधि प्रदान की थी।

मानबाई ने जहांगीर की शराब की आदतों से दु:खी होकर आत्महत्या कर ली थी। कालान्तर में जहांगीर ने राजा उदय सिंह की पुत्री 'जगत गोसाई' या जोधाबाई से भी विवाह किया था।

1599 ई. तक सलीम अपनी महत्वाकांक्षा के कारण अकबर के विरुद्ध विद्रोह में संलग्न रहा।

21 अक्टूबर, 1605 ई. को अकबर ने सलीम को अपनी पगड़ी एवं कटार से सुशोभित कर उत्तराधिकारी घोषित किया। अकबर की मृत्यु के आठवें दिन 3 नवम्बर, 1605 ई. को सलीम का राज्याभिषेक 'नूरुद्दीन मुहम्मद जहांगीर बादशाह गाजी' की उपाधि से आगरा के किले में सम्पन्न हुआ।

जहांगीर अपने पिता अकबर की भांति उदार प्रवृत्ति का शासक था। बादशाह बनने के बाद जहांगीर ने 'न्याय की जंजीर' के नाम से प्रसिद्ध सोने की जंजीर को आगरा किले के शाहबुर्ज एवं यमुना तट पर स्थित पत्थर के खम्भे में लगवाया।

लोक कल्याण के कार्यों से सम्बन्धित 12 आदेशों की घोषणा जहांगीर ने करवायी। ये आदेश थे-

1. 'तमगा' नाम के कर की वसूली पर प्रतिबन्ध।
2. सड़कों के किनारे सराय मस्जिद एवं कुओं का निर्माण।
3. व्यापारियों के सामान की तलाशी उनके इजाजत के बिना नहीं।
4. किसी भी व्यक्ति के मरने के बाद उसकी सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारी के अभाव में उसके धन को सार्वजनिक निर्माण कार्य पर खर्च किया जाय।
5. शराब एवं अन्य मादक पदार्थों की बिक्री एवं निर्माण पर प्रतिबंध।
6. दण्डस्वरूप नाक एवं कान को काटने की प्रथा समाप्त।
7. किसी भी व्यक्ति के घर पर अवैध कब्जा के लिए राज्य कर्मचारियों को मनाही।
8. किसानों की भूमि पर जबरन अधिकार करने पर रोक।
9. कोई भी जागीर सम्राट की आज्ञा के बगैर परिणय सूत्र में नहीं बंध सकती थी।
10. गरीबों के लिए अस्पताल एवं इलाज के लिए डाक्टरों की व्यवस्था का आदेश।
11. सप्ताह के दो दिन गुरूवार (जहांगीर के राज्याभिषेक का दिन) एवं रविवार (अकबर का जन्म दिन) को पशुहत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध था।
12. अकबर के शासन काल के समय के सभी कर्मचारियों एवं जमींदारों को पुन: उनके पद दे दिये गये।

जहांगीर ने अपने कुछ विश्वासपात्र लोगों को जैसे अबुल फजल के हत्यारे वीर सिंह बुन्देला को तीन हजारी घुड़सवारों का सेनापति बनाया, नूरजहां के पिता गियासबेग को दीवान बनाकर एतमादुद्दौला की उपाधि दी, जमानबेग को महावत खां की उपाधि प्रदान कर डेढ़ हजार का मनसब दिया, अबुल फजल के पुत्र अब्दुर्रहीम को दो हजार का मनसब प्रदान किया। जहांगीर ने अपने कुछ कृपापात्र जैसे कुतुबुद्दीन कोका को बंगाल का गवर्नर एवं शरीफा खां को प्रधानमंत्री का पद प्रदान किया।

खुसरो का विद्रोह (1606 ई.): जहांगीर के सबसे बड़े पुत्र खुसरो जो मानबाई से उत्पन्न हुआ था, ने अपने मामा मानसिंह एवं ससुर मिर्जा अजीज कोका की सह पर अप्रैल, 1606 ई. में अपने पिता जहांगीर के विरुद्ध कर दिया।

जहांगीर ने खुसरो को आगरा के किले में नजरबंद रखा परन्तु खुसरो अकबर के मकबरे की यात्रा के बहाने भाग निकला। लगभग 12000 सैनिकों के साथ खुसरो एवं जहांगीर की सेना का मुकाबला जालंधर के निकट 'भैरोवल' के मैदान में हुआ।

खुसरो को पकड़ कर कैद में डाल दिया गया। सिक्खो के 5वों गुरु अर्जुन देव को जहांगीर ने फांसी दिलवा दी क्योंकि उन्होंने विद्रोह के समय खुसरो की सहायता की थी। कालान्तर में खुसरो द्वारा जहांगीर की हत्या का षड्यन्त्र रचने के कारण उसे पकड़ कर अन्धा करवा दिया गया। खुर्रम (शाहजहां) ने अपने दक्षिण अभियान के समय खुसरो को अपने साथ ले जाकर 1621 ई. में उसकी हत्या करवा दिया।

जहांगीर का साम्राज्य विस्तार

जहांगीर ने उन्हीं प्रदेशों को जीतने पर विशेष बल दिया जिसको अकबर के समय में पूर्णत: विजित नहीं किया गया था।

कन्धार (1606-1607 ई.): जहांगीर ने फारसियों से 'भारत का सिंहद्वारा' कहे जाने वाले तथा व्यापार एवं सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रांत कंधार को जीता। शाह अब्बास ने 1611 ई., 1615 ई., 1616 ई. और 1620 ई. में बहुत सी भेंटे एवं खुशामदी पत्र जहांगीर के दरबार में भेजा किन्तु 1621 ई. में उसने कन्धार पर आक्रमण कर उसे जीत लिया।

लेकिन 1622 ई. में खुर्रम के विद्रोह के कारण जहांगीर के समय ही कन्धार मुगलों के हाथ से पुन: निकल गया।

मेवाड़ से युद्ध एवं संधि: अकबर के पूरे प्रयास के बाद भी मेवाड़ पूर्णत: मुगलों के अधिकार में नहीं आ सका। राणा प्रताप ने अपनी मृत्यु के पूर्व ही लगभग 1597 ई. तक अकबर के कब्जे से अधिकांश मेवाड़ के क्षेत्रों पर पुन: कब्जा कर मिलया था।

राणा प्रताप की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी अमर सिंह मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। अकबर की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी अमर सिंह मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा।

अकबर की मृत्यु के बाद जहांगीर मुगल सिंहासन पर बैठा। जहांगीर ने अपने शासन काल के प्रथम वर्ष 1605 ई. में मेवाड़ को जीतने के लिए अपने पुत्र शाहजादा खुर्रम तथा परवेज के नेतृत्व में लगभग 20,000 अश्वारोहियों की सेना को भेजा। सामरिक सलाह के लिए आसफ खां एवं जफर बेग को परवेज के साथ भेजा गया। राणा

PERFECTION IAS

अमरसिंह एवं परवेज की सेनाओ के मध्य 'बेबार के दर्रे' में संघर्ष हुआ, किन्तु संघर्ष का कोई परिणाम नहीं निकल सका।

खुसरो के विद्रोह के कारण परवेज को वापस बुला लिया गया।

1608 ई. में महावत खां के नेतृत्व में एक बड़ी मुगल सेना, जिसमें लगभग 12000 घुड़सवार सैनिक थे, को भेजा गया। महावत खां ने राणा अमर सिंह को समीप की पहाड़ियों में छिपने के लिए मजबूर किया।

1606 ई. में महावत खां के स्थान पर अब्दुल्ला खां को मुगल सेना का नेतृत्व करने क`लिए भेजा गया।

1611 ई. में 'रनपुर के दर्रे' में राजकुमार 'कर्ण' को परास्त किया, परन्तु 'रणपुरा' के संघर्ष में अब्दुल्ला खां को पराजय का सामना करना पड़ा। बसु के बाद मिर्जा अजीज कोका को भेजा गया, खुद जहांगीर अपने प्रभाव से शत्रु को आतांकित करने के लिए 1613 ई. में में अजमेर गया। इस समय जहांगीर ने मेवाड़ के आक्रमण का भार शाहजादा खुर्रम को दिया। शाहजादा खुर्रम के नेतृत्व में मुगल सेना के दबाव के सामने मेवाड़ की सेना की समझौते के लिए बाध्य होना पड़ा।

राणा के राजदूत शुभकरण एवं हरिदास का जहांगीर के राजदरबार में यथोचित सत्कार किया गया। राणा अमर सिंह की शर्तों पर जहांगीर संधि के लिए तैयार हो गया। 1615 ई. में सम्राट जहांगीर एवं राणा अमर सिंह के मध्य सन्धि सम्पन्न हुइ।

सन्धि की शर्तें: राणा अमर सिंह एवं जहांगीर के मध्य हुई संधि की शर्तें इस प्रकार हैं-

1. राणा ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की।
2. अकबर के शासन काल में जीते गये मेवाड़ के क्षेत्रों एवं चित्तौड़ के किले राणा को वापस मिल गये।

   चित्तौड़ के किले को और मजबूत करने एवं उसकी मरम्मत पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया।
3. राणा पर मुगलों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए दबाव नहीं डाला गया। राणा को अपने स्थान पर मुगल सेना में अपने पुत्र 'कर्ण' को भेजने की छूट मिली।

युवराज कर्ण को मुगल दरबार में पूर्ण सम्मान के साथ बादशाह के दाहिनी ओर स्थान मिली, साथ ही 5,000 'जात' का मनसब प्रदान किया गया। राणा अमर सिंह इस संधि से आहत थे, फलस्वरूप उन्होंने सिंहासन अपने पुत्र करन को सौंप दिया और एक एकान्त स्थान पर नौ चौकी में अपना शेष जीवन व्यतीत किया।

इस तरह से लम्बे उर्से से चलने वाला संघर्ष दोनों पक्षों की राजनीतिक सूझबूझ के कारण समाप्त हो गया जिसमें जहांगीर एवं उसके पुत्र खुर्रम की महत्वपूर्ण भमिका रही।

सम्राट जहांगीर ने संधि का पालन करते हुए मेवाड़ के प्रति पूर्ण उदार दृष्टिकोण के साथ उसके (राणा के) व्यक्तिग मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया। जहांगीर के शासन काल की यह महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

दक्षिण की विजय: जहांगीर की दक्षिण विजय अकबर की अग्रगामी नीतियों का अनुसरण मात्र थी।

जहांगीर के सामने लक्ष्य था।- 'खानदेश' एवं 'अहमदनगर' की पूर्ण विजय, जिसे अकबर की मृत्यु के कारण पूरा नहीं किया जा सकता था, तथा स्वतंत्र प्रदेश 'बीजापुर' एवं 'गोलकुण्डा' पर अधिकार करना।

अहमदनगर: जहांगीर के समय में दक्षिण विजय मे महत्वपूर्ण रुकावट था- अहमदनगर का योग्य एवं पराक्रमी वजीर मलिक अम्बर। अबसीनिया निवासी मलिक अम्बर बगदाद के बाजार से खरीदा गया एक गुलाम था, जिसे अहमदनगर के मंत्री मीरक दबीर चंगेज खां ने खरीदा था।

अहमदनगर की सेना में रहते हुए मलिक अम्बर ने अनेक सैनिक एवं असैनिक सुधार किये। उसने टोडरमल की लगान व्यवस्था से प्रेरणा ग्रहण कर अहमद नगर में भूमि सुधार किया। उसने टोडरमल की लगान व्यवस्था से प्रेरणा ग्रहण कर अहमद नगर में भूमि सुधार किया। उसने सैनिक सुधार के अन्तर्गत निजामशाही सेना में मराठों की भर्ती कर 'गुरिल्लायुद्ध पद्धति' की शुरुआत की। उसने अपनी राजधानी को कई स्थानों पर स्थानन्तरित किया। पहले परेन्द्रा से जुनार, फिर जुनार से दौलताबाद और अन्तत: 'खिर्की को अपनी राजधानी बनाया।

मलिक अम्बर ने जंजीरा द्वीप पर निजामशाही 'नौसेना' का गठन किया। उसकी बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत मलिक अम्बर युद्ध किये बना सन्धि करने के लिए सहमत हो गया। दोनों के बीच निम्नलिखित शर्तों पर 1617 ई. में संधि हुई

सन्धि की शर्तें: मुगलों की अधीनता से मुक्त हो चुका 'बालाघाट- मुगलों को पुन: प्राप्त हो गया। अहमदनगर के दुर्ग पर मुगलों का कब्जा हो गया। 16 लाख रुपये मूल्य के उपहार के साथ बादशाह आदिल शाह खुर्रम की सेवा में उपस्थित हुआ। खुर्रम की इस महत्वपूर्ण सफलता से खुश होकर सम्राट जहांगीर ने उसे 'शाहजहां' की उपाधि प्रदान की। खानखाना को दक्षिण में सूबेदार बनाया गया।

मलिक अम्बर ने 'बीजापुर' एवं 'गोलकुण्डा' से समझौता कर 1620 ई. में संधि की अवहेलना करते हुए अहमदनगर किले पर आक्रमण कर दिया। शाहजहां जो उस समय पंजाब के 'कागड़' के युद्ध में व्यस्त था, जहांगीर के अनुरोध पर पुन: दक्षिण आया। शाहजहां एवं मिलक अम्बर के मध्य 1621 ई. में दोबार संधि हुई।

इस संधि के पश्चात् शाहजहां को उपहार के रूप में अहमदनगर, गोलकुण्डा, बीजापुर एवं कुछ अन्य सीमावर्ती क्षेत्रों के शासकों से लगभग 64 लाख रु. मिले। इस प्रकार साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से जहांगीर के समय में दक्षिण में विशेष सफलता नहीं मिली परन्तु दक्षिण के इन राज्यों पर मुगल दबाव बढ़ गया।

1621 ई. में खुर्रम ने लोकप्रिय शहजादे खुसरो की हत्या करवा दी, उसकी असामयिक मृत्यु से पूरा देश स्तब्ध रह गया था।

कांगड़ा विजय (1620 ई.): शाहजादा खुर्रम के प्रतिनिधित्व में राजा विक्रमाजीत ने कांगड़ा के किले पर अधिकार कर लिया। जहांगीर द्वारा मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए किये गये प्रयास आंशिक रूप से सफल रहे।

नूरजहां: ईरान निवासी मिर्जा गयासबेग की पुत्री नूरजहां का वास्तविक नाम 'मेहरुन्निसा' था। आधुनिक अनुसंधानों ने नूरजहां के जन्म एवं प्रारंभिक जीवन के विषय में बहुत से रोमांचकारी उपाख्यानों का खंडन कर 'इकबालनामा-ए-जहांगीरी' के लेखक मोतमिद खां के संक्षिप्त विवरण की विश्वसनीयता को सिद्ध कर दिया है।

1594 ई. में नूरजहां का विवाह अलीकुली बेग से सम्पन्न हुआ। जहांगीर ने एक शेर मारने के कारण अलीकुली खां को 'शेर अफगान' की उपाधि प्रदान किया था। 1607 ई. में शेर अफगान की मृत्यु के पश्चात् मेहरुन्निसा को अकबर की विधवा सलीमा बेगम की सेवा में नियुक्त किया गया। मेहरुन्निसा को जहांगीर ने सर्वप्रथम 'नौरोज' त्यौहार

के अवसर पर देखा और उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जहांगीर ने मई, 1611 ई. में उससे विवाह कर लिया।

विवाह के पश्चात् जहांगीर ने उसे 'नूरमहल' एवं 'नूरजहां' की उपाधि प्रदान की।

1613 ई. में नूरजहां को 'पट्टमहिषी' या 'बादशाह बेगम' बनाया गया। विवाह के बाद नूरजहां ने 'नूरजहां गुट' का निर्माण किया।

नूरजहां गुटः इस गुट के महत्पूर्ण सदस्य थे- नूरजहां बेगम, एतमादुद्दौला (नूरजहां का पिता), अस्मत बेगम (नूरजहां की मां), आसफ खां (नूरजहां का भाई) एवं शाहजादा खुर्रम। यह गुट मुगल दरबार में जहांगीर के विवाह के तुरन्त बाद ही सक्रिय हो गया जिसका प्रभाव 1627 ई. तक रहा। नूरजहां के प्रभाव से प्रभावित जहांगीर के शासन काल को दो भागों में बांटा जा सकता हैं-

1. 1611 ई. से 1622 ई. तक।

2. 1622 ई. से 1627 ई. तक।

प्रथम काल में नूरजहां गुट ने शाही सेवा में अपने समर्थकों को अधिक मात्रा में नियुक्त कर उन्हें उच्च मनसब प्रदान किये। फलस्वरूप इस दल से ईर्ष्या करने वाले एक विरोधी दल का गठन खुसरो के नेतृत्व में हुआ।

इस बीच महावत खां की पदोन्नति में बाधा, खानेआजम की कैद, खुर्रम की अप्रत्याशित उन्नति, परवेज की अवनति एवं खुसरो के भाग्य का उतार-चढ़ाव होता रहा। इस काल में नूरजहां के परिवार के लोगों के मनसब में हुई वृद्धि का क्रम इस प्रकार था-

एतमादुद्दौला का मनसबः 1611 ई. में 2000/500, 1616 ई. में 7000/500 और 1619 ई. में 7000/7000 तक।

आसफ खां का मनसबः 1611 ई. में 500/100, 1616 ई. 5000/3000 और 1622 ई. में 6000/6000 तक।

इब्राहिम खां मनसबः 1616 ई. में 2500/2000 तक।

1620 ई. अन्त तक नूरजहां के सम्बन्ध खुर्रम से अच्छे नहीं रहे, क्योंकि नूरजहां को अब तक यह अहसास हो गया था कि शाहजहां के बादशाह बनने पर उसका प्रभाव शासन का कार्यो पर कम हो जागया, इसलिए नूरजहां ने जहांगीर के दूसरे पुत्र 'शहरयार' को महत्व देना प्रारम्भ किया।

चूंकि शहरयार अल्पायु एवं दुर्बल चरित्र का था, इसलिए उसके सम्राट बनने पर नूरजहां का प्रभाव पहले की तरह शासन को कार्यो में बना रहता , इस कारण से उसने 'शेर अफगान' से उत्पन्न अपनी पुत्री लाडनी बेगम की शादी 1620 ई. में शहराया से कर उसे 8000/4000 का मनसब प्रदान किया।

शाहजहां को जब इस बात का अहसास हुआ कि नूरजहां उसके प्रभाव को कम करना चाह रही है। उसने जहांगीर द्वारा कंधार दुर्ग पर आक्रमण कर उसे जीतने के आदेश की अवहेलना करते हुए 1623 ई. में खुसरो खां का वध कर दकन में विद्रोह कर दिया।

उसके विद्रोह को दबाने के लिए नूरजहां ने आसफखां को न भेज कर महावत खां को शाहजादा परवेज के नेतृत्व में भेजा। उन दोनों ने सफलता पूर्वक शाहजहां के विद्रोह को कुचल दिया।

शाहजहां ने पिता जहांगीर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और उसे क्षमा मिल गई। जमानत के रूप में शाहजहां के दो पुत्रों दाराशिकोह और औरंगजेब को बंधक के रूप में राजदरबार में रखा गया। 1625 ई. तक शाजहां का विद्रोह पूर्णतः शान्त हो गया।

महावत खां का विद्रोह (1626 ई.): शाहजहां के विद्रोह को दबाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाले महावत खां की सफलता से नूरजहां को ईर्ष्या होने लगी। नूरजहां को इसका अहसास था कि महावत खां उन लोगों में से हैं जिन्हें शासन के कार्यों में मेरा प्रभुत्व स्वीकार नहीं है।

महावत खां एवं शाहजादा परवेज की निकटता से भी नूरजहां को खतरा था। अतः उसके प्रभाव को कम करने के लिए नूरजहां ने उसे बंगाल जाने एवं युद्ध के समय लूटे गये धन का हिसाब देने के लिए कहा। इन कारणों के अतिरिक्त कुछ और कारण भी थे

जिससे अपमानित महसूस कर महावत खां ने विद्रोह कर काबुल जा रहे सम्राट जहांगीर को झेमल नदी के तट पर 1626 ई. में कैद कर लिया। आसफ खां एवं नूरजहां एवं उसके भाई आसफ खां को भी बन्दी बना लिया। कैद में रखने पर भी महावत खां ने जहांगीर के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं सम्मान की बात नहीं सोची। रोहतास में नूरजहां एवं जहांगीर ने कूटनीति के द्वारा अपने को महावत खां के प्रभाव से मुक्त कर लिया। महावत खां अपनी सुरक्षा के लिए 'थट्टा' की ओर भाग गया।

28 अक्टूबर, 1628 को परवेज की मृत्यु के बाद एक तरह से महावत खां कमजोर हो गया और वह शाहजहां की सेवा में चला गया।

7 नवम्बर, 1627 ई. को 'भीमवार' नामक स्थान पर जहांगीर की मृत्यु हो गई। उसे 'शाहदरा' में रावी नदी के किनारे दफनाया गया।

नूरजहां की मां अस्मत बेगम ने गुलाब से इत्र निकालने की विधि को खोजा था। जहांगीर के दरबार में विलियम हाकिंस, विलियम फिंच, सर टॉमस रो एवं एडवर्ड टैरी जैसे यूरोपीय यात्री आये थे।

जहांगीर के पांच पुत्र थे-

1. खुसरो,
2. परवेज,
3. खुर्रम,
4. शहरयार और
5. जहांदार।

हांगीर के चरित्र में एक अच्छा लक्षण था- प्रकृति में हृदय से आनंद लेना तथा फूलों को प्यार करना, उत्तम सौन्दर्य, बोधात्मक रुचि से सम्पन्न। स्वयं चित्रकार होने के कारण जहांगीर कला एवं साहित्य का पोषक था। उसका 'तुजुके-जहांगीरी' संस्मरण उसकी साहित्यिक योग्यता का प्रमाण है। उसने कष्टकर चुंगियों एवं करों को समाप्त किया तथा हिजड़ों के व्यापार का निषेध करने का प्रयास किया।

1612 ई. में जहांगीर इसको निगाह-ए-दश्त कहता है। उसने एक आदर्श प्रेमी की तरह 1615 ई. में लाहौर में संगमरमर की एक सुन्दर क्रब बनवायी जिस पर एक प्रेमपूर्ण अभिलेख था ''यदि मैं अपनी प्रेयसी का चेहरा पुनः एक बार देख पाता तो कयामत के दिन तक अल्लाह को धन्यवाद देता रहता।''

शाहजहां (1628-1658 ई.)

जोधपुर के शासक राजा उदयसिंह की पुत्री जगत गोंसाई (जोधाबाई) के गर्भ से 5 जनवरी, 1592 ई. को खुर्रम (शाहजहां) का जन्म लाहौर में हुआ था।

1606 ई. में शाहजादा खुर्रम को 8000 जात एवं 5000 वार का मनसब प्राप्त हुआ। 1612 ई. में खुर्रम का विवाह आसफ खां की पुत्री

आर्जुमन्द बानों बेगम से हुआ जिसे शाहजहां ने 'मालिका-ए-जमानी' की उपाधि प्रदान की। 1631 ई. में प्रसव पीड़ा के कारण उसकी मृत्यु हो गई। आगरा में उसके शव को दपुना कर उसकी याद में संसार प्रसिद्ध 'ताजमहल' का निर्माण किया गया।

शाहजहां की प्रारम्भि सफलता के रूप में 1614 ई. में उसके नेतृत्व में मेवाड़ विजय को माना जाता है। 1616 ई. में शाहजहां द्वारा दक्षिण के अभियान में सफलता प्राप्त करने पर उसे 1617 ई. में जहांगीर ने 'शाहजहां'की उपाधि प्रदान की।

नूरजहां के रुख को अपने प्रतिकूल जानकर शाहजहां ने 1622 ई. में विद्रोह कर दिया जिसमें वह पूर्णत: असफल रहा। 1627 ई. में जहांगीर की मृत्यु के उपरान्त शाहजहां ने अपने ससुर आसफ खां को यह निर्देश दिया कि वह शाही परिवार के उन समस्त लोगों को समाप्त कर दे जो राज सिंहासन के दावेदार हैं।

जहांगीर की मृत्यु के समय शाहजहां दक्षिण में था। अत: उसके श्वसुर आसफ खां ने शाहजहां के आने तक खुसरो के लड़के दावर बख्श को गद्दी पर बैठाया। शाहजहां के वापस आने पर दाबर बख्श का कत्ल कर दिया गया। इस प्रकार दाबर बख्श को बलि का बकरा कहा जाता है।

आसफ खां ने शहरयार, दाबर बक्श, गुरुसस्प, (खुसरो का लड़का), होशंकर (दानियाल के लड़के) आदि का कत्ल कर दिया।

24 फरवरी, 1628 ई. को शाहजहां आगरा में 'अबुल मुजफ्फर शहाबुद्दीन मुहम्मद साहिब किरन-ए-सानी' की उपाधि से सिंहासन पर बैठा। विश्वासपात्र आसफ खां को 7000 जात, 7000 सवार एवं राज्य के वजीर का पद प्रदान किया। महावत खां को 7000 जात 7000 सवार के साथ 'खान-खाना' की उपाधि प्रदान की गई। नूरजहां को दो लाख रु. प्रति वर्ष की पेंशन देकर लाहौर जाने दिया गया जहां 1645 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

शाहजहां के समय में हुए विद्रोह

बुन्देलखण्ड का विद्रोह (1628-1636 ई.): वीर सिंह बुन्देला के पुत्र जूझार सिंह ने प्रजा पर कड़ाई कर बहुत सा धन एकत्र कर लिया था। एकत्र धन की जांच न करवाने के कारण शाहजहां ने उसके ऊपर 1628 ई. में आक्रमण कर दिया।

1629 ई. में जूझार सिंह ने शाजहां के सामने आत्मसर्पण कर माफी मांग ली। लगभग 5 वर्ष की मुगल वफादरी के बाद जूझार सिंह ने 'गोंडवाना' पर आक्रमण कर वहां के शासक प्रेम नारायण की राजधानी 'चौरागढ़' पर अधिकार कर लिया।

औरंगजेब के नेतृत्व में एक विशाल मुगल सेना जूझार सिंह को परास्त कर भगत सिंह के लड़के देवी सिंह को ओरछा का शासक बना दिया। इस तरह यह विद्रोह 1635 ई. में समाप्त हो गया। चंद्रराय एवं छत्रसाल जैसे महोबा शासकों ने बुन्देलों के संघर्ष को जारी रखा।

खानेजहां लोदी का विद्रोह (1628-1631 ई.): पीर खां ऊर्फ खानेजहां लोदी एक अफगान सरदार था। इसे शाहजहां के समय में मालवा की सूबेदारी मिली थी।

1629 ई. में मुगल दरबार में सम्मान न मिलने के कारण अपने को असुरक्षित महसूस कर खानेजहां अहमदनगर के शासक मुर्तजा निजामशाह के दरबार में पहुंची। निजाम ने उसे 'बीर' की जागीरदारी इस शर्त पर प्रदान की कि वह मुगलों के कब्जे से अहमद नगर के क्षेत्र को वापस ले।

1629 ई. में शाहजहां के दक्षिण पहुंच जाने पर खानेजहां को दक्षिण में कोई सहायता न मिली सकी, अत: निराश होकर उसे उत्तर-पश्चिम की ओर भागना पड़ा।

अन्त में बांदा जिले के 'सिंहोदा' नामक स्थान पर 'माधोसिंह' द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। इस तरह 1631 ई. तक खानेजहां का विद्रोह समाप्त हो गया।

पुर्तगालियो के बढ़ते प्रभाव को समाप्त करने के उद्देश्य से शाहजहां ने 1632 ई. में उनके महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र 'हुगली' पर अधिकार कर लिया।

शाहजहां के शासन काल में सिख पंथ के छठें गुरु 'हरगोविन्द' से मुगलें का संघर्ष हुआ जिसमें सिक्खों की हार हुई।

शाहजहां का साम्राज्य विस्तार

दक्षिण भारत में शाहजहां के साम्राज्य विस्तार का क्रम इस प्रकार है-

अहमदनगर: जहांगीर के राज्य काल में मुगलों के आक्रमण से अहमनगर की रक्षा करने वाले मलिक अम्बर की मृत्यु के उपरान्त सुल्तान एवं मलिक अम्बर के पुत्र फतह खां के बीच आन्तरिक कलह के कारण शाहजहां के समय महावत खां को दक्कन एवं दौलताबाद प्राप्त करने में सफलता मिली।

1633 ई. में अहमदनगर का मुगल साम्राज्य में विलय किया गया और नाममात्र के शासक हुसैन शाह को ग्वालियर के किले में कारावास में डाल दिया गया। इस प्रकार निजामशाही वंश का अन्त हुआ, यद्यपि शिवाजी के पिता शाह जी ने 1635 ई. में मुर्तजा तृतीय को निजामशाही वंश का शासक घोषित कर संघर्ष किया, किन्तु सफलता हाथ न लगी।

चूंकि शाहजी की सहायता अप्रत्यक्ष रूप से गोलकुण्डा एवं बीजापुर के शासकों ने की थी, इसलिए शाहजहां इनके दण्ड देने के उद्देश्य से दौलताबाद पहुंचा। गोलकुण्डा के शासक 'अब्दुल्लाशाह' ने डर कर शाहजहां से निम्न शर्तों पर संधि कर लिया- बादशाह को 6 लाख रुपये का वार्षिक कर देने उसके नाम के सिक्के ढलवाने एवं खुतबा पढ़वाने की बात मान ली, साथ ही बीजापुर के विरुद्ध मुगलों की सैन्य कार्यवाही में सहयोग की बात को मान लिया।

गोलकुण्डा के शासक ने अपनी पुत्री का विवाह औरंगजेब के पुत्र मुहम्मद से कर दिया। मीर जुमला (फारस का प्रसिद्ध व्यापारी) जो गोलकुण्डा का वजीर था मुगलों की सेना में चला गया और शाहजहां को कोहिनूर हीरा भेंट किया।

बीजापुर के शासक आदिल शाह द्वारा सरलता से अधीनता न स्वीकार करने पर शाहजहां ने उसके ऊपर तीन ओर से आक्रमण किया। बचाव का कोई भी मार्ग न पाकर आदिल शाह ने 1636 ई. में शाहजहां की शर्तों को स्वीकार करते हुए संधि कर ली। संधि की शर्तों में बादशाह को वार्षिक कर देना, गोलकुण्डा को परेशान न करना, शाह जी की सहायता न करना आदि शामिल था। इस तरह बादशाह शाहजहां ने 11 जुलाई, 1636 ई. को औरंगजेब को दक्षिण राजप्रतिनिधि नियुक्त कर वापस आ गया।

औरंगजेब 1636-1644 ई. तक दक्षिण का सूबेदार रहा। इस बीच उसने 'औरंगाबाद' को मुगलों द्वारा दक्षिण में जीते गये प्रदेशों की राजध

ानी बनाया। इसने दक्षिण के मुगल प्रदेश को 4 सूबों में विभाजित किया-

1. खानदेश, इसकी राजधानी 'बुरहानपुर' थी। इसके पास असीरगढ़ का शक्तिशाली किला था,
2. बरार, इसकी राजधानी 'एलिचपुर' थी,
3. तेलंगाना, इसकी राजधानी नन्देर थी एवं
4. अहमदनगर, इसके अन्तर्गत अहमदनगर के जीते गये क्षेत्र शामिल थे।

1644 ई. में औरंगजेब को विवश होकर दक्कन के राजप्रतिनिधि पद से इस्तीफा देना पड़ा। इसका कारण उसके प्रति दाराशिकोह का निरंतर विरोध या दाराशिकोह के प्रति शाहजहां का पक्षपात था।

तदुपरांत औरंगजेब 1645 ई. में गुजरात का शासक नियुक्त हुआ। बाद में वह बल्ख, बदख्शा तथा कंधार पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया, पर ये आक्रमण असफल रहे। 1652 ई. में पुनः उसे दूसरी बार दक्कन का राजप्रतिनिधि बना कर भेजा गया। तब से दौलताबाद या औरंगाबाद उसकी सरकार का प्रधान कार्यालय रहा।

1652-1657 ई. के दक्षिण की सूबेदारी के अपने दूसरे कार्यकाल में औरंगजेब ने दक्षिण में मुर्शिदकुली खां के सहयोग से लगान व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था ने दक्षिण में मुर्शिदकुली खां के सहयोग से लगान व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित करने का प्रयास किया। अपने इन सुधार कार्यों में औरंगजेब ने टोडरमल एवं मलिक अम्बर की लगान व्यवस्था को आधार बनाया।

औरंगजेब ने अपने द्वितीय कार्य काल (दक्कन की सूबेदारी) के दौरान किये गये सैनिक अभियान के अन्तर्गत गोलकुण्डा के शासक कुतुबशाह को 1636 ई. में सम्पन्न संधि की अवहेलना करने एवं मीरजुमला के पुत्र मोहम्मद अमीन को कैद करने के अपराध में दण्ड देने के इरादे से फरवरी, 1656 ई. में गोलकुण्डा के दुर्ग पर घेरा डाल दिया।सुल्तान अब्दुल्ला कुतुबशाह औरंगजेब के आक्रमण से इतना भयभीत हो गया कि वह राजकुमार की हर शर्त मानने को तैयार हो गया। परिणामस्वरूप एक और संधि सम्पन्न हुई। सुल्तान ने मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली।

मीर जुमलाः आर्दिस्तान के निवासी मीर जुमला का वास्तविक नाम मीर मोहम्मद सैयद था। गोलकुण्डा आकर वह काफी सम्पन्न हो गया। सम्पन्नता के कारण ही गोलकुण्डा के सुल्तान कुतुबशाह से उसका सम्पर्क हो गया। सुल्तान ने उसे प्रधानमंत्री का पद देकर 'मीर जुमला' की उपाधि प्रदान की। कालान्तर में मीर जुमली की महत्वाकांक्षा एवं उसकी सम्पन्नता के कारण गोलकुण्डा का सुल्तान उससे ईर्ष्या करने लगा, परिणामस्वरूप औरंगजेब को हस्तक्षेप कर मामले को निपटाना पड़ा।

मुगल आधिपत्य के समय गोलकुण्डा विश्व के सबसे बड़े हीरा विक्रेता बाजार के रूप में प्रसिद्ध था।

गोलकुण्डा के बाद औरंगजेब का ध्यान बीजापुर की ओर गया। उस समय बीजापुर पर आदिलशाह द्वितीय शासन कर रहा था। औरंगजेब ने इस शासक पर आदिलशाही वंश का न होने का आरोप लगाकर मीर जुमला के सहयोग से बीदर के शक्तिशाली किले पर आक्रमण किया। लगभग 27 दिन के संघर्ष के बाद औरंगजेब को इस अभियान में सफलता मिली। अगस्त, 1657 में औरंगजेब ने महावत खां के सेनापतित्व में गुलवर्गा एवं कल्याणी पर अधिकार कर लिया पर बीजापुर को पूर्णतः नष्ट करने की औरंगजेब की योजना अधूरी रही क्योंकि शाहजहां के खराब स्वास्थ्य एवं दारा तथा उसके मध्य मतभेद के कारण उसको बीजापुर से एक संधि कर दक्षिण से वापस आना पड़ा। सन्धि के तहत आदिल शाह द्वितीय ने बीदर, कल्याणी एवं परेंदा के किले एवं एक करोड़ रुपये वार्षिक कर के रूप में मुगलों को देने को कहा।

गोलकुण्डा एवं बीजापुर के अभियान के समय ही औरंगजेब ने अपनी एक सैनिक टुकड़ी को शिवाजी के विरुद्ध भेजा, शिवाजी ने परास्त होकर मुगल अधीनता स्वीकार कर लिया।

मध्य एशियाः शाहजहां ने मध्य एशिया को विजित करने के लिए 1645 ई. में शाहजादा मुराद एवं 1647 ई. में शाहजादा औरंगजेब को भेजा, पर उसे सफलता न प्राप्त हो सकी।

कन्धारः कन्धार मुगलों एवं फारसियों के मध्य लम्बे समय तक संघर्ष का कारण बना रहा। 1628 ई. में कन्धार का किला वहां के किलेदार अली मर्दान खां ने मुगलों को दे दिया। 1648 ई. में इसे पुनः फारसियों ने अधिकार में कर लिया।

1649 ई. एवं 1652 ई. में औरंगजेब ने कंधार को जीतने के लिए दो सैन्य अभियान किया, परन्तु दोनों में असफलता हाथ ली।

1653 ई. में दारा शिकोह द्वारा कंधार जीतने की कोशिश नाकाम रही। इस प्रकार शाहजहां के शासन काल में कंधार ने मुगल आधिपत्य को नही स्वीकार किया।

उत्तराधिकार का युद्ध

शाहजहां के बीमार पड़ने पर उसके चारों पुत्र दारा, शुजा, औरंगजेब एवं मुराद में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया। शाहजहां की मुमताज द्वारा उत्पन्न 14 सन्तानों में 7 जीवित थीं जिनमें 4 लड़के एवं 3 लड़कियों- जहान आरा, रोशन आरा एवं गोहन आरा थीं जहान आरा ने दारा का, रोशन आरा ने औरंगजेब का एवं गोहन आरा ने मुराद का समर्थन किया।

शाहजहां के चारों पुत्रों में दारा सर्वाधिक उदार, शिक्षित एवं सभ्य था। शाहजहां ने दारा को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और उसे शाह बुलन्द इकबाल की उपाधि दी।

उत्तराधिकार की घोषणा से ही 'उत्तराधिकार का युद्ध' प्रारम्भ हुआ। युद्धों की इस श्रृंखला का प्रथम युद्ध शाहशुजा एवं दारा के लड़के सुलेमान शिकोह तथा आमेर के राजा जयसिंह के मध्य 24 फरवरी, 1658 ई. को 'बहादुरपुर' में हुआ, इस संघर्ष में शुजा पराजित हुआ। दूसरा युद्ध औरंगजेब एवं मुरादबख्श तथा दारा की सेना, जिसका नेतृत्व

महाराजा जसवन्त सिंह एवं कासिम खां कर रहे थे, के मध्य 25 अप्रैल, 1658 ई. को 'धरमत' नामक स्थान पर हुआ, इसमें दारा की पराजय हुई। औरंगजेब ने इस विजय की स्मृति में 'फतेहाबाद' नामक नगर की स्थापना की।

तीसरा युद्ध दारा एवं औरंगजेब के मध्य 8 जून, 1658 ई. को 'सामूगढ़' में हुआ। इसमें भी दारा को पराजय का सामना करना पड़ा। 5 जनवरी, 1659 को उत्तराधिकार का एक और युद्ध खजुवा नामक स्थान पर लड़ा गया जिसमें जसवंत सिंह की भूमिका औरंगजेब के विरुद्ध थी, किन्तु औरंगजेब सफल हुआ।

उत्तराधिकार की अन्तिम लड़ाई द्वारा एवं औरंगजैब के मध्य 12 से 14 अप्रैल, 1659 ई. को 'देवराई की घाटी' में लड़ी गयी, इसी युद्ध में पराजित होने के उपरान्त दारा को इस्लाम धर्म की अवहेलना करने

PERFECTION IAS

के अपराध में 30 अगस्त, 1659 ई. को कत्ल कर दिया गया। बाद में उसे हुमायूं की कब्र के गुम्बद के नीचे एक तहखाने में दफनाया गया। औरंगजेब ने सितम्बर, 1658 ई. में अपने पिता शाहजहां को आगरा के किले में कैद कर दिया।

अपने कैदी जीवन के आठवें वर्ष 31 जनवरी, 1666 ई. को 74 वर्ष की अवस्था में शाहजहां की मृत्यु हो गयी। सम्भवत: वादशाह के साधारण नौकरों एवं हिजड़ों ने उसकी अर्थी को कन्धा दिया। शाहजहां को ताजमहल में मुमताज के बगल में दफनाया गया।

- शाहजहां ने सिजदा और पायबोस प्रथा समाप्त किया। इलाही संवत के स्थान पर हिजरी संवत का प्रयोग आरम्भ किया।
- गोहत्या पर से प्रतिबन्ध उठा लिया। हिन्दुओं को मुस्लिम दास रखने पर पाबन्दी लगा दी।
- अपने शासन के सातवें वर्ष तक आदेश जारी किया जिसके अनुसार अगर कोई हिन्दू स्वेच्छा से मुसलमान बन जाय तो उसे अपने पिता की सम्पत्ति से हिस्सा प्राप्त होगा।
- हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए एक पृथक् विभाग खोला।
- पुर्तगालियों से युद्ध होने पर उसने आगरा के गिरिजाघर को तुड़वा दिया।

वास्तुकला की दृष्टि से शाहजहां का शासन काल मध्यकालीन इतिहास का 'स्वर्ण काल' कहा जाता है।

शाहजहां के रत्नजड़ित सिंहासन में विश्व का सबसे महंगा हीरा 'कोहिनूर' लगा था। शाजहां के राज्यकाल के चौथे तथा पांचवे वर्ष में 1630-1632 ई. में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा जिससे दक्कन तथा गुजरात वीरान हो गये। अब्दुल हमीद लाहौरी और अंग्रेज व्यापारी यात्री पीटर मुंडी ने इस अकाल की भीषणता का वर्णन किया है।

शाहजहां के शासन काल में अनेक विदेशी यात्रियों ने मुगलकालीन भारत की यात्रा की। इन विदेशी यात्रियों फ्रांसीसी थे। जीन बपतिस्ते ट्रेवर्नियर, जो एक जौहरी था, ने शाहजहां और औरंगजेब के शासन काल में छ: बार मुगल साम्राज्य की में आने वाले दो इतालवी यात्री पीटर मुण्डी और निकोलाओं मनूची थे।

मनूची अनेक घटनाओं विशेषत: उत्तराधिकार युद्ध का प्रत्यक्षदर्शी था। उसने 'स्टोरियों डी मोगोर' नामक अपने यात्रा वृतान्त में समकालीनप इतिहास का बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

औरंगजेब (1658-1707 ई.)

कमुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब का जन्म 3 नवम्बर, 1618 को उज्जैन के 'दोहद' नाम स्थान पर मुमताज के गर्भ से हुआ था। औरंगजेब के बचपन का अधिकांश समय नूरजहां के पास बीता।

1643 ई. में औरंगजेब को 10,000 जात एवं 4,000 सवार का मनसब प्राप्त हुआ। 'ओरछा' के जूझार सिंह के विरुद्ध औरंगजेब को प्रथम युद्ध का अनुभव प्राप्त हुआ।

18 मई, 1637 ई. को फारस के राजघराने की दिलरास बानों बेगम के साथ औरंगजेब का निकाह हुआ। 1636 ई. से 1644 ई. एवं 1652 ई. से 1657 ई. तक औरंगजेब दक्षिण में सूबेदार के पद पर रहा।

दक्कन के अतिरिक्त औरंगजेब गुजरात (1645 ई.) मुल्तान (1640 ई.) एवं सिन्ध का भी गवर्नर रहा। आगरा पर कब्जा कर जल्दबाजी में औरंगजेब ने अपना राज्याभिषेक अबुल मुजफ्फर मुहीउद्दीन मुजफ्फर औरंगजेब बहादुर आलमगीर' की उपाधि से 31 जुलाई, 1658 ई. को दिल्ली में करवाया। 'खजुवा' एवं 'देवराई के युद्ध में सफल होने के बाद 15 मई, 1659 ई. को औरंगजेब का दूसरी बार राज्याभिषेक हुआ। औरंगजेब के सिंहासनारूढ़ होने पर फारस के शाह ने मैत्री स्वरूप बुदाग बेग के नेतृत्व में एक दूत मण्डल भेजा।

औरंगजेब का साम्राज्य विस्तार

अपने साम्राज्य विस्तार के अन्तर्गत औरंगजेब ने सर्वप्रथम असम को अपने अधिकार में करना चाहा। उसने मीर जुमला को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया और उसे असम को जीतने की जिम्मेदारी सौंपी।

1 नवम्बर, 1661 ई. को मीर जुमला ने कूचबिहार की राजधानी को अपने अधिकार में कर लिया। असम पर उस समय अहोम जाति के लोग शासन कर रहे थे, मीर जुमला ने अहोमों को परास्त कर 1662 ई. में 'गढ़गावं' पर अधिकार कर लिया।

अप्रैल, 1663 ई. में मीर जुमला की मृत्यु के बाद शाईस्ता खां को बंगाल का सूबेदार बनाया गया। उसने 1663 ई. में 'चटगांव' को अपने कब्जे में कर लिया परन्तु 1667 ई. में असम के राजा 'चक्रध्वज' ने राजधानी 'गुवाहाटी' पर कब्जा कर लिया। कालान्तर में असम के आन्तरिक संघर्ष का फायदा उठाकर मुगलों ने 1670 ई. में 'कामरूप' के अतिरिक्त शेष असम पर पुन: अधिकार कर लिया।

औरंगजेब की दक्षिण नीति

औरंगजेब की दक्षिण नीति के विषय में इतिहासाकारों का मानना है कि-

1. अपनी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के कारण दक्षिण के राज्यों को औरंगजेब जीतना चाहता था। शाहजहां की भांति दक्कन के प्रति औरंगजेब की नीति भी अंशत: राजनीति हित से और अंशत: धार्मिक विचारों से प्रभावित थी।
2. दक्षिण में मराठा शक्ति का शिवाजी के नेतृत्व में वहां के शिया सम्प्रदाय के सुल्तानों के सहयोग से दिन-प्रतिदिन उत्थान हो रहा था, इस कारण भी औरंगजेब ने दक्षिण के राज्यों को कुचलना चाहा। इस मत का समर्थन आधुनिक इतिहासकार करते हैं।

औरंगजेब के दक्षिण में सैनिक अभियान के पीछे उपरोक्त कारण ही विद्यमान थे। 1682 ई. में अपने पुत्र शहजादा मुहम्मद का पीछा करते हुए औरंगजेब दक्षिण भारत पहुंचा। इसके बाद उसके उत्तर भारत आने का मौका नहीं मिला। यही दक्षिण भारत औरंगजेब का कब्रिस्तान सिद्ध हुआ।

बीजापुर (1665-1687 ई.): सिंहासन पर बैठने के उपरान्त औरंगजेब ने बीजापुर के शासक आदिलशाह द्वितीय को 1657 ई. की संधि का पालन न करने के कारण दण्ड देने के लिए जयपुर के राजा जयसिंह को 1665 ई. में दक्षिण भेजा। जयसिंह ने बीजापुर को जीतने के पूर्व शिवाजी के खिलाफ एक महत्वपूर्ण लड़ाई में सफलता प्राप्त कर 1665 ई. में 'पुरन्दर की सन्धि' की।

पुरन्दर के बाद जयसिंह ने शिवाजी के सहयोग से बीजापुर पर नवम्बर, 1665 ई. में आक्रमण किया। प्रारम्भिक सफलता से उत्साहित होकर जयसिंह ने कई गलत निर्णय लिये जिस कारण से वह बीजापुर पर अधिकार करने में असफल रहा।

औरंगजेब ने नाराज होकर जयसिंह को 1666 ई. में वापस आने का आदेश दिया। रास्ते में 'बुरहानपुर' के समीप 11 जुलाई, 1666 ई. को जयसिंह की मृत्यु हो गई।

दिसम्बर, 1672 ई. में आदिल शाह की मृत्यु के बाद उसका अल्पवयस्क पुत्र सिकन्दर आदिल शाह बीजापुर का सम्राट बना। उसके समय में बीजापुर में दो गुट-एक खवास खां के नेतृत्व में एवं दूसरा बहलोल खां के नेतृत्व में सक्रिय था। दोनों गुटों के आन्तरिक मतभेदों का फायदा उठाकर मुगल सूबेदार बहादुर खां ने 1676 ई. में बीजापुर पर आक्रमण किया, परन्तु अभियान असफल रहा।

1679 ई. में दिलेर खां को दक्कन का सूबेदार बना कर बीजापुर को जीतने का अधिकार सौंपा गया, उसके सहयोग हेतु शाह आलम भी दक्षिण आया परन्तु इन दोनों को भी असफलता का सामना करना पड़ा। अप्रैल, 1685 ई. में शाहजादा आजम के नेतृत्व में मुगल सेनाओं ने बीजापुर पर आक्रमण किया। कई महीनों तक दुर्ग को घेरे रखने पर भी कोई सफलता हाथ न लगने पर 13 जुलाई, 1685 ई. को स्वयं सम्राट औरंगजेब ने आक्रमण की कमान अपने हाथों में ले लिया।

परिणामस्वरूप 22 सितम्बर, 1686 ई. को बीजापुर के शासक सिकन्दर आदिलशाह ने आत्मसमर्पण कर दिया, औरंगजेब ने सिकन्दर शाह का स्वागत किया और उसे खान का पद दिया तथा एक लाख रुपये वार्षिक पेंशन भी दी और उसे दौलताबाद के दुर्ग में कैद करवा दिया, जहां 23 अप्रैल, 1700 ई. को इसकी मृत्यु हो गई। अन्ततः बीजापुर मुगल अधिकार में आ गया।

गोलकुण्डाः 1656 ई. में (गोलकुण्डा सुल्तान एवं मुगल सम्राट के बीच) हुई सन्धि की अवहेलना करने, मुगलों के सथ संघर्ष में बीजापुर एवं मराठों का सहयोग करने तथा हीरे-जवाहरात, सोने-चांदी के खानों की भरमार के कारण ही औरंगजेब ने गोलकुण्डा पर अधिकार करना चाहा। गोलकुण्डा पर औरंगजेब के सैनिक अभियान के समय वहां का अयोग्य एवं विलासप्रिय शासक अबुल हसन था।

शासन के कार्यों की पूरी जिम्मेदारी 'मदन्ना' एवं 'अकन्ना' नामक ब्राह्मणों के हाथ में थी। औरंगजेब ने गोलकुण्डा पर अधिकार करना चाहा। गोलकुण्डा पर औरंगजेब के सैनिक अभियान के समय वहां का अयोग्य एवं विलासप्रिय शासक अबुल हसन था।

शासन के कार्यों की पूरी जिम्मेदारी 'मदन्ना' एवं 'अकन्ना' नामक ब्राह्मणों के हाथ में थी। औरंगजेब ने जुलाई, 1685 ई. में 'मुअज्जम' को खानेजहां के साथ गोलकुण्डा पर अधिकार के लिए भेजा। सुल्तान अबुल हसन ने डरकर मुगलों की सभी शर्तों को मानकर संधि कर ली, परन्तु कालान्तर में सुल्तान ने संधि की अवहेलना करना प्रारम्भ कर दिया, जिस कारण से स्वयं सम्राट औरंगजेब ने 7 फरवरी, 1687 ई. को आक्रमण की बागडोर संभालते हुए लगभग आठ महीने के अथक प्रयत्न के बाद भी सफलता नहीं मिली तो औरंगजेब ने अब्दुल्लागानी नाम एक अफगान सरकार को लालच देकर किले का फाटक खुलवा लिया और 1697 ई. को दुर्ग पर अधिकार किया।

सुल्तान को 50,000 रुपये की वार्षिक पेंशन देकर 'दौलताबाद' के किले में कैद कर दिया गया। साथ ही गोलगुण्डा का पूर्ण विलय मुगल साम्राज्य में हो गया। इस प्रकार कहा जाता है कि जिस प्रकार अकबर ने असीरगढ़ का किला सोने की कुंजियों से खोला उसी प्रकार औरंगजेब ने गोलकुण्डा किला सोने की कुंजियों से खोला।

औरंगजेब एवं मराठा संघर्ष

- मुगलों से शिवाजी का पहला संघर्ष 1656 ई. में हुआ जब शिवाजी ने अहमदनगर एवं जुन्नार के किले पर आक्रमण किया।
- 1659 ई. में शिवाजी ने बीजापुरी सरदार अफजल खां को हराया।

1633 ई. में मुगल सूबेदार शाइस्ता खां को पराजित किया।

शिवाजी की दक्षिण में बढ़ती हुई शक्ति को कुचलने के लिए औरंगजेब ने जयसिंह को दक्षिण को दक्षिण भेजा। जयसिंह एवं शिवाजी के मध्य 22 जून, 1665 ई. को प्रसिद्ध पुरन्दर की संधि सम्पन्न हुई। संधि की शर्तों के अनुसार शिवाजी ने 4 लाख हूण वाले 23 किले मुगलों को सौंप दिया तथा अपने पुत्र शम्भू को मुगल सेवा में भेजकर जयसिंह के कहने पर स्वयं 22 मार्च, 1666 ई. को आगरा के किले के -दीवाने आम' में औरंगजेब के समक्ष प्रस्तुत हुआ, यहां से शिवाजी को कैद कर 'जयुपर भवन' में रख दिया गया, जहां से शिवाजी फरार हो गये।

इसके बाद शिवाजी तीन वर्षों तक मुगलों के साथ शान्तिपूर्वक रहे। औरंगजेब ने उन्हें 'राजा' की उपाधि तथा बरार में एक जागीर दी तथा उनके पुत्र शम्भू को पंचहजारी सरदार के पद पर नियुक्त किया।

शिवाजी ने 'रायगढ़' में 16 जून, 1674 ई. को अपना राज्याभिषेक करवाकर 'छत्रपति' की उपाधि धारण किया। 14 अप्रैल, 1680 ई. को उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र शम्भू मराठा शासक बना। औरंगजेब ने एक संघर्ष में 1 मार्च, 1689 ई. को उसकी हत्या कर रायगढ़ पर अधि कार कर लिया। औरंगजेब को मराठों के संघर्ष में काफी धन-जन की हानि सहनी पड़ी। नेपोलियन प्रथम कहा करता था- 'स्पेन के फोड़े ने मेरा नाश किया वैसे ही दक्षिण के फोड़े ने औरंगजेब का नाश किया; औरंगजेब के पतन के साथ-साथ इसने मुगल साम्राज्य के पतन का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया।'

औरंगजेब के विरुद्ध हुए महत्वपूर्ण विद्रोह

औरंगजेब की नीतियों के विरुद्ध हुए विद्रोहों के पीछे महत्वपूर्ण कारण उकसा राजत्व सिद्धांत तथा उसकी धार्मिक असहिष्णुता थी। किसानों के विद्रोह के पीछे भूमि से जुड़े हुए विवाद, सिक्खों के विद्रोह के पीछे धार्मिक कारण, राजपूतों के विद्रोह की पीछे उत्तराधिकार की समस्या एवं अफगानों के विद्रोह के पीछे एक अलग अफगान राज्य के गठन की भावना कार्य कर रही थी।

जाट विद्रोहः धार्मिक असहिष्णुता एवं किसान विरोधी नीतियों के कारण ही औरंगजेब के समय का पहला विद्रोह मथुरा में जाट नेता 'गोकुला' के नेतृत्व में 1669 ई. में प्रारम्भ हुआ। मुगल सेनापति अब्दुल नवी विद्रोह को कुचलने के प्रयास में मारा गया। मुगल फौजदार हसन अली खां ने नेतृत्व में मुगल सेना ने गोकुला को पकड़ कर उसके शरीर को कई भागों में बांट डाला।

1686 ई. में जाट नेता 'राजाराम' एवं 'रामचेरा' ने जाट विद्रोह का नेतृत्व किया। राजाराम ने मुगल सेनानायक मुगीर खां की हत्या कर सिकन्दरा में स्थिर अकबर के मकबरे में भी लूट-पाट की। इतिहासकार मनूची लिखता है कि 'उसने अकबर की हड्डियों को खोद कर जला भी दिया।' औरंगजेब के पुत्र बीदर बख्श एवं आमेर नरेश विशन सिंह को एक विशाल मुगल सेना के साथ भेजा गया। इन दोनों को जाटों के खिलाफ 1689 ई. में सफलता मिली राजाराम संघर्ष में मारा गया।

राजाराम के बाद उसके भतीजे चूरामन ने जाट विद्रोह का नेतृत्व संभाला। चूरामन ने स्वतंत्र भरतपुर राज्य की नींव डाली। यह औरंगजेब के अन्तिम समय तक जाट विद्रोह का नेतृत्व करता रहा। औरंगजेब की नीति के विरुद्ध दूसरे सशस्त्र विरोध का नेतृत्व बुन्देला राजा छत्रसाल ने किया। शिवाजी के दृष्टांत से प्रोत्साहित होकर छत्रसाल ने 'साहस और

PERFECTION IAS

स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करने का स्वप्न देखा'। उसने मुगलों पर कई विजय प्राप्त की तथा पूर्वी मालवा में अपने लिए एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफल हुआ।

सिक्ख विद्रोहः 16वीं शताब्दी में 'सिक्ख सम्प्रदाय' की स्थापना 'गुरू नानक' जी ने किया। सिक्खों के चौथे गुरु रामदास के समय गुरुत्व का पद पैतृक हो गया। अमृतसर के प्रसिद्ध 'स्वर्ण मंदिर' का निर्माण उन्हीं के समय हुआ जिसके लिये सम्राट अकबर ने भूमि उपलब्ध करायी थी। 5वें गुरु अर्जुन देव के समय में प्रसिद्ध सिक्ख ग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहिब' का संकलन किया गया।

गुरु अर्जुन के पुत्र हरगोविन्द ने शाजहां के विरुद्ध विद्रोह कर उसकी सेना को 1628 ई. में परास्त किया। आठवें गुरु हरिकशन के पुत्र तेग बहादुर ने औरंगजेब की नीतियों का विरोध किया तथा इस्लाम स्वीकार करने का विरोध किया, जिसकी वजह से उन्हें दिल्ली में कैद कर दिसम्बर, 1765 ई. में मार दिया गया। तेगबहादुर ने अपने धर्म को जीवन से अधिक पसन्द किया। उनके बारे में प्रसिद्ध उक्ति है कि ''उन्होंने अपना सि दिया सार न दिया।'' सिक्ख गुरुओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुरुगोविन्द सिंह थे। गुरु गोविन्द सिंह एवं कुछ पहाड़ी राजाओं के दमन के लिए औरंगजेब ने पहले अल्प खां और फिर शाहजादे मुअज्जम को 1685 ई. में भेजा।

मुअज्जम पहाड़ी राजाओं को दबाने में सफल हुआ, परन्तु गुरु गोविन्द के साथ अपने संघर्ष मं असफल होकर उसने शन्ति समझौता किया। गुरु गोविन्द ने 'पाहुल प्रणाली' को आरम्भ किया। इस प्रणाली में दीक्षित होने वाला व्यक्ति 'खालसा' कहा गया। 'खालसा पंथ' की स्थापना गुरु गोविन्द सिंह ने 1699 ई. में की। उनके धर्म में दीक्षित होने वाले व्यक्ति को पंच ककार-केश, कंघा, कृपाण, कच्छ, और कड़ा ग्रहण करना पड़ता था। उनके द्वारा ही नाम के अंत में 'सिहं' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

गुरु गोविन्द ने 'दसवें बादशाह का ग्रंथ' नामक एक पूरक गंथ का संकलन किया। एक धर्मोन्मत्त्पा अफगान ने 1708 ई. के अन्त में गोदावरी के निकट नांदेर नामक स्थान पर गुरु गोविन्द सिंह को छुरा मार दिया जिससे उनकी मृत्यु होग गयी।

1701 ई. में औरंगजेब ने कुछ पहाड़ी राजाओं के सहयोग से गुरु गोविन्द सिंह के दुर्ग आनन्दपुर पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण के समय मुगल सेना का नेतृत्व सारहिन्द का सूबेदार वजीर खां ने किया। कई महीने के घेराव के बाद सिक्ख गुरु को आनन्दपुर से भागकर 'चमकौर' में शरण लेनी पड़ी। मुगल सेना के चमकौर पहुंचने पर गुरु अपना रूप बदलकर 1704 ई. में भाग कर 'खिदराना' (फिरोजपुर) पहुंचे। इस अन्तिम युद्ध में गुरु गोविन्द सिंह ने मुगल सेना को परास्त कर दिया। 3 मार्च, 1707 को औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल शक्ति क्रमशः क्षीण होती गयी। सिक्ख सरदारों ने इस अवसर का फायदा उठाकर छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया।

सतनामी विद्रोहः 1672 ई. में सतनामियों का विद्रोह हुआ। ये मूल रूप में हिन्दू भक्तों के एक अनुपद्रवी सम्प्रदाय थे। इनका केन्द्र नारनोल (पटियाला) एवं मेवात (अलवर) क्षेत्र में था। ये लोग व्यापार एवं खेती करते थे। धर्म के मामले में उन्होंने सतनाम की उपाधि से अपने को सम्मानित किया है। सतनामियों के विद्रोह का तात्कालिक कारण था- एक मुगल पैदल सैनिक द्वारा उनके एक सदस्य की हत्या। अप्रशिक्षित सतनामी किसान शीघ्र एक विशाल शाही फौज द्वारा परास्त हो गये।

राजपूत विद्रोह एवं राजपूतों के प्रति औरंगजेब की नीतिः औरंगजेब ने राजपूतों के प्रति धर्म के क्षेत्र में अनुदारता की नीति अपनायी। कुरान का कट्टर समर्थक होने के नाते वह अन्य धर्मों मुख्यतः हिन्दू धर्म, के प्रति बहुत असहिष्णु था। उसने 12 अप्रैल, 1679 ई. को हिन्दुओं पर दोबार 'जजिया' कर लगा दिया। सर्वप्रथम जजिया कर मारवाड़ पर लागू किया गया। धार्मिक क्रिया-कलापों, त्यौहारों एवं उत्सवों को प्रतिबन्धित करते हुए औरंगजेब ने हिन्दुओं से 'तीर्थयात्रा कर' पुनः वसूलना शुरू कर दिया। बड़ी संख्या में हिन्दू मंदिरों को तोड़वाने का आदेश देकर नवीन मंदिरों एवं पुराने मंदिरों के निर्माण पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया। औरंगजेब की इन नीतियों का राजपूतों के ऊपर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि औरंगजेब मुगल वंश के अन्य शासकों की तरह राजपूतों के प्रति मैत्री भाव रखता था। औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को दारा का सहयोग करने के बाद भी पुराना मनसब प्रदान कर गुजरात को सूबेदार बनाया। औरंगजेब के समय में हिन्दू मनसबदारों की संख्या लगभग 33% थी जबकि शाहजहां के समय में प्रतिशत मात्र 24.7% था।

फिर भी यह कहा जा सकता है कि राजपूतों के प्रति औरंगजेब की नीति सदैव सहिष्णुता की नहीं थी। मिर्जा राजा जयसिंह अपनी मृत्यु तक (1666 ई.) औरंगजेब का मित्र बना रहा किन्तु जयसिंह का पुत्र रामसिंह मराठों का कट्टर समर्थक था।

मेवाड़ तथा मारवाड़ के प्रति मुगल नीतिः मारवाड़ पर औरंगजेब की निगाहें काफी दिन से गड़ी थीं। 20 दिसम्बर, 1678 ई. के 'जामरुद्र' मर्में महाराजा जशवन्त की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने 'उत्तराधिकारी' के अभाव में मारवाड़ पर मुगल साम्राज्य का बहुत बड़ा कर्ज होने का आरोप लगा कर उसे 'खालसा' के अन्तर्गत कर लिया। औरंगजेब ने जसवन्त के भतीजे के बेटे इन्द्र सिंह राठौर को उत्तराधिकार शुल्क के रूप में 36 लाख रुपये देने पर जोधपुर का राणा मान लिया।

कालान्तर में महाराजा जशवन्त सिंह की विधवा सिंह के पुत्र और उत्तराधिकारी पृथ्वी सिंह को जहर की पोशाक पहनाकर चालाकी से मरवा दिया। औरंगजेब ने अजीतसिंह और जसवन्त सिंह की रानियों को नूरगढ़ किले में कैद कर दिया। औरंगजेब की शर्त थी कि यदि अजीत सिंह इस्लाम धम्र ग्रहण कर ले तो उसे मारवाड़ सौंप दिया जाएगा। राठौर नेता दुर्गादास किसी तरह से अजीत सिंह एवं जसवन्त सिंह की विधवाओं को साथ लेकर जोधपुर भाग आने में सफल रहा। राठौर दुर्गादास की अपने देश के प्रति निःस्वार्थ भक्ति के लिए कहा जाता है कि 'उस स्थिर हृदय को मुगलों का सोना सत्यपथ से न डिगा सका, मुगलों के शस्त्र नहीं डरा सकें।

मारवाड़ के बाद मुगल सेना ने हसन अली खां के नेतृत्व में मेवाड़ के नरेश जयसिंह (राणा) पर आक्रमण किया। इस संघर्ष में दुर्गादास तथा राठौर के सैनिक भी राणा के साथ थे फिर भी 1 फरवरी, 1681 ई. को राणा पराजाति हो गया। मेवाड़ मुगलों के अधिकार में आ गया। शहजादा अकबर को वहां का शासन सौंपा गया। परन्तु कुछ समय बाद राणा राजसिंह शहजादा अकबर को पराजित करने में सफल रहा। अकबर की पराजय के बाद औरंगजेब ने आजम को चित्तौड़ भेजा।

PERFECTION IAS

कालान्तर में उसके (औरंगजेब) तीन पुत्रों अकबर, आजम एवं मुअज्जम ने तीन ओर से मेवाड़ पर आक्रमण किया, परन्तु आंशिक सफलता ही प्राप्त कर सके।

इस बीच औरंगजेब का पुत्र अकबर दुर्गादास के बहकावे में आकर अपने पिता के खिलाफ विद्रोह की घोषणा करते हुए स्वयं को 11 जनवरी, 1681 ई. को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। उस समय अजमेर में पड़ाव डाले औरंगजेब के पास इतने भी सैनिक नहीं थे कि वह विद्रोही शाहजादे को दण्ड दे सके, परन्तु सौभाग्य से सहयोग प्राप्त नहीं हो सका जिसकी अपेक्षा से उसने विद्रोह किया था।

औरंगजेब कूटनीति के सहारे दुर्गादास अकबर के समर्थक मुगल सम्राट की सेना में मिले गये। यह सब 12 जनवरी, 1681 ई. को अजमेर के 'दोहारा' नामक स्थान पर हुआ, जहां पर दोनों ओर की सेनायें आमने-सामने थीं। अकबर राजपूतों की सहायता से निराश होकर अन्ततः शिवाजी के पुत्र शम्भाजी के पास चला गया जहां पर 1704 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

मेवाड़ के साथ संधि (1681 ई.): राणा राजसिंह की मृत्यु के बाद राणा जयसिंह मेवाड़ का शासक हुआ। 24 जून, 1681 ई. को राणा जयसिंह एवं औरंगजेब के मध्य एक संधि समपन्न हुई।

संधि की शर्तों के अनुसार- औरंगजेब ने पूरा मेवाड़ जयसिंह को वापस कर दिया। वस्तुतः सूबे में विद्रोह की आशंका को समाप्त करने के लिए ऐसी व्यवस्था की गयी थी। उत्तरकालीन मुगल बादशाह इस व्यवस्था को स्थापित न कर सके, बल्कि कुछ अवसरों पर निजाम (सूबेदार) और दीवान के पद एक ही व्यक्ति को दे दिये गये।

बहादुरशाह के समय में बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबेदार मुर्शिद कुली खां को दीवान के अधिकार भी दिये गये थे।

दीवान का प्रमुख कार्य था: महलों से राजस्व एकत्र करना, रोकड़-बही एवं रसीदों के हिसाब का लेखा-जोखा रखना, दान की भूमि को देख-रेख करना। प्रांत के अधिकारियों का वेतन निर्धारित करना एवं बांटना होता था। दीवान एवं गवर्नर में महत्वपूर्ण अन्तर यह था कि गवर्नर कार्याकरिणी का प्रधान एवं दीवान राजस्व का प्रधान होता था।

बख्शी: प्रांतीय बख्शी की नियुक्ति शाही मीर बख्शी के अनुरोध पर की जाती थी। मुख्य कार्य के रूप में सैनिकों की भर्ती करना, सैनिक टुकड़ी को अनुशासित रखना घोड़ों की दाग प्रथा के नियमों को लागू करवाना आदि होता था। इसके अतिरिक्त बख्शी 'वाकियानिगार' के रूप में प्रांत में घटने वाली सभी घटनाओं की जानकारी बादशाह को देता था।

सद्र-ए-काजी: प्रांतीय स्तर के विवादो में न्याय करने वाले सद्र-ए-काजी की नियुक्ति शाही काजी के अनुरोध पर की जाती थी। संवाददाताओं के समूह को 'सवानी नवीस' या 'खुफिया नवीस' कहा जाता था। इसकी नियुक्ति 'दरोगा-ए-डाक' करता था।

जिले का प्रशासन

प्रशासन की सुविधा के लिए सूबों को जिलों व सरकारों में विभाजित किया गया। जिला स्तर पर कार्य करने वाले मुख्य अधिकारी थे-

फौजदार: जिले के प्रमुख राजस्व अधिकारी के रूप में कार्य करने वाला आमिल 'खालसा भूमि' से लगान एकत्र करता था। अमलगुजार को आय-व्यय की वार्षिक रिपोर्ट शाही दरबार में भेजनी पड़ती थी। कोतवाल की अनुपस्थिति पर इसे न्यायिक कर्त्तव्यों का भी निर्वाह करना पड़ता था। वितिक्वी इसके सहयोगी के रूप में कार्य करता था जिसका प्रमुख कार्य था- कृषि से जुड़े हुआ कागजात एवं आंकड़े एकत्र करना।

खजानदार: यह सरकार का खजांची था, जो अमलगुजार की अधीनता में कार्य करता था। सरकारी खजाने की सुरक्षा इसका मुख्य उत्तरदायित्व था।

प्रत्येक सरकार में एक काजी होता था जिसकी नियुक्ति सद्र-उस-सुदूर द्वारा की जाती थी। इसकी सहायता के लिए एक मुफ्ती होता था।

वितिक्वी: यह सरकार में राजस्व विभाग का दूसरा अधिकारी होता था। यह भूमि की पैमाइश, उपज का निर्धारण, उसकी श्रेणी आदि तय करने में अमलगुजार की सहायता करता था।

कोतवाल: कोतवाल की नियुक्ति मीआतिश के अनुरोध पर केन्द्रीय सरकार करती थी। यह नगर में घटने वाली समस्त घटनाओं के प्रति उत्तरदायी होता था। अपराधियो को दण्ड देने में असमर्थ होने पर कोतवाल को हरजाना अदा करना पड़ता था।

परगना या महाल का प्रशासन

मुगल काल में परगने अथवा महाल के अंतर्गत प्रशासन में निम्नलिखित अधिकारी शामिल थे-

शिकदार: परगने का प्रमुख अधिकारी होता था। परगने में शन्ति व्यवस्था के साथ अपराधियों को दण्डित करना इसके प्रमुख कार्य थे। राजस्व की वसूली में यह आमिल को सहयोग करता था।

आमिल: इसका मुख्य कार्य राजस्व को निर्धारित करना एवं वसूलना होता था। इसके लिए इसे गांव के कृषकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाना होता था। इसे 'मुन्सिफ' के नाम से भी जाना जाता था।

कानूनगो: यह परगने के पटवारियों का अधिकारी होता था। इसका मुख्य कार्य भूमि का सर्वेक्षण एवं राजस्व वसूली करना था।

फोतदार: परगने के खजांची को फोतदार कहते थे।

कारकून: क्लर्क के रूप में कार्य करता था।

मुगलकालीन गांवों को प्रशासन में काफी स्वयत्तता प्राप्त थी। गांव का मुख्य अधिकारी प्रधान होता था। इसे 'खूत', मुकद्दम', 'चौधरी' आदि कहा जाता था। इसके प्रमुख सहयोगी के रूप में पटवारी कार्य करता था।

PERFECTION IAS

7. मुगलकालीन राजस्व प्रणाली

मुगल काल के राजस्व के स्त्रोत मुख्यत: दो भागों में बंटे थे- केन्द्रीय एवं स्थानीय।

केन्द्रीय आय के महत्वपूर्ण स्त्रोत थे-भू-राजस्व, चुंगी, टकसाल, उत्तराधिकारी के अभाव में प्राप्त आय, उपहार, नमक पर कर एवं प्रत्येक व्यक्ति पर लगने वाला पॉल-टैक्स या व्यक्ति कर। इन सब में 'भू-राजस्व' सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्त्रोत था।

वास्तविक कृषि उत्पाद या फसल में राज्य के अंश को माल या खराज के रूप में अभिहित किया जाता था।

भूमि कर के विभाजन के आधार पर मुगल साम्राज्य की समस्त भूमि 3 वर्गों में विभक्त थी-

1. **खालसा भूमि:** प्रत्यक्ष रूप में बादशाह के अधिकार क्षेत्र में रहने वाली खालसा भूमि से प्राप्त आय शाही कोष में जमा कर दी जाती थी। इस आय का उपयोग व्यक्तिगत खर्च पर (शाही परिवार), राजा के अंगरक्षक एवं निजी सैनिक पर, युद्ध की तैयारी आदि पर किया जाता था। सम्पूर्ण साम्राज्य का लगभग 20% क्षेत्र 'खालसा भूमि' के अन्तर्गत शामिल था।

   1573 ई. में अकबर ने जागीर भूमि को कम करके खालसा भूमि के विस्तार का निर्णय लिया। जहांगीर ने खालसा का आकार कम कर दिया था, पर शाहजहां ने इसका पुन: विस्तार किया। औरंगजेब के शासन काल के अन्तिम दिनों में खालसा भू-क्षेत्रों को जागीरों के रूप में आवांटित किया जाने लगा।
2. **जागीर भूमि:** यह भूमि राज्य के प्रमुख कर्मचारियों को उनकी तनख्वाह के बदले दी जाती थी। जब इस भूमि का केन्द्र के निरीक्षण में हस्तांतरण होता था तब इसे 'पायबाकी' कहा जाता था। भूमि प्राप्त करने वाले को भूमि पर से उस व्यक्ति का अधिकार जागीरदारों पर नियंत्रण रखने के लिए सावानिहनिगार नामक विभाग होता था जो जागीरदारों की कार्यवाही एवं अन्य विवरण केन्द्र को भेजता था।
3. **सयूरागल व 'मदद-ए-माश:** इस प्रकार की भूमि अनुदान के रूप में धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति को दे दी जाती थी। इस तरह की अधिकांश भूमि अनुत्पादक होती थी। इस भूमि को 'मिल्क' भी कहा जाता था।

जहांगीर ने 'अलतमगा' जागीर अनुदान में प्रदान किया। यह जागीर वंशानुगत होती थी। 'एम्मा जागीरें' मुसलमान धर्मविदों और उलेमाओं को प्रदान की जाती थीं।

मुगल शासकों में अकबर ने ही सर्वप्रथम भूमि या भूमि कर व्यवस्था को संगठित करने का प्रयास किया। उसने शेरशाह सूरी की राजस्व व्यवस्था को प्रारम्भ में अपनाया। शेरशाह द्वारा भूराजस्व हेतु अपनायी जाने वाली पद्धति 'राई' का प्रयोग अकबर ने भी राजस्व दरों के प्रयोग के लिए किया। अकबर ने शेरशाह की तरह भूमि की नाप-जोख करवा कर, भूमि को उत्पादकता के आधार पर एक तिहाई भूमि लगान के रूप में निश्चित किया।

बैरम खां के प्रभाव से मुक्त होने पर अकबर ने भू-राजस्व व्यवस्था के पुन: निर्धारण हेतु 1570-1571 ई. में मुजफ्फजर खां तुरबाती एवं रजा टोडरमल को अर्थ मंत्री के पद पर नियुक्त किया। उसने वास्तविक आकड़ों के आधार पर भूराजस्व का जमा-हाल हासिल नामक नवीन लेखा तैयार करवाया।

गुजरात को जीतने के बाद 1573 ई. में अकबर ने पूरे उत्तर भारत में 'करोड़ी' नाम के अधिकारी की नियुक्ति की। उसे अपने क्षेत्र से एक करोड़ दाम वसूल करना होता था। 'करोड़ी' को सहायता के लिए 'आमिल' नियुक्त किए गए। ये कानूनगो द्वारा बताये गये आंकड़े की भी जांच करते थे।

वास्तविक उत्पादन, स्थानीय कीमतें, उत्पादकता आदि पर उनकी सूचना के आधार पर अकबर ने 1580 ई. में 'दहसाला' नाम की नवीन प्रणाली को प्रारम्भ किया। अकबर के शासन काल के 1571 ई. से 1580 ई. (10 वर्षों) के आंकड़ों के आधार पर भूराजस्व का औसत निकालकर अलग-अलग फसलों पर नकद के रूप में वसूल किये जाने वाले लगान का 1571 से 1580 ई. के मध्य करीब 10 वर्ष का औसन निकाल कर, उस औसत का एक-तिहाई भू-राजस्व के रूप में निश्चित किया।

कालान्तर में इस प्रणाली में सुधार के अन्तर्गत केवल 'स्थानीय कीमतों' को आधार बनाया गया बल्कि कृषि उत्पादन वाले परगनों को विभिन्न कर हलकों में बांटा गया। अब किसान को भू-राजस्व स्थानीय कीमत एवं स्थानीय उत्पादन के अनुसार देना होता था 'आइने दहसाला' व्यवस्था को 'टोडरमल बन्दोबस्त' भी कहा जाता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत भूमि की पैमाइश हेतु 4 भागों में विभाजित किया गया-

1. पोलज,
2. परती,
3. छच्छर या चाचर एवं
4. बंजर।

1. **पोलज:** इस भूमि पर नियमित रूप से खेती होती थी।
2. **परती:** यह भूमि उर्वरा-शक्ति प्राप्त करने हेतु एक या दो वर्ष तक परती पड़ी रहती थी।
3. **छच्छर या चाचर:** ऐसी भूमि जिस पर लगभग तीन या चार वर्षों तक खेती रहती थी।
4. **बंजर:** निकृष्ट कोटि की भूमि जिसे लगभग 5 वर्षों तक काश्त के प्रयोग में न लाया गया हो।

लगान खेती के लिये प्रयुक्त भूमि पर ही वसूला जाता था।

लगान निर्धारण से पूर्व भूमि की माप कराई जाती थी। अकबर ने अपने शासन काल में 31वें वर्ष लगभग 1587 ई. में भूमि की पैमाइश हेतु पुरानी मानक इकाई सन की रस्सी से निर्मित 'सिकन्दी गज' के स्थान पर 'इलाही गज' का प्रयोग आरम्भ किया।

यह गज लगभग 41 अंगुल या 33 इंच के बराबर होता था। यह 'तनब' तम्बू की रस्सी एवं 'जरीब' लोहे की कड़ियों से जुड़ी हुई बांस द्वारा निर्मित होती थी। शाहजहां के काल में दो नई नापों का प्रचलन हुआ।

1. बीघा-ए-इलाही।
2. दिरा-ए-शाहजहांनी (बीघा-ए-दफ्दरी)।

औरंगजेब के काल में दिरा-ए-शाहजहांनी का प्रयोंग बंद हो गया परन्तु बीघा-ए-इलाही का प्रयोग मुगल साम्राज्य के अंत तक चलता रहा।

अकबर के शासन काल के 15वें वर्ष लगभग 1570-1571 ई. में टोडरमल ने खालसा भूमि पर भू-राजस्व की नवीन प्रणाली जिसका नाम 'जाब्ती' था, को प्रारम्भ किया। इस प्रणाली में भूमि की पैमाइश एवं खेतों की मूल वास्तविक पैदावार को आंकने के आधार पर कर की दरों को निर्धारित किया जाता था।

यह प्रणाली बिहार, लाहौर, इलाहाबाद, मुल्तान, दिल्ली, अवध, मालवा एवं गुजरात में प्रचलित थी। इसमें कर निर्धारण की दो श्रेणी थी, एक को 'तखशीस' व कर निर्धारण कहते थे और दूसरे को 'तहसील' व वास्तविक वसूली कहते थे। लगान निर्धारण के समय राजस्व अधिकारी द्वारा लिखे गये पत्र को 'पट्टा', 'कौल' या 'कौलकरार' कहा जाता था।

उपर्युक्त प्रणाली के अन्तर्गत उपज के रूप में निर्धारित भू-राजस्व को नकदी के रूप में वसूल करने के लिए, विभिन्न फसलों के क्षेत्रीय आधार पर नकदी भू-राजस्व अनुसूची (दस्तूरूल अमल) तैयार की जाती थी।

मुगलकाल में खम्स नामक कर समाप्त हो गया क्योंकि मुगल सैनिक वेतनभोगी होते थे। इस प्रकार उन्हें लूट की सम्पत्ति को कोई हिस्सा नहीं मिलता था।

मुगल सम्राटों को अधीनस्थ राजाओं तथा मनसबदारों द्वारा समय-सयम पर दिये जाने वाले एक निश्चित राजस्व को पेशकश कहा जाता था।

औरंगजेब ने आज्ञा दिया कि नकद पेशकश को नजर कहा जाय तथा सम्राट द्वारा शाहजादों को दिये गये उपहार को निजाम एवं अमीरों के उपहार को निसार कहा जाय।

मुगल काल में वारिस विहीन सम्पत्ति को राजगामिता कानून के द्वारा बैतुलमाल (शाही खजाना) में जमा कर दिया जाता था।

लगान निर्धारण की अन्य प्रणाली 'बटाई' या 'गल्ला बख्शी' (फारसी) मुगल काल की सर्वाधिक प्राचीन प्रचलित थी।

इस प्रणाली में किसानों को कर उपज या नकदी दोनों ही रूपों में देने की छूट होती थी, परन्तु सरकार का प्रयास राजस्व को नकद में लेने का ही रहता था। कुछ खास फसलों जैसे कपास, नील, तेल, बीज, ईख जैसी उपज कर नकद ही लिया जाता था, इसलिए इन्हें, नकदी खेती' कहा जाता था। इस प्रणाली में खेती के बंटवारे के हिसाब से कर लगाया जाता था। तीन प्रकार की बटाई होती थी-

1. खेत बटाई,
2. लंक बटाई एवं
3. रास बटाई इस प्रणाली का प्रचलन काबुल, कश्मीर एवं थट्टा में था। मुगल काल में कपास, नील, तिलहन, एवं ईख को 'तिजारती फसल' भी कहा जाता था।

'नस्क' प्रणाली का मुगल काल में खूब प्रचलन था परन्तु इसके विषय में विस्तृत जानकारी का अभाव है। सम्भवतः इस प्रणाली में भूमि को प्रत्येक वर्ष नहीं मापा जाता था, पटवारी के रिकार्ड में जो माप लिखी होती थी, उसी को मान लिया जाता था।

इसमें कर का निर्धारण 'नस्क पद्धति' व फसल के अनुमान द्वारा निश्चित होता था। निर्धारण की इस कच्ची प्रणाली को 'कनकूत' भी कहा जाता था।

अकबर के शासन काल में लगान भूमि की वास्तविक उपज पर लगभग एक तिहाई भाग नकद व अनाज के रूप में वसूल किया जाता था। अकबर ने सूर्य के आधार पर एक संवत् चलाया जिसे 'इलाही संवत्' कहा जाता है। यही फसली संवत् था, इससे किसानों को भूराजस्व अदा करने तथा मुगल शासन को अपने राजस्व आलेख तैयार करने में सुविधा हुई।

अकबर की ही भू-राजस्व व्यवस्था को जहांगीर ने भी अपनाया परन्तु प्रबन्ध के क्षेत्र में वह अकबर की अपेक्षा कमजोर था। जहांगीर ने अकबर की 'जाब्ती' व्यवस्था को अधिक महत्व देते हुए बिना किसी परिवर्तन के इसे बंगाल में भी लागू किया।

जहांगीर के समय में भूमि को अनुदान के रूप में जागीरदारों में बांटने की प्रथा का विकास हुआ।

शाहजहां ने पिता जहांगीर की भूराजस्व व्यवस्था में परिवर्तन करते हुए सर्वप्रथम 'खालसा भूमि' से प्राप्त होने वाली लगान की आय को 'भूराजस्व' से प्राप्त होने वाली धन राशि से अलग किया।

सम्भवतः शाहजहां ने अपने शासन काल में लगान पैदावार की 33% से 50% के मध्य लेना प्रारम्भ कर दिया था। इसने लगान वसूली के लिए 'ठेकेदारी प्रथा' को आरम्भ किया।

शाहजहां प्रथम मुगल शासक था जिसने दक्षिण भारत में मुर्शिद कुली खां को 'दक्षिण का टोडरमल' कहा जाता था। नियुक्त किया।

औरंगजेब ने अपने शासन काल में 'नस्क प्रणाली' को अपनाया। भू-राजस्व की राशि उपज की आधी कर दी गयी।

औरंगजेब के समय में जागीरदारी प्रथा एवं ठेकेदारी (भूमि की) प्रथा का काफी विस्तार हो चुका था।

औरंगजेब ने हिन्दू राजस्व अधिकारी के स्थान पर मुस्लिम अधिकारी की नियुक्ति की। मुगल काल में कृषक तीन वर्गों में विभाजित थे।

1. **खुदकाशतः** ये किसान उसी गांव की भूमि पर खेती करते थे जहां के वे निवासी थे। इसका भूमि पर अस्थायी अधिकार था, इसे 'मालिक-ए-जमीन' भी कहते थे।
2. **पाहीकाशतः** ये किसान दूसरे गांव में जाकर कृषि कार्य कर जीविकोपार्जन करते थे, वहां इनकी अस्थायी झोपड़ियां होती थीं।
3. **मुजारियानः** 'मुजारियान' कृषकों के पास इतनी कम भूमि होती थी कि वे उस भूमि में अपने परिवार के कुल श्रम का भी प्रयोग नहीं कर पाते थे, इसलिए ये खुदकाश्त कृषकों की जमीन किराये पर लेकर कृषि कार्य करते थे। भूमिया वर्ग पैतृक जमीन के मालिक होते थे जबकि गिरसिया वर्ग को केवल जमीन के संरक्षण का अधिकार था।

मुगल काल में जमींदारों को खोती, मुकद्दमी, बिस्वी तथा भोगी भी कहा जाता था। मुगल राजस्व व्यवस्था में लगान का निधारण फसल के रूप में किया जाता था तथा इसकी वसूली नकद के रूप में की जाती थी।

साम्राजय के दूरस्थ और पिछड़े क्षेत्रों में अनाज या फसल के रूप में भी लगान वसूल करने की अनुमति थी।

कश्मीर, उड़ीसा तथा राजपूताना के क्षेत्रों में गल्ले के रूप में

PERFECTION IAS

मालगुजारी वसूली जाती थी।

किसानों को लगान के अतिरिक्त अन्य विविध प्रकार के उपकर अदा करने पड़ते थे। खेतों की पैमाइश करने वाले को एक दाम प्रति बीघा 'जाबिताना' कर देना पड़ता था। 'दहसेरी' नामक अन्य कर प्रति बीघा के हिसाब से वसूला जाता था। पशुओ, चारागाहों एवं बागों पर भी कर लगते थे। अकाल पड़ने पर लगान में छूट तथा तकावी दी जाती थी।

कृषि: अबुल फजल की 'आईने अकबरी' में रबी की 16 तथा खरीफ की 25 फसलों का उल्लेख मिलता है।

मुगलकालीन प्रमुख फसलें

फसलें	उत्पादन क्षेत्र
गन्ना	उत्तर प्रदेश, बंगाल एवं बिहार
नील	उत्तर एवं दक्षिण भारत के कई भागों मुख्यत: यमुना घाटी एवं मध्य भारत में
गेहूं	पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि
अफीम	मालवा एवं बिहार
चावल	मद्रास, कश्मीर आदि
नमक	सांभर झील, पंजबा की पहाड़ी, गुजरात, सिंध आदि शराब, कपास एवं शोरा का उत्पादन लगभग पूरे देश में होता था।

खनिज: 'खनिज पदार्थों में 'सोना' कुमायूं पर्वत एवं पंजाब की नदियों से 'लोहा' देश के अनेक भागों से, 'तांबा' राजस्थान एवं मध्य भारत से, 'लाल पत्थर फतेहपुर सीकरी एवं राजस्थान से, पीला पत्थर थट्टा से, 'संगमरमर' जयपुर एवं जोधपुर से तथा 'हीरा' गोलकुण्डा एवं छोटानागपुर की पहाड़ियों से प्राप्त किया जाता था।

उद्योग: उद्योग के क्षेत्र में रुई का उत्पादन एवं उससे निर्मित सूती वस्त्र निर्माण उद्योग सर्वाधिक विकसित था। सूती वस्त्र निर्माण के महत्वपूर्ण केन्द्र आगरा, बनारस, बुरहानपुर, पाटन, जौनपुर, बंगाल, मालवा आदि थे। रंगसाजी अर्थात् कपड़े को रंगने का उद्योग भी अयोध्या (फैजाबाद) एवं खानदेश में खूब प्रचलित था। ढाका (बंगाल), लाहौर, आगरा, गुजरात आदि क्षेत्र रेशमी कपड़े एवं मलमल के लिए प्रसिद्ध थे।

मुल्तान फूलदार कालीनों एवं कश्मीर ऊनी कालीनों के लिए प्रसिद्ध था। जहांगीर ने अमृतसर में ऊनी वस्त्र के उद्योग की स्थापना की थी।

व्यापार: व्यापार की स्थिति मुगल काल में बेहतर थी। इस समय फ्रांस से ऊनी वस्त्र, इटली एवं फारस से रेशम, फारस से कालीन, मध्य एशिया तथा अरब से अच्छी नस्ल के घोड़े चीन से कच्चा रेशम एवं सोना तथा चांदी का आयात होता था।

भारत की प्रमुख निर्यातक वस्तुयें थीं- सूती कपड़ा (मुख्यत: यूरोप), नील, अफीम, मसाले चीनी, शोरा, काली मिर्च, नमक आदि। निर्यात के दो महत्वपूर्ण स्थल मार्ग थे- लाहौर से काबुल एवं मुल्तान से कंधार।

मुगल काल में महत्वपूर्ण बन्दरगाह के रूप में कोचीन नागापट्टम, चटगांव, सोनरगांव, चौल, बसीन आदि थे। बन्दरगाह का प्रमुख अधिकारी 'शाह बन्दर' कहलाता था। राज्य निर्यात की जाने वाली या आयात की जाने वाली वस्तुओं पर $3\frac{1}{2}$ प्रतिशत चुंगी (व्यपारिक कर) लेता था।

मुगलकालीन मुद्रा व्यवस्था: बाबर ने काबुल में शाहरुख नामक चांदी का सिक्का तथा कन्धार में बाबरी (चांदी) नामक सिक्का चलाया। मुगल काल में मुख्य रूप से तीन प्रकार के धातु के सिक्के 'सोने की मुहर', 'चांदी की रुपया' एवं तांबे के दाम, प्रचलन में थे।

अकबर ने 1577 ई. में दिल्ली में एक टकसाल स्थापित किया तथा ख्वाजा अब्दुस्समद को उसका प्रमुख बनाया। अपने शासन काल के प्रारंभ में अकबर ने 'मुहर' नामक सिक्का चलाया था। सोने के सिक्कों में शहनशाह, आत्मा बिसात, चुगुल और जाली महत्वपूर्ण हैं। 'चांदी का रुपयां' एवं तांबे के दाम प्रचलन में थे। 'चांदी का रुपया' ही मुगलकालीन अर्थव्यवस्था का आधार था, यह 178 ग्रेन का था। चांदी के रुपये का प्रचलन सर्वप्रथम शेरशाह सूरी ने किया।

अकबर ने 'जलाली' नाम को चौकोर आकार का रुपया चलाया। तांबे का 'दाम व पैसा' या 'फलूस' 323.5 ग्रेन का बना होता था। स्वर्ण का सर्वाधिक प्रचलित सिक्का 'इलाही' एवं सबसे बड़ा सिक्का 'शंसब' था। अकबर ने कुछ सिक्कों पर राम सीता की मूर्ति अंकित करवायी तथा उस पर राम-सिया लिखवाया। टकसाल का अधिकारी 'चौधरी' कहलाता था। केन्द्रीय टकसाल से कोई भी व्यक्ति 5 या 6% शुल्क देकर सिक्का ढलवा सकता था। असीरगढ़ विजय के उपलक्ष्य में अकबर ने एक सोने का सिक्का चलवाया जिस पर एक ओर बाज की आकृति थी। दैनिक लेन-देन व छोटे लेन-देन में तांबे के दाम का प्रयोग होता था।

जहांगीर ने 'निसार' (एक रुपये का चौथाई) नामक सिक्का चलाया। शाहजहां ने दाम और रुपये की मध्य 'आना' नामक नये सिक्के का प्रचलन करवाया। मुगल काल में रुपये के मध्य 'आना' नामक नये सिक्के का प्रचलन करवाया। मुगल काल में रुपये की सर्वाधिक ढलाई औरंगजेब के शासन काल में हुई। जहांगीर ने अपने समय में सिक्कों पर अपनी आकृति बनवायी साथ ही अपना नाम तथा नूरजहां का नाम उस पर अंकित आकृति बनवायी साथ ही अपना नाम तथा नूरजहां का नाम उस पर अंकित करवाया।

औरंगजेब के समय में रुपये का वजन 180 ग्रेन होता था। एक रुपये में 40 'दाम' होते थे। औरंगजेब ने सिक्कों पर कलमा अंकन की प्रथा बंद कर दी तथा अन्तिम काल में जारी सिक्कों पर मीर अब्दुल बाकी शाहबाई द्वारा रचित पद्य अंकित करवाया।

मुहर मुगल काल में सबसे प्रचलित सिक्का था। इसका मूल्य 1 रुपया था। अबुल फजल के अनुसार सोने के सिक्के ढालने के लिए 4 टकसालें, चांदी के 14 तथा तांबे के सिक्के के लिए 42 टकसालें थी।

मुगलकालीन सैन्य व्यवस्था एवं 'मनसबदारी प्रथा'

मनसबदारी प्रथा: अरबी के शब्द 'मनसब' का शब्दिक अर्थ है- 'पद'। मनसबदारी व्यवस्था की प्रथा खलीफा अब्बा सईद द्वारा आरम्भ की प्रथा खलीफ अब्बा सईद द्वारा आरम्भ की गई तथा चंगेज खां तथा तैमूर ने विकास किया। इस प्रकार अकबर ने मनसबदारी की प्रेरणा मध्य एशिया से ग्रहण की। मुगलकालीन सैन्य व्यवस्था पूर्णत: मनसबदारी प्रथा पर आधारित थी। अकबर द्वारा आरम्भ की गयी इस व्यवस्था में उन व्यक्तियों को सम्राट द्वारा एक पद प्रदान किया जाता था, जो शाही सेना में होते थे। दिये जाने वाले पद को 'मनसब' एवं ग्रहण करने वाले को 'मनसबदार' कहा जाता था। मनसब प्राप्त करने के उपरान्त उस व्यक्ति के शाही दरबार में प्रतिष्ठा, स्थान व वेतन का ज्ञान होता था।

PERFECTION IAS

सम्भवत: अकबर की मनसबदारी व्यवस्था मंगोल नेता चंगेज खां की 'दशमलव प्रणाली' पर आधारित थी।

'पद' या 'श्रेणी' के अर्थ वाले मनसब शब्द का प्रथम उल्लेख अकबर के शासन के 11वें वर्ष में मिलता है, परन्तु मनसब के जारी होने का उल्लेख 1567 ई. से मिलता हे।

मनसबदार के पद के साथ 1594-1959 ई. से 'सवार' का पद भी जुड़ने लगा। इस तरह अकबर के शासनकाल में मनसबदारी प्रथा कई चरणों से गुजर कर उत्कर्ष पर पहुंची।

अकबर के शासन काल में प्रत्येक उच्च पदाधिकारी केवल काजी एवं सद्र को छोड़कर सेना में पदासीन होता था।

युद्ध के समय आवशकता पड़ने पर उसे सैन्य संचालन भी करना पड़ता था। इन सबको मनसब प्राप्त होता था। परन्तु सैन्य विभाग से अलग अन्य विभागों में कार्यरत इन पदाधिकारियों को 'मनसबदार' के स्थान पर 'रोजिनदार' कहा जाता था।

अकबर के समय में सबेसे छोटा मनसब दस एवं सबसे बड़ा मनसब 10,000 का होता था।, परन्तु कालान्तर में यह बढ़कर 12,000 हो गया। शाही परिवार के शहजादों को 5000 से ऊपर का मनसब मिलता था। मनसब प्राप्त करने वाले मुख्यत: तीन वर्गों मे विभक्त थे- 10 से 500 तक मनसब प्राप्त करने वाले 'मनसबदार' कहलाते थे, 500 से 2500 तक मनसब प्राप्त करने वाले 'उमरा' कहलाते थे एवं 2500 से ऊपर मनसब प्राप्त करने वाले व्यक्ति 'अमीर-ए-उम्दा' या 'अमीर-ए-आजम' कहलाते थे। 'जात' से व्यक्ति के वेतन व प्रतिष्ठा का ज्ञान होता था।

'सवार' पद से घुड़सवार दस्तों की संख्या का ज्ञान होता था। 1595 ई. में जात पद के साथ सवार पद को जोड़ देने से जात-ओ-सवार पद तीन श्रेणियो में बंट गया। प्रथम श्रेणी के मनसबदार को अपने जात पद के बराबर ही घुड़सवार सैनिक की व्यवस्था करनी पड़ती थी, जैसे 5000/5000 जात/सवार।

द्वितीय श्रेणी के मनसबदार को अपने जात पद से थोड़ा कम या फिर आधे घुड़सवार सैनिक की व्यवस्था करनी होती थी। जैसे 5000/3000 जात/सवार। तृतीय श्रेणी के मनसबादों को अपने जात पद से आधे से कम घुड़सवार सैनिक की व्यवस्था करनी होती थी, जैसे 5000/2000 जात/सवार।

'आइन-ए-अकबरी' में 66 मनसबों को उल्लेख किया गया है, किन्तु व्यवहार में 33 मनसब ही प्रदान किये जाते थे।

मनसबदारों को वेतन नकद व जागीर दोनों में ही देने की व्यवस्था थी। कार्यकाल के समय मनसबदारों के मरने पर उसकी सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाता था। इस प्रकार मनसबदार का पद आनुवंशिक नहीं था।

मनसबदारों की जागीरें एक प्रांत से दूसरे प्रांत में स्थानान्तरित कर दी जाती थीं। ऐसी जागीरों को 'वतन जागीर' भी कहते थे। अकबर के समय कुल मनसबदारों की संख्या लगभग 1803 थी जो औरंगजेब के समय में बढ़कर 14,449 हो गई।

अकबर के शासन काल के अन्तिम चरण में यह नियम बनाया गया कि किसी भी मनसबदार का सवार पद उसके जात पद से अधिक नहीं हो सकता।

मनसबदारी व्यवस्था में कुछ परिवर्तन करते हुए जहांगीर ने सवार पद में 'दु-अस्पा' एवं 'सिह-अस्पा' की व्यवस्था की।

दु-अस्पा में मनसबदारों को निर्धारित संख्या में घुड़सवारों के साथ उतने ही 'कोतल' (अतिरिक्त) घोड़े रखने होते थे जबकि सि-अस्पा में मनसबदारों को दुगुने कोतल (अतिरिक्त) घोड़े रखने होते थे।

शाहजहां ने अपने शासन काल में मनसबदारी व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने के लिए उन मनसबदारों के लिए नियम बनाया जो अपने पद की तुलना में घुड़सवारों की संख्या कम कर देते थे।

अब उनके लिए (मनसबदारों) यह आवश्यक हो गया कि वे अपने पद हेतु निर्धारित घुड़सवारों की संख्या की कम से कम एक चौथाई, फौजी टुकड़ी अवश्य रखें।

यदि इनकी नियुक्ति भारत से बाहर होती थी तो मनसबदारों को एक चौथाई के स्थान पर 1/5 सैनिक टुकड़ियां रखनी होती थीं।

अकबर के काल से ही निरंतर यह शिकायत चली आ रही थी कि जागीरों की अनुमानित आय (जाम) तथा वास्तविक आय (हासिल) में अंतर होता था, अर्थात् जागीरों से होने वाली आय वास्तव में कम होती थी। शाहजहां ने वस्तुस्थिति का अध्ययन करने के बाद समस्या का एक हल निकाला तथा जागीरों की वास्तविक वसूली के आधार उपर महीना (Month Halo) जागीरों-शिशमाहा, सीमाहा आदि की व्यवस्था शुरू की।

इसके अनुसार यदि किसी जागीर से राजस्व की वसूली 50% होती थी तो उसको शिशमाहा जागीर माना जाता था तथा वसूली यदि कुल जमा का एक चौथाई होती थी, तो जागीर सीमाही मानी जाती थी। इस प्रकार यदि किसी मनसबदार को शिशमाहा जागीर प्रदान की जाती थी तो उसके दायित्वों का भी उसी अनुपात से निर्धारण करके कटौती की जाती थी।

औरंगजेब के समय में सक्षम मनसबदारों के किसी महत्वपूर्ण पद जैसे फौजदार या किले आदि पर नियुक्त या फिर किसी महत्वपूर्ण अभियान पर जाते समय उसके जात पद में वृद्धि किये बिना सवार पद में अतिरिक्त वृद्धि का एक और माध्यम निकाला गया जिसे 'मशरुत' कहा गया। मनसबदारों का पद वंशानुगत नहीं होता था। अयोग्य व अक्षम मनसबदार को साम्राट हटा देता था।

औरंगजेब के शासन काल में विशेषकर उच्च श्रेणियों के मनसबारों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। स्थिति यहां तक आ गयी कि उन्हें प्रदान करने के लिए जागीरें नही रह गयी थीं।

औरंगजेब का समकालीन इतिहासकार मामूरी इस समस्या को बेजागीरी कहकर संबोधित करता है। संकट इतना विकट हो गया कि सम्राट और उसके मंत्री बार-बार सभी नयी मूर्तियां रोकने की सोचने लगे, लेकिन परिस्थित ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दी।

मनसबदारों की संख्या में अतिशय वृद्धि और जागीरों के अभाव ने जागीरदारी और कृषिजन्य संकट को जन्म दिया, जिसके परिणामस्वरूप औरंगजेब के शासन के परवर्ती दिनों में मनसबदारी व्यवस्था भी पतनोन्मुख हो गयी।

अकबर ने अपने शासन के 18वें वर्ष (1574 ई.) में 'दाग' प्रथा को चलाया, जिसका विधिवत प्रयोग 19वें वर्ष में प्रारंभ हुआ। इस प्रथा में हाथी एवं घोड़ों को दागा जाता था।

दाग में दो तरह के निशाल लगाये जाते थे, दायें या सीधे पुटेठ पर लगने वाला निशान शाही निशान एवं बायें पुट्ठे के निशान को मनसबदार का निशान माना जाता था।

PERFECTION IAS

अकबर इसके लिए दाग-ए-महाली नाम क एक पृथक् विभाग खोला।

मनसबदारों के अतिरिक्त दो तरह के सैनिक या सिपाही होते थे। प्रथम 'अहदी' (सभ्य) सिपाही एवं द्वितीय 'दाखिली' (पूरक) सिपाही।

मुगलकालीन सेना: मुगल काल सेना मुख्यत: 4 भागों में विभक्त थी-

1. **पैदल सेना:** यह दो प्रकार की होती थी- 'अहशाम' एवं 'सेहबन्दी'। अहशाम सैनिक युद्ध करने वाले सैनिक होते थे। 'सेहबन्दी' सैनिक माल गुजारी वसूलने के समय में सहायता करते थे। मेवरा, मेवात निवासी थे जो धावक और जासूसी का कार्य करते थे।
2. **घुड़सवार सेना:** यह मुगल सेना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग होता था। इसमें दो प्रकार के घुड़सवार होते थे- 'सिलेदार' एवं 'बरगीर'।

   सिलेदार को घोड़े एवं अस्त्र-शस्त्र की व्यवस्था स्वयं करनी होती थी जबकि बरगीर को साज का सारा सामान सरकार की ओर से मिलता था।
3. **तोपखाना:** यह दो भागों में विभक्त था- 'जिन्शी' एवं 'दस्ती'। 'जिन्शी' में भारी तोपें होती थीं एवं दस्ती में हल्की तोंपे। तोपखाना विभाग का अध्यक्ष मीर-ए-आतिश अथवा दरोगा-ए-तोपखाना कहलाता था।

   गजनाल: हाथियों पर ले जाने वाली तोपें।

   नरनाल: सैनिकों द्वारा ले जाने वाली तोपें।

   शुतरनाल: ऊंट पर ले जाने वाली तोंपे।

   अकबर के समय में उस्ताद कबीर एवं हुसैन तोप एवं बन्दूक विशेषज्ञ थे। मनूची ने भी मुगल तोपखाने के प्रभारी के रूप में कार्य किया था।
4. **हस्ति सेना:** अकबर को हाथियों का बड़ा शौक था। अकबर अपनी सेना के लिए जिन हाथियों का प्रयोग करता उन्हें 'खास' कहा जाता था।

   मुगल काल में 'जल सेना' का भी उल्लेख मिलता है। अकबर के समय में जल सेना के प्रधान को 'अमीर-उल-बहर' कहा जाता था।

   मुगलकालीन सेना 'एक भारी चलायमान शहर' की तरह थी, जो शाही दरबार के अतिव्ययी साज सामानों के बोझ में दबी रहती थी।

PERFECTION IAS

मुगलकालीन शिक्षा, साहित्य और कला

- मुगलकाल के प्रत्येक मस्जिद में मकतब लगी होती थी, जहाँ पड़ोस के लड़के तथा लडकियाँ प्रारम्भिक शिक्षा पाते थे।
- मुगलकाल में 'मकतब' (प्राइमरी शिक्षा) एवं मदरसे (उच्च शिक्षा) स्थापित थे।
- बाबर के समय 'शुहरते आम' विभाग शिक्षा केंद्रों की व्यवस्था करता था।
- हुमायूँ ने माहम अंगा के सहयोग से 'मदरसा-ए-बेगम' की स्थापना की थी।
- शाहजहाँ ने दिल्ली में मदरसा स्थापित कराया था तथा शिक्षा का माध्यम फारसी प्रारम्भ कराया था।
- औरंगजेब ने मकतबों एवं मदरसों को आर्थिक सहायता देने के फरमान जारी किए थे।
- जेबुन्निसा बेगम ने दिल्ली में 'बैतुल-उल-उलूम' मदरसा स्थापित किया था।
- मुगलकाल में शिक्षा का माध्यम फारसी था।
- मुगलकाल में लखनऊ का फरहंगी महल मदरसा न्याय की शिक्षा के लिए चर्चित था।
- मुगलकाल में विद्यार्थियों को तीन प्रकार की उपाधियाँ दी जाती थीं-
  1. तर्क एवं दर्शन के विद्यार्थी को - 'फाजिल'
  2. धार्मिक शिक्षा हेतु 'आमिल'
  3. साहित्य के विद्यार्थी को 'काबिल'
- शाहजहाँ ने दिल्ली में एक कॉलेज स्थापित किया तथा दार्रन्ल-बका नामक कॉलेज की मरम्मत करवायी।
- बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम (जो हुमायूँनामा की लेखिका थी), हुमायूँ की भतीजी सलीमा सुल्ताना (जिसने बहुत से फारसी पद्य लिखे थे), नूरजहाँ, मुमताज महल, जहाँआरा बेगम और जेबुन्निसा उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएँ थीं तथा उन्हें फारसी एवं अरबी साहित्य का बहुत ज्ञान था।
- अकबर को एक समकालीन व्यक्ति माधवाचार्य, जो त्रिवेणी का एक बंगाली कवि तथा चंडी मंगल का लेखक था, बादशाह की विद्या के पोषक के रूप में बहुत प्रशंसा करता है।
- मुगलकाल मे बाबर ने तुर्की भाषा में अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' लिखी।
- अकबर के काल में पहली बार कुरान का फारसी में अनुवाद किया गया।
- जहाँगीर ने स्वयं अपनी आत्मकथा फारसी में 'तुजुक-ए-जहांगीरी' लिखी।
- शाहजहाँ के समय फारसी में अब्दुल हमीद लाहौरी का पादशाहनामा बहुत प्रसिद्ध है।
- औरंगजेब के समय फारसी में खफी खाँ ने 'मुन्तखब उल लुबाब' की रचना की थी।
- संस्कृत साहित्य में महेश ठाकुर ने संस्कृत में उत्कृष्ट ग्रन्थ 'अकबर के शासनकाल का इतिहास' लिखा था। पंडित जगन्नाथ ने 'रस गंगाधर' एवं 'गंगालहरी' की रचना संस्कृत में की।
- मुगलकाल में उर्दू साहितय में अद्वितीय प्रगति हुई। मुगल बादशाहों में मुहम्मदशाह पहला बादशाह था जिसने उर्दू को संरक्षण दिया था।
- उर्दू का अर्थ है शाही शिविर (कैम्प) की भाषा।
- मुगलकाल में ही उर्दू को 'रेख्ता' कहा जाने लगा था।
- उर्दू साहित्य में इस काल का चर्चित कवि वली था।
- अकबर के दरबार के प्रसिद्ध ग्रंथकर्ताओं में सबसे प्रमुख कश्मीर का मुहम्मद हुसैन था, जिसे जरी कलम की उपाधि मिली थी।
- 'फारसी' बल्कि 'मंगोल' पद्धति पहले-पहल भारत में हुमायूँ द्वारा नहीं लायी गयी जबकि यह पहले से ही बहमनी राज्य में पंद्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में विद्यमान थी।
- शेरशाह का मकबरा, जो बिहार के शाहाबाद जिले के सहसराम नामक स्थान पर एक तालाब के बीच ऊँचे चबूतरे पर बना है, आकार एवं गौरव, दानों दृष्टिकोणों से भारतीय मुसलमानी निर्माण कला का चमत्कार है तथा हिंदू एवं मुस्लिम वास्तुकलात्मक विचारों का आनंदजनक सम्मिश्रण प्रदर्शित करता है।
- फर्गुसन के अनुसार, फतेहपुर सीकरी 'किसी महान व्यक्ति के मस्तिष्क का प्रतिबिम्ब था।'
- बाबर ने ज्यामितीय विधि पर आधारित एक उद्यान आगरा में लगवाया जिसे नूर अफगान नाम दिया गया।
- शाहजहाँ का काल 'मुगल वास्तुकला का स्वर्ण युग' माना जाता है।

PERFECTION IAS

- मुगल चित्रकला की नींव हुमायूँ के काल में पड़ी थी।
- मुगल चित्रशलाा में मुगलचित्रकला शैली में चित्रित सबसे प्रारम्भिक महत्वपूर्ण चित्र संग्रह 'हम्जानामा' है जो दास्तान-ए-अमीर हम्जा के नाम से प्रसिद्ध है, इस पाण्डुलिपि में 1200 चित्रों का संग्रह है।
- हुमायूँ के काल में प्रुख चित्रकार थे- मीर सैयद अली एवं अब्दुस्समद।
- अकबर के काल में पहली बार भित्ति चित्रकारी प्रारम्भ हुई थी।
- अकबरकालीन प्रमुख चित्रकार थे-दसवन्त, बसासन, महेश, लाल मुकुन्द, सावंलदास, अब्दुरसमद।
- जहाँगीर के काल के प्रमुख चित्रकार थे- फारूखबेग, बिसनदास, उस्ताद मंसूद, दौलत, मनोहर, अबुल हसन।
- जहाँगीर ने 'उस्ताद मंसूर' को नादिर उल असर और अबुल हसन को नादिर उद्जमा की उपाधि दी थी।
- उस्ताद मंसूर पक्षी विशेषज्ञ चित्रकार था।
- अबुल हसन व्यक्ति चित्रों में कुशल था।
- औरंगजेब ने चित्रकला को इस्लाम विरूद्ध मानकर बन्द करवा दिया था।
- अकबर स्वयं बहुत अच्छा नक्कारा (नगाड़ा) बजाता था।
- तानसेन अकबर के नवरत्नों में से था, जिसे अकबर ने रीवां के राजा रामचन्द्र से प्राप्त किया था।
- अकबर के समय के प्रमुख संगीतज्ञों में थे- तानसेन, बाजबहादुर, बैजबख्श, गोपाल, हरिदास, रामदास, सुजान खां, मियां चांद, मियां लाल एवं बैजू बावरा।
- जहाँगीर ने गजल गायक 'शौकी' को 'आनंद खां' की उपाधि दी थी।
- शाहजहाँ के काल के प्रमुख संगीतज्ञ थे- लाल खां, शुशहाल खां, बिसराम खां।
- शाहजहाँ ने लाल खां को गुन समुन्दर की उपाधि दी थी।
- औरंगजेब स्वयं एक कुशल वीणावादक था।
- औरंगजेब के समय प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे- रसबैन खां, सुखीसेन, कलावन्त, हयात सरसनैन, किरपा।
- मुगलकाल में संगीत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास 18वीं शताब्दी में मुगल बादशाह मुहम्मद शाह के काल (1719-1718 ई.) में हुआ था। उसके काल में नेमत खां, सदारंग, अदारंग ने संगीत के विकास को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया था।
- लेनपूल ने दारा शिकोह को 'लघु अकबर' कहा है।

PERFECTION IAS

मराठा साम्राज्य

शिवाजी (1627-1680 ई.)

- शिवाजी का जन्म 1627 ई. में पूना के निकट शिवनेर के दुर्ग में हुआ था।
- शिवाजी के माता-पिता का नाम जीजाबाई और शाजी भोंसले था।
- शिवाजी ने 1643 ई. में अपने पिता की जागीर के प्रशासक के रूप में पुणे में प्रारंभ किया।
- शिवाजी ने शासन कार्य 1647 ई. में सम्भाला।
- शिवाजी पर सर्वाधिक प्रभाव गुरू दादाजी कोंणदेव का था। कोंणदेव शिवाजी के संरक्षक भी थे।
- शिवाजी के गुरू समर्थ रामदास थे।
- समर्थ रामदास ने 'दासबोध' एवं 'आनन्दवन भवन' नामक पुस्तक लिखी।
- समर्थ रामदास ने मराठा धर्म का प्रतिपादन किया।
- अपने जीवनकाल में शिवाजी ने 240 किलों का निर्माण कराया।
- शिवाजी ने सर्वप्रथम 1646 ई. में तोरण किले पर अधिकार किया।
- शाहजी को 1647 ई. में कैद किया गया।
- शिवाजी ने पहली बार मुगलों से 1657 ई. में युद्ध किया।
- शिवाजी ने 1659 ई. में बीजापुर के महत्वपूर्ण सरदास अफजल खाँ को बघनखे से मार डाला।
- शिवाजी ने सूरत को प्रथम बार 1664 ई. में लूटा।
- शिवाजी को राजा की पद्वी औरंगजेब ने दी।
- शिवाजी ने राज्याभिषेक रायगढ़ में 1674 ई. में काशी के प्रसिद्ध विद्वान गंगाभट्ट से करवाया तथा 'छत्रपति' की उपाधि धारण की।
- शिवाजी ने सूरत पर दूसरा आक्रमण 1670 ई. में किया।
- शिवाजी का साम्राज्य स्वराज्य एवं मुल्द-ए-कादिम नामक दो भागों में विभक्त था।
- शिवाजी ने मराठी को राजभाषा बनाया।
- मराठी शब्दकोश की रचना रघुनाथ पंडित हनुमंत ने की।
- शिवाजी के मंत्रिमंडल को अष्टप्रधान कहा जाता था।
- शिवाजी की सेना का मुख्य भाग घुड़सवार और पैदल सेना थी। घुड़सवार दो प्रकार के थे-
  1. बरगीर - ये शाही घुड़सवार थे, जिन्हें राज्य की ओर से शस्त्र मिलते थे।
  2. सिलेदार - इनहें घोड़े एवं शस्त्र स्वयं खरीदने पड़ते थे।
- राजाराम ने नौवें मंत्री को शामिल कर प्रतिनिधि नाम दिया।
- पेशवा का पद बालाजी विश्वनाथ के बाद वंशानुगत हो गया।
- पेशवा के सचिवालय को हुजूरदफ्तर (पूना में) कहा गया।
- सबसे महत्वपूर्ण दफ्तर अल-बरीज दफ्तर था।
- गाँव के मुख्य अधिकारी को पटेल अथवा पाटिल कहा जाता था।
- शिवाजी ने भूमि मापने के लिए काठी नामक मापक का प्रयोग किया।
- शिवाजी हैन्दवधर्मोद्धारक की पद्वी के साथ छत्रपति के आसन पर बैठे।
- शिवाजी के राजपुरोहित गंगाभट्ट थे।
- गंगाभट्ट ने शिवाजी को मेवाड़ के सिसोदिया वंश का क्षत्रिय घोषित किया।
- कर्नाटक अभियान शिवाजी का अन्तिम विजय अभियान था।
- शिवाजी की मृत्यु 1680 ई. में हुई।
- शिवाजी का उत्तराधिकारी शम्भाजी हुए।
- शम्भाजी ने औरंगजेब के विद्रोही पुत्र अकबर को शरण दी।
- 1689 ई. में शम्भाजी को औरंगजेब द्वारा बहादुरगढ़ में मार डाला गया।
- शम्भाजी की पत्नी येसुबाई तथा पुत्र शाहू को रायगढ़ के किले में (मुगलों द्वारा) कैद किया गया।
- शाहू को 1707 ई. में राजकुमार आजम ने रिहा किया।
- 1713 ई. में शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को पेशवा

PERFECTION IAS

बनाया।

- हिंदू पद पादशाही का सिद्धांत बाजीराव प्रथम ने विकसित किया।
- बाजीराव प्रथम शिवाजी के बाद 'गुरिल्ला युद्ध' का सबसे बड़ा प्रतिपादक था।
- शाहू ने बाजीराव प्रथम को 'योग्य पिता का योग्य पुत्र' कहा है।
- बाजीराव प्रथम ने 'हिंदू पादशाही' का आदर्श रखा।
- बालाजी बाजीराव को 'नाना साहब' के नाम से भी जाना जाता था।

शिवाजी के अष्ट प्रधान

1. **पेशवा - राज्य के प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था की देख-देख करता था।**
2. **सर-ए-नौवत (सेनापति)**
   मुख्य कार्य सेना में सैनिकों की भर्ती, संगठन एवं अनुशासन और साथ ही युद्ध क्षेत्र में सैनिकों की तैनाती आदि।
3. **मजमुआदर या अमात्य -**
   अमात्य राज्य के आय-व्यय का लेखा-जोखा तैयार कर उन पर हस्ताक्षर करता था।
4. **वाकयानवीस -**
   यह सूचना, गुप्तचर, एवं संधि-विग्रह के विभागों का अध्यक्ष होता था और घरेलू मामलों की भी देख-रेख करता था।
5. **शुरूनवीस या चिटनिस -**
   राजकीय पत्रों को पढ़ कर उनकी भाषा-शैली को देखना, परगनों के हिसाब-किताब की जाँच करना आदि इसके प्रमुख कार्य थे।
6. **दबीर या सुमन्त (विदेश मंत्री) -**
   मुख्य कार्य विदेशों से आये राजदूतों का स्वागत करना एवं विदेशों से सम्बन्धित सन्धि विग्रह की कार्यवाहियों में राजा से सलाह मशविरा करना आदि।
7. **सदर या पंडितराव -**
   मुख्य कार्य धार्मिक कार्यो के लिए तिथि को निर्धारित करना, पापकर्म करने वालो एवं धर्म को भ्रष्ट करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था करना, ब्राह्मणों में दान को बँटवाना एवं प्रजा के अचरण को सुधारना आदि।
8. **न्यायाधीश -**
   सैनिक व असैनिक तथा सभी प्रकार के मुकदमों को सुनने एवं निर्णय करने का अधिकार इसके पास होता था।

महत्वपूर्ण संधियाँ (अंग्रेज-मराठा संघर्ष के दौरान)

संधियाँ	वर्ष
सूरत की संधि	1775 ई0
पुरन्दर की संधि	1776 ई0
बड़गांव की संधि	1779 ई0
सालबाई की संधि	1782 ई0
बसीन की संधि	1802 ई0
देवगांव की संधि	1803 ई0
सुर्जी अर्जुनगांव की संधि	1803 ई0
राजापुर घाट की संधि	1804 ई0
नागपुर की संधि	1816 ई0
ग्वालियर की संधि	1817 ई0
पूना की संधि	1817 ई0
मांडसोर की संधि	1818 ई0

मध्यकालीन भारत के कुछ महत्वपूर्ण युद्ध

तराइन का प्रथम युद्ध (1191 ई0) - यह युद्ध पृथ्वीराज चौहान एवं मुहम्मद गोरी के मध्य लड़ा गया, गोरी पराजित हुआ।

तराइन का द्वितीय युद्ध (1192 ई0) - गोरी एवं पृथ्वीराज चौहान के मध्य, पृथ्वीराज पराजित हुआ।

चन्दावर का युद्ध (1194 ई0) - मुहम्मद गोरी एवं जयचन्द के मध्य गोरी विजयी रहा।

पनीपत का युद्ध (1526 ई0) - बाहार VS इब्राहिम युद्ध।

खानवा का युद्ध (1527 ई0) - बाबर एवं मेवाड़ के राणा सांग के मध्य, बाबर विजयी रहा।

चंदेरी का युद्ध (1528 ई0) - बाबर ने राणा सांगा के सामंत मेदनी राय को पराजित किया।

घाघरा का युद्ध (1529 ई0) - बाबर ने अफगानों को पराजित किया।

चौसा का युद्ध (1539 ई0) - शेरशाह एवं हुमायूँ के मध्य, शेरशाह विजयी रहा।

कन्नौज अथवा विलग्राम का युद्ध (1540 ई0) - शेरशाह एवं हुमायूँ के मध्य, हुमायूँ पराजित।

PERFECTION IAS

पानीपत का द्वितीय युद्ध (1556) – सम्राट अकबर ने अफगान सरदार हेमू को पराजित किया।

तालीकोटा का युद्ध (1565 ई0) – बहमनी राज्य के 4 मुस्लिम राज्यो की संयुक्त सेना ने विजयनगर की सेना को परास्त किया।

हल्दी घाटी का युद्ध (1576 ई0) – अकबर ने महाराणा प्रताप को हराया।

असीरगढ़ का युद्ध (1601 ई0) – अकबर का आखिरी युद्ध जो दक्षिण भारत में लड़ा गया था।

सिख

- सिख धर्म के संथापक 'गुरूनानक' थे।
- गुरू नानक ने लंगर प्रारंभ किया।
- गुरूमुखी लिपि का आरंभ गुरू अंगद ने किया।
- 'सिख धर्म' प्रारंभ में सिर्फ धार्मिक एवं सुधारवादी विचारों के कारण जाना जाता था। कालांतर में इसने एक लड़ाकू जाति के रूप में ख्याति प्राप्त की।
- सिख धर्म के दस गुरू : गुरू नाक, गुरू अंगद, गुरू रामदास, गुरू अर्जुनदेव, गुरू हरगोविंद, गुरू हरराय, गुरू हरकिशन, गुरू तेगबहादुर, गुरू गोविंद सिंह।
- चौथे गुरू रामदास के समय में मुगल बादशाह अकबर ने उन्हें 500 बीघा भूमि दान दी। इसी भूमि पर अमृतसर का शहर बना। पहले इसका नाम रामदासपुर रखा गया था।
- जहाँगीर ने सिक्ख गुरू गुरू अर्जुन देव को मृत्युदंड दिया था। (विद्रोही राजकुमार खुसरो की सहायता की थी)
- गुरू तेगबहादुर द्वारा इस्लाम धर्म ने अपनाने पर औरंगजेब ने उन्हें फांसी पर लटकाया था।
- गुरू गोविंद सिंह ने खालसा पंथ की स्थापना की, एक नयी धर्म विधि पाहुल को सन्निविष्ट किया, तीर्थ, व्रत-उपवास, मूर्ति पूजा आदि धार्मिक आडम्बरों को गलत माना।
- गुरू गोविंद सिंह की शिक्षाएँ 'अभंगों' के रूप में संग्रहीत हैं, जिनकी संख्या 5 से 8 हजार मानी जाती है।
- गुरूगोविंद सिंह की हत्या 1708 ई. में नांदेड़ में 'गुल खाँ' नाम पठान ने कर दी।
- 18वीं सदी के अंत में महाराजा रणजीत सिंह के नेतृत्व में सिख शक्ति का पुनः उदय हुआ।
- रणजीत सिंह का विदेश मंत्री फकीर अजीजुमुद्दीन एवं वित्त मंत्री दीनानाथ था।

सिक्खों के मिसल और उसके संस्थापक

मिसल	संस्थापक
1. सिंहपुरिया मिसल	कपूर सिंह
2. अहलूवालिया मिसल	जस्सा सिंह अहलूवालिया
3. रामगढ़िया मिसल	जस्सा सिंह रामगढ़िया
4. कनहिया मिसल	जय सिंह
5. फुलकिया मिसल	फूल सिंह
6. भंगी मिसल	हरि सिंह
7. सुकरचकिया मिसल	चरत सिंह
8. निशानवालिया मिसल	सरदार संगत सिंह
9. करोड़ सिंधिया मिसल	भगेल सिंह
10. उल्लेवालिया मिसल	गुलाब सिंह
11. नकाई मिसल	हीरा सिंह
12. शहीदी मिसल	बाबा दीप सिंह

PERFECTION IAS

मुगलकालीन निर्माण कार्य

निर्माण	स्थान	कर्ता
काबुलीबाग	पानीपत	बाबर
बाबरी मस्जिद	अयोध्या	बाबर के सेनापति मीर बाबा
जामी मस्जिद	सम्भल (रूहेलखंड)	बाबर
आगरा की मस्जिद	आगरा	हुमायू।
दीनपनाह नगर	दिल्ली	हुमायूँ
पुराना किला	दिल्ली	शेरशाह
किला-ए-कुहना	दिल्ली	शेरशाह सूरी
रोहतासगढ़	उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त	शेहशाह सूरी
शेरशाह का मकबरा	सासाराम (बिहार)	शेहशाह सूरी
हुमायूँ का मकबरा	दिल्ली	हमीदा बानो बंगम
आगरा का किला	आगरा	अकबर
जहाँगीरी महल	फतेहपुर सीकरी	अकबर
फतेहपुर सीकरी महल	फतेहपुर सीकरी	अकबर
जोधाबाई का महल	फतेहपुर सीकरी	अकबर
मरियम की कोठी	फतेहपुर सीकरी	अकबर
बीरबल का महल	फतेहपुर सीकरी	किबर
पंचमहल	फतेहपुर सीकरी	अकबर
तुर्की सुल्तान की कोठी	फतेहपुर सीकरी	अकबर
खासमहल	फतेहपुर सीकरी	अकबर
जामा मस्जिद	फतेहपुर सीकरी	अकबर
बुलंद दरवाजा	फतेहपुर सीकरी	अकबर
शेखसलीम चिश्ती का मकबरा	फतेहपुर सीकरी	अकबर
अकबर का मकबरा	सिकंदरा	जहाँगीर
एत्माद्द्दौला का मकबर	आगरा	नूरजहाँ
जहाँगीर का मकबरा	शाहदरा (लाहौर)	नूरजहाँ
आगरा महल	आगरा	शाहजहाँ
शीशमहल	आगरा	शाहजहाँ
खासमहल	आगरा	शाहजहाँ
मुसम्मन बुर्ज	आगरा	शाहजहाँ
नगीना मस्जिद	आगरा	शाहजहाँ
मोती मस्जिद	आगरा	शाहजहाँ
ताजमहल	आगरा	शाहजहाँ
शाहजहाँनाबाद	दिल्ली	शाहजहाँ
लालकिला	दिल्ली	शाहजहाँ
दीवाने आम	दिल्ली	शाहजहाँ
रंगमहल	दिल्ली	शाहजहाँ
जामा मस्जिद	दिल्ली	शाहजहाँ
रबिया-उद-दोरानी का मकबरा	औरंगाबाद	औरंगजेब
बादशाही मस्जिद	लाहौर	औरंगजेब
मोती मस्जिद	दिल्ली (लालकिला में)	औरंगजेब

PERFECTION IAS

मध्यकाल में भारत आने वाले विदेशी यात्री

भ्रमण काल	यात्री	किसके समय में
भ्रमण काल	यात्री	किसके समय में
1288 से 1293 ई॰	मार्कोपोलो (इटली का यात्री)	पांड्य राज्य
1333 से 1342 ई॰	इब्नबतूता (मोरक्को का यात्री)	मुहम्मद तुगलक
1420 से 1422 ई॰	निकोलो कोण्टी (इटली का यात्री)	देवराय प्रथम (विजय नगर)
1421 से 1431 ई॰	चेंग-ही (चीनी यात्री)	जलालुद्दीन (बंगाल)
1442 से 1443 ई॰	अब्दुर्रज्जक (ईरान का राजदूत)	देवराय द्वितीय (विजयनगर)
1470 से 1474 ई॰	अथनासियस निकेतिन (स्यी यात्री)	मुहम्मद तृतीय (बहमनी)
1503 से 1508 ई॰	बार्थोलोम्यू डियाज (इटालियन नाविक)	दक्कन
1516 से 1518 ई॰	डोमिंगों पायस (पुर्तगाली यात्री)	कृष्णदेव राय (विजयनगर)
1535 से 1537 ई॰	नूनिज (पुर्तगाली, अश्व सौदार)	अच्युत देव राय (विजयनगर)
1567 से 1568 ई॰	सीजर फ्रेडरिज (पर्तगाली यात्री)	विजयनगर
1578 से 1582 ई॰	एथोनी मासेरात (पुर्तगाली पादरी)	अकबर
1585 से 1591 ई॰	रॉल्फ फिंच (प्रथम अंग्रज यात्री)	अकबर
16 वीं शताब्दी	जॉन लिंसकोतेन (डच यात्री)	विजयनगर
1608 से 1613 ई॰	कैप्टिन हॉकिन्स (अंग्रेज व्यापारी)	जहाँगीर
1608 से 1617 ई॰	जॉन जुरदां (पुर्तगाली यात्री)	जहाँगीर
1608 से 1515 ई॰	निकोलस डाउटन (नौसेना अधिकार)	जहाँगारी
1612 से 1617 ई॰	टामस कोर्येट (अंग्रज यात्री)	जहाँगीर
1615 से 1619 ई॰	सर टॉमस रो (अंग्रज/राजदूत)	जहाँगीर
1616 से 1619 ई॰	एडवर्ड टेरी (अंग्रज पादरी)	जहाँगीर
1615 से 1625 ई॰	पाल केनिंग (अंग्रज यात्री)	जहाँगीर
1620 से 1627 ई॰	फ्रांसिस्को पेलसर्ट (डच यात्री)	जहाँगीर
1622 से 1660 ई॰	मित्र देला वैली (इटली का यात्री)	जहाँगीर
1626 से 1633 ई॰	जॉन लायट (डच यात्री)	शाहजहाँ
1627 से 1681 ई॰	जॉन फ्रियर (अंग्रज यात्री)	शाहजहाँ
1630 से 1634 ई॰	पीटर मुण्डी (इटली का यात्री)	शाहजहाँ
1641 से 1687 ई॰	टेवर्नियर (फ्रेंच जाहरी)	शाहजहाँ एवं औरंगजेब
1656 से 1687 ई॰	मनूची (इटली का यात्री)	औरंगजेब
1666 से 1668 ई॰	जीन चिन नाट (फ्रेंच यात्री)	औरंगजब
1695 से 1699 ई॰	रोमेल्ली कोरेरी (इटली का यात्री)	बीजापुर

PERFECTION IAS

मुगलकालीन साहित्य

तुर्की भाषा	
तुजुक-ए-बाबरी	बाबर
फारसी भाषा	
हुमायूँनामा	गुलबदन बेगम
अकबरनामा,	(बाबर के पुत्री)
आइन-ए-अकबरी	अबुल फज़ल
तबकात-ए अकबरी	निज़ामुद्दीन अहमद
तजकिरातुल-वाकियात	जौहर आफतावची रखां
तारीख-ए-अकबरशाही	
तारीयख-शेरशाही	अब्बास खां सरवानी
मुन्तखव-उत-तवारीख	अब्दुल कादिर बदायूँनी
तारीख-ए-सलातिन-ए-अफगाना	अहमद यादगार
तजकिरा-ए-हुमायूँ	बयाजिद बयात
तुजुक-ए-जहाँगीर	जहाँगीर (मौतमिद खान ने पुर्ण की)
इकबालनामा-ए- जहाँगारी	मौतमिद खाँ बक्शी
मस्सारे जहाँगीरी	ख्वाजा कामगार
मक्ज्जम-ए-अफगानी	निआतम उल्लाह
तारीख-ए-फरिश्ता	मुहम्मद कासिम
मासर-ए-रहीनी	मुल्ला नहबन्दी
पादशाहनामा	मोहम्मद अमीन कजवीनी
पादशाहनामा	अब्दुल हमीद लाहौरी
शाहजहाँनामा	इनायत खान
आल-एसलेह	मुहम्मद सलेह
मुन्तखव-उल-लुबाब	खफी खां
आलमगीरनामा	काजिम शीराजी
नुख्शा-दिलकुशा	मुहम्मद साकी
फतुहत-ए-आलमगीरी	ईश्वरदास नागर
वाक़याते आलमगीरी	आकिल खाँ
मासिर-ए आलमगीरी	मुहम्मद साकी
खुलासा-उल-तवारीख	सुजान राय
सवारूल मुतखरीन	गुलाम हुसैन
तवारीख ए मुजफ्फरी	मुहम्मद अली
मजुल बहरीन	दादा शिकोह

PERFECTION IAS

फारसी भाषा (अनुवादित पुस्तकें)	
महाभारत (संस्कृत)	नकीखान, बदायूँनी, अबुल फजल, फैजी
रामायण	बदायूँनी
अथर्ववेद	बदायूँनी-हाजी इब्राहीम सरहिंदी ने पूर्ण किया
लीलावती	फैजी
राजतरंगिणी	शाह मुहम्मद सहबादी
कालियदमन	अबुल फजल
नल दमयंती	फैजी
हरिवंश	मौलाना शेरी
पचास उपनिषद्, भागवत गीता व योग वशिष्ठ	दारा शिकोह

PERFECTION IAS